भारतीय

शिक्षा विकास की कथा

लेखक

पं० अवधबिहारी पाण्डेय, एम० ए०

प्रयाग विश्वविद्यालय

पं० बटुकनाथ पाण्डेय, एम० ए०

गवर्नमेन्ट ट्रेनिंग कालेज

लखनऊ

प्रकाशक

बाल साहित्य मंदिर,

लखनऊ

प्रथम संस्करण] १९४९ [मूल्य ३।।।)

भूमिका

हमारे यहाँ उच्च शिक्षा का माध्यम अब तक अंग्रेज़ी था। अतः पठन-पाठन में अंग्रेज़ी पुस्तकों का ही प्रयोग होता रहा। परिणामतः हिन्दी में सभी विषयों के गवेषणात्मक एवं वैज्ञानिक ग्रन्थों का एकान्त अभाव-सा है। इसी हेतु भारतीय शिक्षा के इतिहास की कोई भी सम्यक् विवेचना हमें हिन्दी में उपलब्ध नहीं होती है। अब परिस्थिति बदल गई है। स्वतंत्र भारत के भावी नागरिकों, विशेषतः भावी राष्ट्र निर्माता अध्यापकों की दीक्षा राष्ट्र भाषा में ही होना आवश्यक हो गया है। अनेक विश्वविद्यालयों ने परीक्षार्थियों को हिन्दी में ही उत्तर लिखने का वैकल्पिक अधिकार दे दिया है। इधर शिक्षा-विभाग ने दीक्षांत विद्यालयों के विद्यार्थियों को भी यह अधिकार दे दिया है। अतएव जो विद्यार्थी हिन्दी में ही लिखना चाहते हैं वे हिन्दी में उपयुक्त पाठ्य-पुस्तकों का अभाव अनुभव कर रहे हैं। प्रस्तुत पुस्तक इसी अभाव को दूर करने का एक लघु प्रयास है।

इस पुस्तक के लिखने में अनेक ग्रन्थों से सहायता ली गई है। पुस्तक में उनका मत देते समय नामोल्लेख करके उनके ऋण को स्वीकार किया गया है। यहाँ पर एक बार फिर लेखक उन सभी विद्वानों के प्रति कृतज्ञता प्रकाश करते हैं।

इस पुस्तक को इतने शीघ्र प्रकाशित करने के लिये प्रकाशक महोदय भी विशेष बधाई के पात्र हैं। उनके असीम उत्साह एवं अध्यवसाय के बिना यह कार्य कभी संभव न होता।

अन्त में एक प्रार्थना पाठकों से है। पुस्तक शीघ्रता में छपी है। अतः अनेक भूलों का रह जाना स्वाभाविक ही नहीं अनिवार्य है। जो पाठक इसके संस्कार करने के लिये अपने सुझाव देने की कृपा करेंगे लेखक उनके आभारी होंगे।

लखनऊ
फरवरी १५, १९४९ ई० }

लेखक—

शुद्धि पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४	१७	भारती	भारतीय
॥	१६	प्रतिमाओं	प्रतिज्ञाओं
१०	२१	उजन	उपार्जन
१३	६, ७	अध्यवन	अध्यापन
१३	२०	मना कर	मना न कर
१५	२७	आभूण	आभूषण
२१	२७	कौपन	कौपीन
२४	५	उपेषा	अपेक्षा
२८	२	पूर्णता	पूर्णतया
२८	१८	परिचाया	परीक्षाया
३०	१७	महत्व था	महत्व न था
३२	२६	क्रियों	शक्रियों
३२	२८	वह नहीं है	वह यह नहीं है
३१	१८	आत्माज्ञान	आत्मज्ञान
४१	३	मौखरियों	मौखरियो
४३	१२	विवरण	निवारण
४८	२८	विपय	विषय

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४३	८	मांड	मांडू
६४	१३	आकर्षणीय	चिन्ताकर्षक
८१	१५	निःशुक्र	निःशुक्र
६२	२६	वौमरन	मुनरो
१०३	१८	फ्रेज़ी	फ्रेजर
१२१	१	सिफारिस	सिफारिश
१२५	१८-२३	१८८५	१८२५
१४४	२६	देवरेखा	देवरेख
१७६	२	सुधारने	सुधरने
१७६	६	विद्यालय	विश्वविद्यालय
१६२		१६२१-३१,	१६२१-३७
२२८	१२	विकाश	विकास
२३४	२८	अहने	अपने
२७३	३	कूटनीनि	कूटनीति

विषय सूची

अध्याय १

अध्याय २

अध्याय ३

अध्याय ७

अध्याय ८

अध्याय १

हिन्दू-शिक्षा

यह तो सर्वमान्य है कि शिक्षा और ज्ञान भारतीयों के लिये कोई नई बातें नहीं हैं। अत्यन्त प्राचीन काल में ही इस देश की विभिन्न जातियों ने शिक्षा और ज्ञान को ही सभ्यता का केन्द्र मान लिया था। अस्तु शिक्षा का संबंध धर्म से हुआ और उसका स्वरूप तथा संगठन धार्मिक हुये। शिक्षा देने और प्राप्त करने का उद्देश्य व्यावसायिक कुशलता अथवा सामाजिक उन्नति ही नहीं थी वरन् शिक्षा देना एक धार्मिक कर्तव्य था जिसके बिना देश, समाज तथा सभ्यता का ऋण चुकाया नहीं जा सकता था।

ईसा के ४००० वर्ष पूर्व द्रविड़ों ने अपनी सभ्यता में शिक्षा तथा धर्म में ज्ञानमार्ग को स्थान दिया था, ऐसा सिंध घाटी की सभ्यता के अवशेषों से स्पष्ट है। बाद में आर्यों ने इस सभ्यता को विजित करके अपने में आत्मसात् कर लिया। आर्य सभ्यता में द्रविड़ सभ्यता ने परिवर्तन किये, किन्तु उसका मुख्य स्वरूप आर्य ही बना रहा, दूसरे अब आर्यों पर द्रविड़ सभ्यता के आभार का विश्लेषण भी दुरूह है। अस्तु यह बताना संभव नहीं कि कौन-कौन सी बातें मुख्यतया द्रविड़ों ने आर्य सभ्यता को दीं, और कौन सी विशुद्ध आर्य पद्धतियां हैं। सिंध घाटी की सभ्यता में लिखने के चिन्ह स्पष्ट हैं, पर हम आर्यों में लेखन पद्धति का प्रचार बहुत बाद में पाते हैं। विद्यारंभ अथवा अक्षरस्वी-करण संस्कार का प्रचार हमें सूत्रों के बाद ही स्पष्टतया मिलता है। उसके पहिले उपनयन के बाद शिक्षा आरम्भ होती थी, और उपनयन

के बाद जैसी शिक्षा दी जाती थी; उसका केन्द्र वेद था और वेदाध्ययन के लिये लेखन की आवश्यकता न थी, वरन् वह अव्यवहार्य मानी जाती थी। प्रतीत जान पड़ता है कि आर्यों ने लिखना का कय वैदिक साहित्य के निर्माण तथा सूत्रकाल के बाद (दूसरी शताब्दी ईसा से पूर्व) में ही विशेषतया आरंभ किया। डाक्टर राधाकुमुद मुकर्जी का मत है कि आर्य लेखन कला में ऋग्वेदिक काल में ही अवगत थे यद्यपि वैदिक साहित्य के लिये उसका उपयोग बहुत दिन तक निषिद्ध रहा।

हमें आर्य शिक्षा-पद्धति के बारे में ही विशेष जानकारी है अस्तु उसी का वर्णन यहां होगा। यह पद्धति इतनी दृढ़ तथा स्पष्ट थी कि सदियों के प्रहारों के बाद अब भी उसका प्राचीन रूप यत्र तत्र वर्तमान है और उन्नसवीं शताब्दी तक तो उसका प्रचार बहुत अधिक था।

शिक्षा के उद्देश्य

आत्म-ज्ञान—प्राचीन विद्वानों ने कभी शिक्षा का इतिहास तो लिखा नहीं, अस्तु उद्देश्यों का वर्णन कहीं नहीं मिलता। इनका ज्ञान हमें शिक्षा संबंधी वर्णनों से होता है। ऋग्वेद के दशम मंडल में शिक्षा और उसकी आवश्यकताओं का वर्णन है। वैदिक मंत्रों के द्रष्टा ऋषि थे, जिन्होंने अपने तप से ब्रह्म का साक्षात्कार किया था और वेदों का ज्ञान बिना अध्ययन के ही उन पर प्रकट हो गया था। बाद में और ऋषि हुए, जिनका तप तथा ज्ञान इस कोटि का न था, पर वेदों का ज्ञान उपर्युक्त ऋषियों से सुनकर तप द्वारा वे भी ऋषि बन गये और पहले वर्ग से भिन्न करने के लिये उन्हें श्रुतर्षि कहा गया और वेदों को श्रुति। इस प्रकार शिक्षा का प्राचीनतम उद्देश्य लोगों को ऋषित्व प्राप्त करने में सहायता देना था। दूसरे शब्दों में उच्चतम ज्ञान—आत्म ज्ञान, अथवा संसार, जीवन तथा वासनाओं से उत्पन्न दुख से मोक्ष—के मार्ग की रूपरेखा बताना ही शिक्षा का उद्देश्य था।

यज्ञ विधि—आर्य सभ्यता में यज्ञों का बड़ा महत्व है। यज्ञ सृष्टि की उत्पत्ति और रक्षा का प्रतीक है। ब्रह्म अथवा विश्वानर ने यज्ञ में अपनी आहुति के द्वारा ही एक से अनेक की सृष्टि की थी। अस्तु यज्ञ की विधियों की शिक्षा प्रत्येक आर्य के लिये आवश्यक थी। आर्य और अनार्य की भिन्नता का एक मुख्य आधार यज्ञ करना था। अस्तु शिक्षा का दूसरा उद्देश्य आर्य सभ्यता की रक्षा अथवा यज्ञों की विधि में पारंगत करना था। इसी हेतु ब्राह्मण काल में उपनयन अथवा शिक्षा सभी आर्यों के लिये अनिवार्य कर दी गई थी। विशिष्ट यज्ञों में यजमानों की सहायता को पुरोहित आवश्यक तथा सुविधाजनक रहने पर भी फल उन्हीं लोगों को अधिक होता था जो स्वयं उनमें भाग लेते थे अथवा उसे समझते थे। दूसरे दैनिक अग्निहोत्र तो व्यक्तिगत ही था।

सामाजिक उन्नति—शिक्षा का तीसरा उद्देश्य सामाजिक उन्नति थी। अस्तु किसी भी प्रकार की शिक्षा को हेय नहीं माना जाता था। नारद जैसे ब्राह्मण ने चारों वेद, वेदाङ्गों, इतिहास-पुराण, राशि, दैव, तथा निधि विद्याओं के साथ ही सर्पविद्या, क्षात्रविद्या (धनुर्वेद) और देवजन-विद्याओं का अध्ययन किया था, अंतिम से अर्थ संगीत, आयुर्वेद तथा शिल्पों से था। दक्षिणी भारत के लेखों में भी हमें ऐसे अध्यापकों का वर्णन मिलता है जो वेदों के साथ ही साधारण विषयों की भी शिक्षा देते थे। शिल्पों की व्यवहारिक शिक्षा शिल्पियों के पास ही होती थी और सूत्रकाल में उसके लिये भी विशद नियम बन गये थे, जिनका वर्णन अन्यत्र होगा। इस प्रकार की समाजोपयोगी, और समृद्धि तथा उन्नति में सहायक विषयों की शिक्षा का समुचित प्रबन्ध रहने पर ही भारतीय व्यापार तथा उपनिवेशों की उन्नति संभव थी। इसके साथ व्यक्ति को समाजोपयोगी अथवा सामाजिक प्राणी बनाने का भी भरपूर प्रयास होता था। उसे विद्या समाप्त करके गृहस्थाश्रम में प्रवेश कर ब्रह्मचारियों तथा सन्यासियों के भरण पोषण का दायित्व संभालना भी सिखाया

जाता था, जहां उसे प्रजोत्पादन और अग्निहोत्र के महत्व से अवगत किया जाता था।

व्यक्तित्व का विकास—इस प्रकार हम शिक्षा के सबसे महत्वपूर्ण उद्देश्य व्यक्तित्व के चरम विकास पर आते हैं। व्यक्ति की सर्वांगीय शिक्षा और प्रगति ही इस पद्धति का उद्देश्य था, शारीरिक तथा मानसिक विकास और नियमन पर ही आत्मिक उन्नति आश्रित थी। प्रायः गुरु इन आधारों से हीन शिष्यों को आत्मज्ञान की शिक्षा के अयोग्य मानते थे। चरित्र निर्माण और सामाजिक गुणों का समावेश इस पद्धति की प्रमुख देनें थीं, और इन्हीं बातों की विशेष कमी हम अपने आधुनिक नागरिकों में पाते हैं। इस दृष्टि से हमारी प्राचीन शिक्षा पद्धति कहीं अधिक सफल तथा लाभप्रद थी। पढ़ाने की मौखिक विधि होने के कारण स्मृति, विचार शक्ति तथा कल्पना में तो स्वतः ही प्रगति होती थी। विद्यार्थी जीवन के व्रत तथा नियम और पठन-पाठन की विधियां मनुष्य को संयत तथा संयमी बनाकर ही छोड़ते थे। अस्तु बाहरी यात्रियों ने भी हमारे नैतिक चरित्र की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। फाह्यान को आश्चर्य था कि यहां के लोग अपने अलिखित वायदों को पूरा करते हैं। ह्वेनसांग भी इसी स्वर में कहता है कि भारती "दृढ़ विचारों से हीन तथा क्षिप्रकारी हैं, किन्तु उनके नैतिक आदर्श शुद्ध हैं। वे वंचना नहीं करते और अपनी शपथ की हुई प्रतिमाओं का पालन करते हैं। वे पापों के परिपाक से डरते हैं।" मुसलमान यात्री इदरीसी को भारतीयों के चरित्र की अक्षुण्ण न्याय-प्रियता पसंद आई। उनकी सच्चाई नेकनीयती और प्रतिज्ञापालन इतने प्रसिद्ध थे कि बाहरी व्यापारी यहां आते थे। मार्कोपोलो के समय में तो बाहरी व्यापारी अपना व्यापार भी इन्हीं पर छोड़ देते थे, और वे उचित कमीशन के सिवा कुछ न लेते थे। इस वर्णन से आज-कल की चोर-बाज़ारी की तुलना करने

पर आधुनिक तथा प्राचीन हिन्दू शिक्षा-पद्धति की तुलनात्मक उपादेयता स्पष्ट हो जाती है।

मनुष्य की सर्वतोमुखी प्रतिभा के विकास के लिये पाठ्य विषयों की विशदता थी, जिनके चुनाव पर कोई प्रतिबन्ध न था। इस प्रकार शिक्षितों का व्यक्तित्व उनकी नैसर्गिक शक्तियों द्वारा ही सीमित होता था। अन्यथा उसका चरम विकास सम्भव था। अस्तु उन नागरिकों में आत्मसम्मान, आत्म-प्रश्रय और आत्म संयम के आवश्यक गुण प्रचुर मात्रा में वर्तमान थे। इसी हेतु डाक्टर राधाकुमुद मुकर्जी ने ठीक ही लिखा है—"हमें स्मरण रखना चाहिये कि प्रगतिशील पाठ्यक्रम के साथ ही शिक्षा की उत्तरोत्तर प्रगति के लिये विभिन्नव्रतों के रूपमें तप तथा अनुशासन भी जुड़ा हुआ था। इस प्राचीन शिक्षा-पद्धति का उद्देश्य व्यक्ति का बौद्धिक विकास ही नहीं, वरन् उसकी समस्त प्रकृतिदत्त शक्तियों को उन्नत बनाना था। उपयुक्तता की परीक्षा के बाद कच्चा माल (विद्यार्थी) कारखाने में आता था और वहाँ से सुसंस्कृत होकर बाहर जाता था। इन शिक्षालयों का कार्य देश अथवा राष्ट्र का निर्माण था। उनका उद्देश्य केवल पंडित अथवा सन्यासी उत्पन्न करना न था, वरन् आदर्श गृहस्थ जो कुटुम्ब, देश तथा समाज की अपूर्णताओं को दूर करें।"

शिक्षा से प्रेम—शिक्षा का अंतिम उद्देश्य शिक्षा से आजीवन प्रेम और स्वाध्याय की प्रवृति डालना था। समावर्तन सभाओं में गुरु अपने आते हुये शिष्यों को स्पष्टतया इस बात का उपदेश देते थे कि वे अपने ज्ञान को पूर्ण न समझें वरन् आजीवन उसको बढ़ाने में ही प्रयत्नशील रहें। इसी हेतु गुरु तथा शिष्य अवसर मिलने पर एक दूसरे के पास कुछ दिन निवास करने जाते थे, तथा विद्वत्परिषदों में निरंतर भाग लिया करते थे।

पाठ्यक्रम

वैदिक युग – ऋग्वैदिक काल में तो संहिता के सिवा अन्य पाठ्यक्रम का पता नहीं चलता है। अस्तु इसी का अध्ययन तथा यज्ञ विधियों का निरूपण ही पाठ्यक्रम रहा होगा। यज्ञविधियों के लिए षड्वेदांगों की शिक्षा आवश्यक थी। अथर्ववेद के समय तक चारों वेदों की संहिता के सिवा सबसे सम्बन्धित ब्राह्मण ग्रन्थों का ढेर लग गया था। षड्वेदांगों पर भी साहित्य लिखा जा रहा था, यद्यपि इन पर साहित्य मुख्यतया सूत्रकाल में ही एकत्र हुआ। इनके सिवा अथर्ववेद पाठ्य विषयों में इतिहास पुराण तथा नाराशंसी गाथाओं का भी उल्लेख करता है। ब्राह्मण ग्रन्थों तथा उपनिषदों में हमें पाठ्यक्रम के विस्तृत होने का आभास मिलता है और अनेकानेक विषयों का अध्ययन वैदिक शिक्षालयों में होने लगा था। इनमें वेद, शिक्षा, कला, व्याकरण, निरुक्त, छन्द तथा ज्योतिष छहों वेदांग न्याय, मीमांसा, तर्कशास्त्र, इतिहास-पुराण (संसार तथा व्यक्तियों का उत्पत्ति से लेकर समग्र वर्णन), आख्यान (यज्ञों के समय की गाथाएं यथा महाभारत), नाराशंस (पूर्व पुरुषों की कहानियाँ), ब्राह्मण (धार्मिक तथा याज्ञिक व्याख्यायें), क्षात्रविद्या-युद्धकला, राशि-गणित, नक्षत्र-विद्या, भूतविद्या, सर्पविद्या, दैवनिधि-शकुन विचार, ब्रह्मविद्, श्लोक, एकायन-नीतिशास्त्र, तथा देवजन-विद्यायें यथा संगीत, आयुर्वेद, शिल्प, सुगंधि तथा शृंगारी वस्तुओं का उत्पादन मुख्य है।

वैदिक युग—पहिले युग में वेदमंत्रों की भाषा ही जनता की भाषा थी, पर इस उत्तर वैदिक काल तक बोलचाल की भाषा बदल गयी थी, अस्तु वेदों को ठीक उच्चारण के साथ ही उनके अर्थ जानने का महत्व भी बढ़ गया था। वेदव्यास ने अर्थ ज्ञान हीन वेदवक्ता की तुलना गधे से की है।

यथा पशुर्भारवही न तस्य लभते फलम्
द्विजस्तथार्थानभिज्ञो न वेद फलमश्नुते ।

इसी लिये वेदांगों का महत्व बढ़ गया, क्योंकि वे वेदों के समझने में सहायक थे। संहिता की व्याख्याओं ब्राह्मण ग्रंथों की भी यही उपादेयता थी, किन्तु उनमें संहिता के विचारों का विश्लेषण करते हुये उस ज्ञान को और आगे बढ़ाया गया। क्योंकि इस समय तक वेदों से मिलते जुलते छन्दों की रचना भी पाप समझी जाने लगी थी। चूंकि वेदों की सभ्यता और विचार धारा को आगे बढ़ाने के लिये नये वेदों की रचना तो संभव न थी अन्तु यह कार्य ब्राह्मण-ग्रन्थों और उनके अंतिम भागों उपनिषदों में संपादित हुआ। इसी हेतु ज्ञान-मार्गियों तथा कर्मकांडियों दोनों ही के लिये ब्राह्मण ग्रंथ महत्वपूर्ण थे और प्रत्येक वैदिक शिक्षालय—शाखा, चरण, गोत्र—में इनका अध्ययन और रचना का प्रयत्न होता था। परिषदों में विभिन्न शाखाओं तथा चरणों के विद्वान अपने-अपने मत का प्रतिपादन करते थे, और एक दूसरे के ज्ञान से लाभ उठाते तथा आवश्यक होने पर शिष्यता स्वीकार करते थे। उपनिषदों में इसी प्रथा का विशेष वर्णन है। इसी परिपाटी से दर्शनों में उन्नति हुयी और छः दर्शन विशिष्ट रूप से प्रमुख हुये। विचारों को इतनी स्वतंत्रता थी कि कुछ दार्शनिक ईश्वर के अस्तित्व और यज्ञों की उपयोगिता पर भी संदेह प्रकट करते हैं, यद्यपि वेदों की मान्यता के विरुद्ध वे एक शब्द नहीं कहते।

सूत्रकाल—इसी युग के बाद जैन, बौद्ध, आजीविक इत्यादि संप्रदाय आर्य-धर्म से अलग अपनी धर्म व्यवस्था का प्रचार करने लगे। यज्ञों की दुरूहता तथा वैदिक संस्कृत की कठिनता ने इनका काम और आसान कर दिया और जनता की प्रवृत्ति इन सरल धर्मों की ओर हुई। दूसरे निष्ठावान् श्रोत्रियों के लिये भी सम्पूर्ण ग्रन्थों का अध्ययन कठिन हो चला था, जो उस पर जुट जाते थे, वे गृहस्थाश्रम का समय

भी वहीं खपा देते थे, जिसमे प्रजोत्पादन और सामाजिक संगठन में शिथिलता आने का भय था। अस्तु प्रायः ८०० ई० पू० से ब्राह्मण धर्म के अनुयायियों ने अपने पाठ्य-क्रम को सरल तथा सुपाठ्य बनाने का उपक्रम किया। उन्होंने प्रत्येक विषय को छोटे-छोटे सूत्रों मे ढालना आरम्भ किया। यही सूत्रकाल था।

सूत्रकाल में सभी विषयों के ग्रंथ सूत्रों में लिखे गये, इनमें पाणिनि की अष्टाध्यायी प्रमुख है, जिसने वैदिक तथा प्रचलित संस्कृत भाषा के नियमों को सूत्रबद्ध किया। कात्यायन के वार्तिकों और पतञ्जलि के महाभाष्य ने इस विषयों को पूर्ण किया। पर प्रमुखतः सूत्र ग्रंथ चार भागों में विभक्त हो सकते हैं। प्रथम श्रौत सूत्र जिनमें यज्ञविधियों का वर्णन था और जो इस प्रकार कल्प तथा ब्राह्मण ग्रंथों के उक्त विषय पर निचोड़ थे। इनमें आवश्यक मंत्र भी दिये थे। छोटे-छोटे घरेलू यज्ञों तथा संस्कारों का वर्णन गृह्यसूत्रों में हुआ। इनका आधार प्रचलन ही था। इस प्रकार इनका रूप भी सदा के लिये निश्चित हो गया। शुल्व सूत्रों मे धर्म संबन्धी अन्य प्रचलित प्रथाओं (यथा वेदी निर्माण) का वर्णन है। सबसे महत्वपूर्ण धर्मसूत्र थे, जिनमें स्मृति तथा प्रचलनों के आधार पर दैनिक जीवन के आचरणों (समयाचारिक) का वर्णन है। ये प्रथम नियम-सम्बन्धी ग्रंथ हैं। इन्हीं के आधार पर बाद में स्मृतियों अथवा धर्म-शास्त्रों का निर्माण हुआ था जो हिन्दुओं के सामाजिक जीवन के कानूनी आधार अब भी माने जाते हैं।

इस काल में शिक्षालयों में सूत्रों के अध्ययन पर विशेष ध्यान दिया गया। साथ ही वेदों के अर्थ ज्ञान के लिये वेदांगों का अध्ययन भी जारी रहा। उपनिषत्काल के सभी विषयों के अतिरिक्त दर्शनों का अध्ययन प्रमुख हुआ। तर्कशास्त्र की महिमा बढ़ी क्योंकि नये धर्मों की आलोचना तथा आर्य धर्म की प्रमुखता स्थापित करने के लिये इसकी आवश्यकता थी। यह विशेषज्ञों का युग था अस्तु वैदिक शिक्षालयों से

अलग भी प्रमुखतया सूत्रों, कल्प, व्याकरण, ज्योतिष तथा धर्मशास्त्रों के ही लिये अलग-अलग विद्यालय भी स्थापित हुये। दूसरे शब्दों में ऐसे शिक्षकों का प्रादुर्भाव हुआ जो सभी विषयों के ज्ञाता न थे और उपरिलिखित विषयों को केन्द्र मान कर भी पाठ्यक्रम बनने लगा।

इस युग में ग्रन्थों की रक्षा के लिये लेखन कला, और लेखन कला के लिये प्रारंभिक शिक्षा आवश्यक हो गई। अस्तु चूड़ाकर्म के बाद विद्यारंभ संस्कार होने लगा। बालक उपाध्याय के पास अक्षर लिखना पढ़ना तथा साधारण गणित सीखने जाता था। अस्तु इसे अक्षर-स्वीकरण संस्कार भी कहते हैं। इसका वर्णन ईसा से पूर्व द्वितीय शताब्दी से ही मिलता है। इस समय से उपनयन के पूर्व * यह पाठ्यक्रम बढ़ गया मान लेना चाहिये। भगवान् बुद्ध के समय में भिक्षु एक दूसरे की पीठ पर अक्षर लिखने का अभ्यास किया करते थे, अस्तु स्पष्ट है कि उस समय विद्यारंभ अथवा अक्षर सीखना पाठ्यक्रम का सार्वदेशिक अंग नहीं बन पाया था।

ईसा के बाद—इसके बाद चौथी शताब्दी तक स्मृतियाँ, पुराण, रामायण, महाभारत तथा अन्य कवियों की कृतियाँ भी प्रस्तुत हो चुकी थीं और इनका भी पाठ्यक्रम में धीरे-धीरे प्रवेश हुआ। इत्सिंग ने पाठ्यक्रम का कुछ वर्णन किया है। उसके अनुसार अवैदिक शिक्षाकेन्द्रों में बालक छः वर्ष की आयु में विद्यारंभ करके नवें वर्ष में व्याकरण का अध्ययन प्रारंभ करता था जो तीन वर्ष चलता था, उसके बाद दो वर्ष कोष, काव्य तथा साहित्य की शिक्षा दी जाती थी। इसके बाद ही वह १४ वर्ष की आयु में वेद, उपनिषत्, दर्शन, आयुर्वेद आदि की विशिष्ट शिक्षा में रत होता था। ह्वेनसाँग ने पाँच प्रकार के विशिष्ट पाठ्यक्रमों का वर्णन किया है।

---

* द्वितीय जन्मनः पूर्वमारभेताक्षरान्सुधीः —बृहस्पति

(१) व्याकरण।

(२) शिल्प, ज्योतिष तथा अन्य उपयोगी विद्यायें।

(३) आयुर्वेद, वास्तुकला।

(४) न्याय-तर्क व दर्शन।

(५) उपनिषद्-उच्चतम ज्ञान।

नालंदा विश्वविद्यालय में तथा बौद्ध विहारों तथा शिक्षा केन्द्रों में भी पाठ्यक्रम में कुछ अंश सभी के लिये आवश्यक था और कुछ विशेषज्ञों का ही क्षेत्र था। शिक्षा आरंभ करने पर बौद्ध विहारों में भी सात आठ वर्ष तक विद्यार्थी व्याकरण, साहित्य और कोष का अध्ययन करके पाली, उस क्षेत्र की भाषा, तथा संस्कृत का ज्ञाता बन जाता था। प्रायः सोलह वर्ष की आयु में वह बौद्ध ग्रन्थों का अनुशीलन करके तर्क, और बौद्धविज्ञान—सूत्र, विनय अभिधर्म्म पिटक—का अध्ययन करते थे। साथ ही जैसा बाण तथा ह्वेनसांग के वर्णनों से स्पष्ट है वे हिन्दू, जैन तथा अन्य प्रतिद्वन्द्वियों के धार्मिक साहित्य का भी अनुशीलन करते थे। ऐसा अनुमान है कि कुछ विशेष शिक्षक वास्तुकला तथा चित्रकला की भी शिक्षा देते थे, क्योंकि वे विहारों के निर्माण की देखरेख तथा सजावट किया करते थे। पाठ्यक्रम को मोटे तौर पर दो भागों में भी बाँटा गया था। परा विद्या से तात्पर्य आत्मज्ञान में सहायक ज्ञान से था, यथा वेदान्त, जो सभी विज्ञानों का विज्ञान था, जिससे सभी कलाओं तथा विज्ञानों का ज्ञान स्वयं ही हो जाता था। इस विद्या का उपार्जन ज्ञान मार्ग अथवा श्रेय मार्ग था जो तप तथा सन्यास द्वारा ही सम्भव था। दूसरे भाग में अपरा विद्या थी, जिससे तात्पर्य शेष सभी पाठ्यक्रम से था, वेदों से लगाकर साधारण कलायें तक इनके अंतर्गत थीं। प्रेय मार्ग-सांसारिक सुख तथा समृद्धि के इच्छुक इन्हें अपनाकर कर्मों तथा यज्ञों द्वारा

दूसरे मार्ग पर पहुँचने को तैयार होते थे। अस्तु इस समय दोनों में कोई विरोध न था, एक से दूसरे में सुविधा ही बढ़ती थी

पठान आक्रमणों के बाद—यही पाठ्यक्रम ग्यारहवीं शताब्दी तक चलता रहा। उसके बाद बौद्ध शिक्षाकेन्द्रों का तो मुसलमान संस्कृति नाशकों ने अंत कर दिया। परन्तु हिन्दू शिक्षा पद्धति उनके अत्याचारों का सामना करती हुई तथा उदार शासकों की कृपा से बनी रही और उन्नीसवीं शताब्दी तक उसका यही रूप अंग्रेजों के सामने भी पड़ा। अब भी यही रूप किंचित् वर्तमान है। परन्तु पाठ्यक्रम में धीरे-धीरे संकोच आता गया और साहित्यिक विषयों तथा व्याकरण ने तो प्रमुख स्थान ले लिया, दर्शन तथा उपनिषद् भी बने रहे, किन्तु अन्य प्रकार की उपयोगी शिक्षा का भार कारीगरों तथा उन व्यवसायों के ज्ञाताओं पर पड़ा जिनकी साधारण शिक्षा अब बहुत कम हो गई थी। ये व्यवसाय भी धीरे-धीरे विशेष जातियों के हाथों में पड़ गये और ब्राह्मणों ने उन्हें अपने शिक्षाकेन्द्रों में पढ़ाना अनुचित समझ लिया। और तो और आयुर्वेद का भी यही हाल रहा। ग्यारहवीं शताब्दी से ही अलबेरूनी के अनुसार इन विद्वानों को इतना मिथ्याभिमान होने लगा था कि वे बाहरी देशों के ज्ञान से लाभ उठाने को प्रस्तुत न थे, वे उन्हें विद्वान् मानने को भी तैयार न थे। यही रुख उनके मानसिक विकास और ज्ञान को धीरे-धीरे संकुचित करने का कारण बना जिससे वे अपनी शाखा से संबंधित ग्रन्थों का अध्ययन ही श्रेयस्कर मानने लगे।

शिक्षक

महत्व—प्राचीन भारत में गुरु का बड़ा महत्व था क्योंकि वह केवल ज्ञान का वक्ता ही नहीं था (यह कार्य तो ग्रन्थों और टीकाओं से भी सम्भव है) वरन् वह व्यक्ति को उसकी प्रकृत शक्तियों के आधार

पर विकास करने में सहायता देते हुये उसके सर्वांगीय संतुलित विकास का उत्तरदायी था। इसके सिवा उसे उचित सांसारिक तथा आध्यात्मिक मार्गों का आभास कराना भी उसी का दायित्व था। इसी कारण उसकी उपमा नाचिकेता के गुरु यम, भृगु के गुरु वरुण तथा सूर्य और चंद्रमा से दी गई है। उसमें क्रमशः इनके विशिष्ट गुण—(पापों का) नाश, (अधर्म से) रक्षा, ज्ञान तथा सुख पहुँचाने की क्षमता—विद्यमान थे। संक्षेपतः विभूति और ऐश्वर्य उसी की कृपा से प्राप्त हो सकते थे। कठोपनिषद् के अनुसार गुरु के बिना इस संसार में गति नहीं है, स्वाध्याय, विचार शक्ति अथवा अधिक ज्ञान से भी आत्मज्ञान नहीं मिलता और बिना आत्मज्ञान के सांसारिक वैभव तथा ब्रह्मदर्शन नहीं मिलते। छांदोग्य उपनिषत् ने भी गुरु की उपयोगिता का वर्णन बड़े प्रभावोत्पादक शब्दों में किया है, "ठीक जिस प्रकार किसी व्यक्ति को गांधार से आँखें बन्द करके लाया जावे और रेगिस्तान (राजपूताना) में छोड़ दिया जावे, तो वह अपने घर जाने के लिये पूर्व, उत्तर पश्चिम तथा दक्षिण सभी दिशाओं में भटकता है, पर यदि कोई उसकी पट्टी खोलकर बता देता है कि गांधार अमुक ओर है, तो वह विचारवान् तथा संयमी व्यक्ति ग्राम-ग्राम मार्ग पूछता हुआ गांधार पहुँच जाता है ; ठीक उसी प्रकार जिस मनुष्य का गुरु मिल जाता है वह सजग हो जाता है 'कि इस विश्व में मैं मुक्ति के समय तक ही रहूँगा, फिर मैं अपने घर जाऊँगा।' गुरु का यह महत्व भारतीय पद्धति में आज तक वर्तमान है। श्री कबीरदास ने तो गुरु को ईश्वर की तुलना में भी ऊँचा ठहराया है—

गुरु-गोविंद दोऊ खड़े काके लागूं पांय
बलिहारी गुरु देव की जिन गोविंद दिया दिखाय।

इसी लिये शिष्य गुरु का आदर करते थे, समाज भी उनका आदर करता था। दक्षिणी भारत के लेखों से पता लगता है कि साधारण

अध्यापकों की आय भी समाज ने उसी कोटि के ब्राह्मणों से दुगुनी स्थिर की थी। (अल्तेकर)

गुण—ऐसे गुरुओं में असाधारण गुणों का होना भी अनिवार्य माना जाता था यद्यपि गुरुओं की दीक्षा के लिये कोई विशेष प्रबन्ध न था। वे श्रोत्रिय तथा ब्रह्मनिष्ठ होते थे। जब जन साधारण को शिक्षित बनाना था तो प्रत्येक सुशिक्षित व्यक्ति को अध्ययन करने की अनुमति ही नहीं, आज्ञा थी। अध्ययन ही के द्वारा गुरु का ऋण चुकाया जा सकता था। समावर्तन-दीक्षत समारोह में यह इच्छा प्रकट की जाती थी कि स्नातक के पास शिष्यों की कमी न रहे और वह अपनी विद्या दूसरों पर प्रकट करे। जो ब्राह्मण अध्यापन नहीं करते थे, स्मृतियों ने उन्हें श्राद्ध में निमंत्रण के अयोग्य ठहराया। एक स्थान पर तो ब्राह्मण को दैवीदंड मिलने का भी वर्णन है, जिसने वेदों का ज्ञान प्रसारित करने में हाथ नहीं बटाया था:—

स चूतवृक्षो विप्रोऽभूत् विद्वान् वै वेदपारगः
विद्या न दत्ता विप्रेभ्यः तेनैव तरुतां गतः।

इस प्रकार अध्यापन एक प्रमुख सामाजिक कर्तव्य था।

शिष्यों का चयन तथा उनके प्रति व्यवहार—अध्यापन में गुरु को अपने शिष्यों के नैतिक गुणों तथा बौद्धिक स्तर के आधार पर चयन का अधिकार था। पर इन आधारों के सुपुष्ट होने पर गुरु किसी शिष्य को पढ़ाने से मना कर सकता था, चाहे वह निर्धन हो, अथवा धनी। पहिले सभी विद्यार्थी गुरु के पास उसके कुटुम्ब के अंग होकर रहते थे, और घर के काम काज में सहायता देते थे। बाद में गुरु की सेवा विनय लाने ही के लिये रह गई थी। जातकों से प्रतीत होता है यदि कोई शिष्य गुरु-दक्षिणा प्रथम ही देने को राज़ी होता था तो उसे अधिक कार्य न करना पड़ता था। किन्तु निर्धन विद्यार्थी दिन में गुरु की धनोपार्जन में सहायता करते थे तथा रात्रि में

अध्ययन करते थे। पर शिष्यों को अपने लाभ के लिये प्रयुक्त करके उनके श्रम से अनुचित लाभ उठाने की छूट गुरु को न था। कूर्म पुराण के अनुसार यदि गुरु एक वर्ष तक विद्यार्थी को ज्ञान न बताये तो वह शिष्य के पापों का भागी होता है। व्यावसायिक शिक्षा में शिष्य एक निश्चित काल के लिये गुरु के साथ रहने तथा उसके काम में हाथ बटाने को प्रतिज्ञाबद्ध रहते थे, गुरु द्वारा उपेक्षित होने पर वे भी प्रतिज्ञामुक्त मान लिये जाते थे। इस प्रकार गुरु शिष्यों के निवास तथा भोजन का प्रबन्ध करता था। अपने सहवासियों को ही वह पढ़ाता था। इसी लिये शिष्यों को अंतेवासी कहा जाता था। यह प्रथा १९ वीं शताब्दी तक भारत में वर्तमान थी।

अध्यवसायी, संयमी, गुरु-सेवक तथा आज्ञापालक कुशल शिष्य से ज्ञान रंचमात्र भी छिपाने का अधिकार गुरु को न था। ऐसा करने से वे पातकी होते थे। उपनिषत्काल में हमें मालूम होता है कि याज्ञवल्क्य को उसके गुरुओं आरुणि तथा जनक ने अपना संपूर्ण ज्ञान बताया, जिससे उसने और भी उन्नति करके बाद में अपने गुरुओं को भी शिक्षित किया। जातकों से पता चलता है कि भगवान् बुद्ध को निर्वाण के पहिले आलारकालाम के शिष्यत्व में गुरु का सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त हुआ—"इस प्रकार मेरे गुरु होते हुये भी आलार कालाम ने मुझे अपने शिष्य को अपना समकक्षी बना लिया।" * केवल असंयमी तथा अयोग्य शिष्यों से ज्ञान छिपाना श्रोत्रिय गुरुओं का कर्तव्य था। उपनिषत्काल में गुरुओं को एक अधिकार और था कि वे उन्हीं शिष्यों को पढ़ावें जो ऊँचे बौद्धिक तथा नैतिक स्तर के हों और जो कम से कम एक वर्ष की शिष्यता स्वीकार करें। कुछ गुरु यथा याज्ञवल्क्य तथा प्रवाहण जैवालि शिष्यता स्वीकार कराना आवश्यक नहीं समझते थे और अशिष्यों को भी शिक्षा देते थे।

---

*Altekar: Education in Ancient India.

निःशुल्क शिक्षा—भारतीय शिक्षा निशुल्क थी, गुरु किसी भी विद्यार्थी को उसकी निर्धनता के कारण पढ़ाने से मना नहीं करते थे साथ ही वे उसके रहने तथा भोजन का भी प्रबन्ध करते थे। प्रारम्भ में तो यही प्रथा थी क्योंकि अधिकांशतः बालकों को प्रारम्भिक तथा वेदों की शिक्षा भी घर ही पर मिल जाती थी। उच्च ज्ञान ही के लिये उन्हें बाहर जाना पड़ता था। किन्तु स्मृतियों में हमें दो प्रकार के शिक्षकों का वर्णन मिलता है। एक तो उपनयनकर्ता और निःशुल्क शिक्षक आचार्य तथा दूसरे शुल्क लेकर पढ़ाने वाले उपाध्याय। जातकों से पता चलता है कि तक्षशिला के अध्यापक प्रथम ही शुल्क भी लेते थे। बनारस के राजा ब्रह्मदत्त ने अपने सोलह वर्षीय पुत्र को तक्षशिला भेजा था. वहाँ राजकुमार तथा गुरु की वार्ता से यह स्पष्ट है। नाम, नगर तथा आने का कारण जान लेने पर गुरु ने पूछा "अच्छा, तो तुम उपाध्याय का शुल्क लाये हो, अथवा तुम्हारी इच्छा अध्यापन के लिये मेरी सेवा करने की है।" "मैं शुल्क लाया हूँ" और ऐसा कह कर सहस्रमुद्राओं की थैली गुरु के चरणों पर रख दी।* जातकों से तक्षशिला के ऐसे विद्यार्थियों का भी पता चलता है जो गुरु के साथ न रहकर निकट ही छात्रावासों अथवा अपने घरों में रहते थे।

परन्तु इन शुल्क लेने वाले अध्यापकों को बड़ा हेय माना जाता था। महाभारत में व्यास ने इन्हें वेदों का विक्रेता कह कर नरक का अधिकारी ठहराया है। कालिदास ने भी वेदों के द्वारा जीविकोपार्जन करने को बनियापन क़रार दिया है।

निःशुल्क विद्यार्थियों का यह कर्तव्य था कि वे समावर्तन (दीक्षांत समारोह) के बाद अपने गुरु को यथाशक्ति दक्षिणा दें। समावर्तन के अवसर पर स्नातक के लिये नये वस्त्र आभूषण आदि

---

*K. S. Vakil. Education in India.

भेजते समय अभिभावक गुरुओं के लिये भी वही वस्तुयें भेजते थे। विद्यार्थियों के श्रम से उत्पन्न, तथा विद्यार्थियों को उपहार में मिली वस्तुओं पर भी गुरु का ही अधिकार था। इसके सिवा जैसा दक्षिणी भारत के लेखों से पता चलता है लोग अध्यापकों तथा शिक्षालयों को दान दिया करते थे। प्राचीन काल में यही अध्यापक यज्ञ कराते थे और उन्हें दक्षिणा मिलती थी।

दक्षिणा—दक्षिणा के बारे में यह निश्चित मत था कि कुछ भी देकर शिष्य अनृणी नहीं हो सकता था। कभी कभी गुरु की इच्छा की वस्तु ही विद्यार्थी लाकर देता था। इसके लिये स्नातक भिक्षा तक मांग कर लाते थे। स्नातक के लिये यही अंतिम भिक्षा थी। इसके सिवा उपनिषदों में श्वेतकेतु का कथन आया है कि अपने ज्ञान को बढ़ाने के लिये पूर्व शिष्यों को प्रति वर्ष दो तीन मास अपने गुरु के साथ बिताना चाहिये। ऐसे अवसरों पर भी स्पष्टतया गुरुओं को उपहार मिलते होंगे। जातकों में भी इस प्रथा का वर्णन है।

अध्यापक गृहस्थ तथा सन्यासी दोनों ही प्रकार के होते थे। अस्तु शिक्षा केंद्र बस्तियों तथा बनों दोनों ही स्थानों पर पाये जाते थे। व्यावसायिक शिक्षा तो पूर्णतया बस्तियों में ही केंद्रित थी। वेदों, उपनिषदों दर्शनों आदि की शिक्षा के लिये एकांत और इसलिये बन ही अधिक उपयुक्त था। इसीलिये बस्तियों में रहने वाले विद्यार्थी भी निकटवर्ती उद्यानों तथा बनों में जाकर विद्याभ्यास करते थे।

अध्यापकों का वर्ण—आरंभ में वर्ण व्यवस्था का शिक्षा पर कोई प्रभाव न था। सभी वर्णों के अध्यापक हो सकते थे। ऋग्वेद में एक कवि—वेद-वक्ता का पिता वैद्य तथा नानी आटा पीसने वाली थी। उपनिषत्काल तक सभी वर्णों के विद्यार्थी होते थे और समावर्तन में उन्हें वेद पढ़ाने को कहा जाता था अस्तु सभी शिक्षक हो सकते थे इसी प्रकार संभवतः स्त्री पुरुषों में भी समानता थी। किन्तु

इसमें अधिकांश ब्राह्मणों तथा क्षत्रियों ही के नाम अध्यापकों में मिलते हैं। ईसा के पूर्व छठी शताब्दी तक क्षत्रिय अध्यापकों के नाम मिलते हैं। सूत्रों में स्पष्ट आज्ञा है कि ब्राह्मण शिष्य भी अपने अब्राह्मण गुरुओं का वैसा ही आदर करें जैसा ब्राह्मण गुरुओं का। अश्वपति कैकेय ने ब्राह्मणों को शिष्यता स्वीकार करते समय पूछा था "कि यह क्यों जब आप श्रोत्रिय ब्राह्मणों के पुत्र तथा स्वयं श्रोत्रिय ब्राह्मण हैं!" ब्राह्मण "आप वैश्वानर (परमब्रह्म) को भली प्रकार जानते हैं, उसकी शिक्षा हमें दीजिये।" अश्वपति "मैं यथार्थ में वैश्वनर को जानता हूँ। अपनी समिध अग्नि में रख दो। तुम मेरे शिष्य हुये।"

बाद में धीरे-धीरे स्त्रियों तथा ब्राह्मणेतर वर्णों को वैदिक शिक्षा में रुचि कम हो गई क्योंकि अन्य विषय बढ़ गये थे, तथा शीघ्र विवाह (चाणक्य के अनुसार १६ वर्ष के बालकों का विवाह हो जाना चाहिये तथा धर्मशास्त्रों के अनुसार रजोदर्शन के पूर्व ही कन्या का विवाह उचित था) से भी बाधा पड़ने लगी थी। अस्तु संभवतः अधूरे ज्ञानी अध्यापकों से शिष्यों की रक्षा के हेतु केवल ब्राह्मणों को ही वेद, उपनिषद् दर्शन आदि पढ़ाने की आज्ञा मिली। ११ वीं शताब्दी में अलबरूनी लिखता है कि केवल ब्राह्मण ही वेद पढ़ा सकते थे, तथा क्षत्रिय और ब्राह्मण वेद पढ़ सकते थे। वैश्य तथा शूद्रों को इन विषयों के अयोग्य ठहरा दिया गया था। यही व्यवस्था तथा धारणा प्रायः अभी तक विद्यमान है।

चरक—वेद-ब्राह्मण काल में ज्ञान को प्रसारित करने तथा उसे निरंतर वृद्धिमान् रखने के लिये अपने घरों तथा आश्रमों में पढ़ाने वाले ही अध्यापक यथेष्ट नहीं माने जाते थे। इनके सिवा ज्ञानेच्छु व्यक्ति एक स्थान से दूसरे स्थान को आया जाया करते थे। इन्हें चरक कहते थे। ये जहाँ ठहरते थे वहाँ के लोगों को ज्ञान के विषय में बताते थे तथा विद्वानों से शास्त्रार्थ करते थे।

परिषद्—इनके सिवा कई क्षेत्रों में परिषदें थीं, यथा पांचाल परिषद। ये परिषदें विद्वानों की गोष्ठियां थीं, जिनमें आकर नये स्नातक तथा चरक अपनी योग्यता शास्त्रार्थों द्वारा प्रमाणित करते थे। इनके महत्व के बारे में दो बातें ही पर्याप्त होंगी। यास्क के मत में वेदमंत्र निरर्थक नहीं थे क्योंकि उनकी भाषा अनिश्चित थी। इस भाषा को निश्चित रूप और निश्चित अर्थ विद्वत्संघों ने दिया (विद्वत्संघे वा मकृत)। दूसरे समावर्तन के दीक्षांत भाषणों में उल्लेख है कि जिन बातों पर सन्देह हो उनके लिये वहीं के विद्वान् ब्राह्मणों के मत तथा आचरण का आदर्श मानना चाहिये। ये अनुकरणीय ब्राह्मण इन्हीं परिषदों के प्रमाणित सदस्य ही होते थे।

इनके स्थायी सदस्य भी परस्पर शास्त्रार्थ तथा विचार विनिमय के द्वारा ज्ञान बढ़ाया करते थे। संभवतः बौद्ध विहारों के विश्व-विद्यालयों का स्वरूप इन्हीं परिषदों के आधार पर गढ़ा गया था। केवल उनमें गुरु तथा अधिकांश शिष्य सन्यासी होने के कारण सभी लोग एकत्र निवास भी करते थे।

सभायें—इनके सिवा यज्ञों के समय सभायें भी होती थीं जहां स्नातक तथा अध्यापक अपनी योग्यता प्रमाणित करते थे। इनमें पुरस्कार भी दिया जाता था। राजा जनक ने एक ऐसी सभा की थी जिसमें विजेता के लिये सौ गायें तथा मुद्रायें रखी गई थीं। याज्ञवल्क्य ने यह पुरस्कार विजित किया था।

इन अध्यापकों के बारे में एक बात और सराहनीय है कि सूत्रकाल तक वे सभी विषयों को पढ़ाते थे यद्यपि सूत्रकाल में भी विशिष्ट विषयों में ही ज्ञानी अध्यापकों तथा शिक्षा केंद्रों का वर्णन मिलता है। ये अध्यापक वेद तथा उपनिषद, व्याकरण, ज्योतिष, दर्शन, व्यावसायिक शिक्षा, सूत्रग्रंथ साहित्य आदि में से कुछ के ही विशेषज्ञ होने लगे थे। इस प्रकार बहुज्ञता का ह्रास धीरे धीरे होने लगा और आजकल म

हमें इसी प्रकार के अल्पज्ञ अथवा विशेषज्ञ अध्यापक ही दिखाई देते हैं, क्योंकि संपूर्ण पाठ्यक्रम किसी एक व्यक्ति के लिये असंभव हो गया था।

विद्यार्थी

ब्रह्मचर्य की महिमा—डाक्टर राधाकुमुद मुखर्जी के शब्दों में प्राचीन भारत में विद्यार्थित्व का विकास एक विज्ञान अथवा कला के रूप में हुआ था, जिसमें युग अथवा देश के अनुसार किसी परिवर्तन की अपेक्षा न थी। पाठ्यक्रम चाहे जो हो पर शिक्षा-पद्धति, अनुशासन तथा दीक्षा की विधि सदैव एक ही रहती थी। इसका मुख्य आधार-स्तंभ ब्रह्मचर्य था। यथार्थ में ब्रह्मचर्य हिन्दू जीवन तथा विचारधारा का मुख्य आधार है। ब्रह्मचर्य की महिमा का वर्णन कई स्थानों में मिलता है। ब्रह्मचर्य से ही प्रजापति ने सृष्टि की रचना की। ब्रह्मचर्य ही से राजा ठीक शासन करते थे तथा बालिकायें योग्य वर चुनती थीं। इन्द्र ने स्वर्ग तथा पृथ्वी को ब्रह्मचर्य ही से धारण किया। देवों के देवत्व का यही कारण था। इसी के प्रबल प्रताप से अश्विनों ने अमरत्व प्राप्त किया था। अस्तु ब्रह्मचर्य केवल शिक्षा ही के लिये नहीं वरन् जीवन के लिये भी आवश्यक था। अस्तु वह साधन होने के साथ ही लक्ष्य भी था।

उपनयन—उपनयन के बाद बालक ब्रह्मचारी बनकर ब्रह्मचर्य पालन करता हुआ शिक्षा पाता था तथा भावी जीवन के योग्य बनता था। अस्तु ब्रह्मचर्य का पालन करते हुये वह वेदोपनिषद् ही नहीं वरन् अन्य साधारण विषयों—शिल्प, आयुर्वेद धनुर्वेद का भी अध्ययन करता था। अस्तु वैदिक काल में उपनयन शिक्षा-संस्कार था और उपनयन से लेकर समावर्तन तक विद्यार्थी गुरु के पास रहकर शिक्षा पाते थे और शारीरिक तथा आत्मिक अनुशासन का पालन करके गुरु को संतोष देते थे। डाक्टर अल्तेकर के मत में प्रारंभ में ब्रह्मचर्य का

अर्थ प्रार्थनाओं का अध्ययन था क्योंकि ब्रह्म का अर्थ प्रार्थना था। इस उच्चतम शिक्षा के समय विद्यार्थियों को कुछ नियमों का पालन करना आवश्यक था, जिसके द्वारा उन प्रार्थनाओं को समझने, याद रखने आदि में सुविधा होती थी। इसी कारण बाद में शिक्षा प्राप्ति के समय के संयमशील जीवन को ब्रह्मचर्य कहा जाने लगा। इस युग में उपनयन ही प्रथम महत्वपूर्ण संस्कार था जो वही लोग करते थे जो विधिवत् शिक्षा ग्रहण करना चाहते थे, गुरु चाहे पिता हो अथवा कोई और। इसी कारण जितने बार गुरु बदलते थे उतने ही उपनयन तथा समावर्तन संस्कार होते थे। प्रत्येक गुरु के पास एक वर्ष कम से कम रहना पड़ता था। साधारण शिक्षा का काल भी बारह वर्ष था। उत्तरवैदिक काल में कुछ गुरुओं ने उपनयन अथवा शिष्यत्व थोड़े दिन के लिये स्वीकार कराना आवश्यक न माना। दूसरे सूत्र काल तक ज्ञान इतना बढ़ गया था कि उसकी रक्षा के लिये पूर्ण समाज के सहयोग की आवश्यकता थी, अस्तु उपनयन सभी द्विजों के लिये अनिवार्य कर दिया गया और वह एक शरीर-संस्कार बन गया। अस्तु एक बार उपनयन होने पर कई गुरुओं से भी पढ़ा जा सकता था। कभी-कभी एक साथ ही विद्यार्थी कई गुरुओं से पढ़ता था।

विद्यारंभ संस्कार—इसी काल में वैदिक भाषा का स्वरूप बदलने से वेदों के पहिले भाषा, व्याकरण, छन्द आदि वेदांगों का अध्ययन और भी आवश्यक हो गया। लेखन कला का प्रयोग अधिक होने से उसका सीखना भी आवश्यक हो गया। अस्तु शिक्षण भी जल्दी आरंभ होने लगा परन्तु कच्ची आयु में ब्रह्मचर्य का पालन तथा घर छोड़कर जाना ठीक न था अस्तु उपनयन के पहिले एक और शिक्षा संस्कार का जन्म हुआ। इसका वर्णन सूत्रकाल के बाद से मिलता है (प्रायः ईसा के २०० वर्ष पूर्व से)।

विद्यारंभ अथवा अक्षर-स्वीकरण संस्कार साधारणतया पाँचवें वर्

में चूड़ाकर्म के बाद होता था। इसके बाद बालक लिपि तथा संख्यायें सीखता था (कृतचौलकर्मा लिपिं संख्यानं च उपयुनजीत—रघुवंश)।

उपनयन संस्कार—इसके बाद आठ से बारह वर्ष की आयु तक साधारणतया विद्यार्थी का उपनयन होता था। उपनयन का अर्थ आचार्य से अध्ययन की अनुज्ञा प्राप्त करना था। इसी हेतु उपनयन के समय विद्यार्थी आचार्य से शिक्षा पाने की अनुमति माँगता और जब गुरु आवश्यक पूछ ताछ के बाद कहता था कि मेरे पास आ जाओ (एह्युपेहि) तो वह मैं आपके पास आता हूँ। (उपैमि अहं भवन्तम्) कह कर शिष्यत्व स्वीकार करता था।

इस मुख्य बात के साथ ही उपनयन संस्कार से संबंधित यज्ञ अनुष्ठान आदि तीन दिन चलते थे। प्रथम दिन आचार्य बालक पर हाथ रखता था और तीसरे दिन उसका दूसरा जन्म होता था, जब वह ब्रह्मचारी के रूप में ज्ञान मार्ग पर अग्रसर होता था। तीसरे दिन सुबह विद्यार्थी बिना स्नान के भोजन करता था, यह अनियमित जीवन का अन्त था। इसके बाद स्नान करा कर उसे कौपीन, मूंज की मेखला, मृगचर्म तथा उपवीत पहिनाया जाता था। और एक दंड तथा भिक्षा पात्र मिलता था। विद्यार्थी जीवन की यही वेषभूषा थी। इसके बाद वह अग्नि में समिध डालता था और आचार्य उसे सविता आदि देवताओं के संरक्षण में तथा इंद्र व अग्नि * के तथा अपने शिष्यत्व में प्रवेश कराता था। उसके हृदय को स्पर्श कर अनवरत सहयोग की प्रार्थना के बाद आचार्य उसे गायत्री मंत्र पढ़ाता था और उपनयन समाप्त हो जाता था। इस प्रकार उपनयन द्वारा ब्रह्मचारी का साक्षात्कार आचार्य, वेद, देवता तथा तापस जीवन से होता है।

कौपीन साधारण जीवन तथा वृथाभिमान अथवा टीमटाम से दूर

---

* व्यावसायिक शिक्षा में इनके स्थान पर अन्य संबंधित देवताओं का स्थान था, यथा आयुर्वेद में धन्वन्तरि, अश्विन, प्रजापति आदि,

रहने का द्योतक था। त्रिगुणी मेखला तीनवेदों की प्रतीक होकर विद्यार्थी को चारों ओर से घेर उसकी रक्षा करने की द्योतक थी। मृगचर्म ब्रह्मचारी को शिक्षित तथा सदाचारी बनने का आदेश करता था क्यों कि वह ऋषियों का परिधान था। उपवीत के नौ डोरे नौ मुख्य देवताओं के प्रतीक थे। दंड के कई अर्थ थे, प्रथमतः वेदों की रक्षा और ज्ञानमार्ग के पथिक होने का प्रतीक तथा आत्मसंबल का आधार यही दंड था। साधारण जीवन में भी इस की आवश्यकता पड़ती ही है। भिक्षापात्र भिक्षाचरण द्वारा विनय लाने के लिये था।

उपनयन के समय आयु पर मतभेद है। साधारणतया ब्राह्मण क्षत्रिय तथा वैश्य के लिये क्रमशः आठ, ग्यारह तथा बारह वर्ष की अवस्था होने पर उपनयन का नियम था। अधिकतम आयु भी क्रमशः चौबीस, तैंतीस तथा छत्तीस थी। कुछ विद्वानों के मत में ब्राह्मण की निम्नतर आयु उसकी उच्चतर बौद्धिक क्षमता का द्योतक है कि वह उस समय भी वेदाध्ययन आरंभ कर सकता था। शायद क्षत्रियों तथा वैश्यों को अधिकतर अपना घर छोड़कर गुरु के यहाँ जा कर रहना पड़ता था, जब कि ब्राह्मण साधारणतया अपने घर पर ही वेद भी पढ़ते थे, इसी कारण आयु विपर्यय रखागया था बाद में जब विद्यार्थी बहुत दूर२प्रसिद्ध गुरुओं के पास वेदोपनिषद पढ़ने जाने लगे, जैसे पूर्व मगध से तक्षशिला, तो बौधायन ने १६ वर्ष की आयु ही उपनयन के अधिक उपयुक्त मानी यद्यपि इसके पहिले आठ वर्ष से ही उपनयन करने की अनुमति भी दी है। एक कारण और हो सकता है कि क्षत्रिय वैश्यों को सभी वेद पढ़ने की उतनी इच्छा तथा आवश्यकता न थी, जितनी ब्राह्मणों को, जिन पर कालान्तर में ज्ञान की रक्षा यथा वृद्धि का मुख्य भार पड़ा था।

विद्यार्थी जीवन का अनुशासन—विद्यार्थी जीवन में आंतरिक तथा बाह्य दोनों प्रकार के अनुशासनों का पालन विद्यार्थी को करना

पड़ता था। विद्यार्थी का पहिनावा सादा ही नहीं कठोर था, उसे आराम के कपड़े, जूते, छाता आदि प्रयोग करने की मनाही थी। इसी प्रकार उसे शरीर का सजाना, सुगन्धियों का प्रयोग करने, अञ्जन लगाने आदि की आज्ञा न थी। इतना ही नहीं उसे आनन्द के लिये स्नान अथवा तैरने तक की आज्ञा न थी। स्नान आवश्यकता तथा दैनिक जीवन का अंग मात्र था उसे दिन में, तथा गुरु के जागते रहने पर सोने की आज्ञा न था। गुरु की आज्ञा का पालन और दास के समान उसकी सेवा शिष्य का कर्तव्य था। गुरु की अनैतिक आज्ञाओं के सिवा उसे सभी आज्ञायें मानना पड़ती थीं। अग्निहोत्र के लिये समिध एकत्र करना तो उसका दैनिक कर्तव्य था, साथही आवश्यकतानुसार उसे कृषि गोपालन आदि में भी गुरु की सहायता करनी पड़ती थी। भिक्षाचरण भी आवश्यक था। जातकों के समय तक भिक्षाचरण सप्ताह में कम से कम एक बार अवश्य करना पड़ता था। इन बातों में त्रुटि होने पर प्रायश्चित्त का विधान था। दूसरी ओर विद्यार्थी के लिये अग्निहोत्र तथा गायत्री-जप आवश्यक था। साथ ही उसे अपने संयम तप, तथा ज्ञानेच्छा से गुरु को संतुष्ट करना पड़ता था, अन्यथा गुरु से शिक्षा पाने का अधिकार ही समाप्त हो जाता था, और प्राप्त ज्ञान भी नष्ट हो जाता था। यास्क के मत में आचार्य को केवल अपने पास रहने वाले मेधावी तपस्वी तथा ज्ञानपिपासुओं को ही पढ़ाना चाहिये। यास्क ने एक कहानी लिखी है कि विद्या ब्राह्मण के पास गई और कहा मेरी रक्षा करो, मैं तुम्हारी निधि हूं। मेरा वर्णन असूयक—ईर्ष्यालु, अनृजु—कुटिल, तथा अयत-संयम हीन विद्यार्थियों में मत करो, तभी मैं शक्तिमती होऊंगी।

"शिष्य को गुरु का माता पिता के समान आदर करना चाहिये; क्योंकि वह बिना कष्ट कानों को ज्ञान से वेध कर ज्ञान द्वारा अमरत्व प्रदान करता है। जिस प्रकार आचार्य आदर न करने वाले विद्यार्थियों

को निकाल देते हैं, उसी प्रकार ज्ञान भी उन्हें छोड़ देता है, चाहे वे बहुत ही शिक्षित क्यों न हों ?

"अस्तु, हे ब्राह्मण, अपनी निधि-मेरी रक्षा के लिये मुझे शुचि, अप्रमत्त (विषयों से निर्लिप्त) बुद्धिमान् ब्रह्मचारियों ही को पढ़ाओ।" इसमें विद्यार्थियों के नैतिक गुणों की उपेक्षा पर विशेष ज़ोर दिया गया है। उपनिषदों, महाकाव्यों तथा सूत्रों आदि ग्रन्थों में भी इसी मत का प्रतिपादन हुआ है कि विद्यार्थी की नैतिक योग्यता का ध्यान रखना चाहिये।

स्त्री तथा वैश्य-शूद्र विद्यार्थी—विद्यार्थियों की भरती तथा अध्यापन पर इसके सिवा कोई प्रतिबंध न था। सातवीं आठवीं शताब्दी में ही वैदिक शिक्षा-केन्द्रों में वैश्यों तथा शूद्रों, और आगे चलकर स्त्रियों पर भी प्रतिबंध लग गया। जान पड़ता है कि विद्यार्थी महाकाव्यकाल तक निश्चय ही सभी वर्णों तथा लिंगों के रहते थे। सातवीं शताब्दी तक मंडन मिश्र की पंडिता पत्नी जैसी विदुषी स्त्रियाँ थीं जो गूढ़तम विषयों के शास्त्रार्थ की निर्णायिका हो सकती थीं। उपनिषदों में उन्होंने याज्ञवल्क्य जैसे प्रकांड पंडित से शास्त्रार्थ किया था, वे ब्रह्मवादिनी कहलाती थीं। वेदों की कुछ द्रष्टायें स्त्रियाँ थीं, यथा लोपमुद्रा तथा घोषा। डाक्टर मुखर्जी ने यजुर्वेद उपनिषदों, रामायण तथा सूत्रों से शूद्रों की वैदिक शिक्षा के प्रमाणों को एकत्र किया है, व्यावसायिक शिक्षा तो उन्हें मिलती ही थी। यजुर्वेद में ब्राह्मण, राजन्य शूद्र तथा चारण (वैश्य) को एक साथ कल्याणी वाचा (वेद) पढ़ाने का वर्णन है। शतपथ ब्राह्मण में एक ब्राह्मण आचार्य का वर्णन है जिसके शिष्यों में सूद लेने वाले वैश्य, मछुये, साँपों के मदारी, बहेलिये आदि थे। रामायण में भी चारो वर्णों को वेद पढ़ाने का आदेश (श्रावयेच्चतुरो-वर्णान्) है। बौधायन ने रथकारों के उपनयन का वर्णन किया है।

दैनिक जीवन—विद्यार्थियों का दैनिक जीवन नियमों से बँधा था। वे उषाकाल के पहिले ही उठकर नित्यकर्म, स्नानादि से निवृत्त होकर सन्ध्या करते थे। उसके बाद वे गुरु के अग्निहोत्र में योग देते थे। इसके बाद अध्यापन होता था। यही प्रथा बराबर बनी रही जैसा कि मध्यकालीन ग्रन्थों से मालूम होता है। जातकों से प्रतीत होता है कि वहाँ पर फ़ीस न देने वाले विद्यार्थी रात में पढ़ाये जाते थे और दिन में वे अग्निहोत्र के बाद गुरु के आर्थिक कार्यों में लग जाते थे। सभी विद्यार्थियों को भी गुरु के कामों से बचे हुए समय में ही पढ़ने की आज्ञा थी (गुरोः कर्मातिशेषेन अध्ययनं)। इसके बाद भिक्षाचरण, गोपालन आदि। फिर भोजन और आराम। अपराह्न में पाठ का दोहराना, समिध एकत्र करना तथा पारस्परिक शास्त्रार्थ। बाद में लिखने की पद्धति होने पर अपराह्न में ग्रन्थों की प्रतिलिपि भी की जाती थी। शाम को अग्निहोत्र के बाद भोजन, शयन।

ब्रह्मचारियों का कर्तव्य यह भी था कि वे गुरु के साथ यजमानों के यहां, परिषदों आदि में जावें और वहां के शास्त्रार्थों से यथासंभव लाभ उठावें। जनक के यहां होने वाली सभा में याज्ञवल्क्य के साथ उनके शिष्य थे जो पुरस्कार की गायों को हांक कर ले गये थे। यहां पर भिक्षा और गोपालन आदि सेवाओं के बारे में एक बात स्मरण रखना चाहिये कि इनका उद्देश्य आर्थिक से अधिक नैतिक था। भिक्षा से विनय आती थी, तथा गृहस्थों और समाज को निशुल्क शिक्षा के प्रबन्ध के दायित्व का स्मरण कराया जाता था। अस्तु ब्रह्मचारी अपनी आवश्यकता से अधिक न मांगता था और प्रायः कभी-कभी मांगता था। गृहस्थों पर नाहीं करने से संकट की आशंका रहती थी। साथ ही विद्यार्थी जीवन के बाद भिक्षा अशुचिकरा थी, और धर्मशास्त्रों ने निर्धन स्नातकों का भार राज्यकोष पर डाला था। इस बात का

स्पष्ट उल्लेख है कि गुरु को उसके श्रम का उपयोग अपने लाभ के लिये अथवा उनको शिक्षा में व्याघात पहुँचा कर करने का अधिकार केवल विशेष संकटकालों में है। इसको न मानने पर गुरु को पाप लगता था, और अनैतिक गुरु की आज्ञा मानना विद्यार्थी के लिये आवश्यक न था।

इस प्रकार विद्यार्थी जीवन नियमित था पर कष्टकारी अथवा अपमान जनक न था। इस जीवन के द्वारा ब्रह्मचारी की नैतिकता तथा बुद्धि का विकास होता था, वह वर्णाभिमान, यश, तंद्रा, क्रोध शारीरिक सौंदर्य पर मिथ्याभिमान, तथा डींग हांकना आदि भावनाओं को वश में करके शांत, दांत (संयमी), उपरत (विषयनिर्लिप्त) तितिक्षु (धैर्यवान्) तथा समाहित (एकाग्रचित्त) होकर उच्चतम ज्ञान को उपार्जन करने के योग्य बन जाता था।

विद्यार्थी जीवन का काल—वैदिक काल में ब्रह्मचर्य अथवा विद्यार्थी जीवन बारह वर्ष के लगभग रहता था। बाद में प्रत्येक वेद से सम्बन्धित शाखाओं तथा चरणों की वृद्धि से ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषदों की संख्या बहुत बढ़ गई थी। अस्तु एक वेद के लिये बारह वर्ष काफ़ी होता था, और विद्यार्थी छत्तीस तथा अड़तालीस वर्ष तक पढ़ते थे। कुछ नैष्ठिक ब्रह्मचारी बन जाते थे जो आजन्म ब्रह्मचर्य का पालन करते थे और ब्रह्मचर्य से ही सन्यास लेते थे। समाज ने इस पद्धति के अवगुणों को देखा कि कुछ ऐसे लोग गृहस्थाश्रम के दायित्वों से भागते हैं, जिनकी सन्तति के सबसे अधिक योग्य होने की सम्भावना थी। अस्तु इस अकाल के वैराग्य को बुरा समझा गया। बोधायन ने स्मरण दिलाया कि वैदिक प्रथा के अनुसार काले बालवालों को ही गृहस्थ बनना चाहिये (कृष्ण केशो हि अग्नीन आदधीत इति श्रुतेः)। शुक्र ने आजन्म विद्यार्थियों को कारावास तथा देशनिकाले की सजा का विधान किया। चाणक्य ने भी अठारह बीस

वर्ष की आयु में ही शिक्षा समाप्ति तथा विवाह का नियम बनाया। श्वेतकेतु ने इसी लिये प्रतिवर्ष गृहस्थों को अपना ज्ञान बढ़ाने के लिये गुरु के पास रहने की अनुमति दी थी। बौद्ध तथा जैन धर्मों के भिक्षुओं को देखा देखी नैष्ठिक ब्रह्मचारियों की पद्धति ने पुनः ज़ोर पकड़ा। इस समय १०१वर्ष तक के ब्रह्मचर्य का भी वर्णन मिलता है।

दंड—विद्यार्थियों को कठिन शारीरिक दंड देने की व्यवस्था साधारण न थी। नितांत आवश्यकता (अनैतिक व्यवहार) पड़ने पर पतली रस्सी अथवा छड़ी से कोमल अंगों को छोड़कर मारने की ही अनुमति थी अन्यथा शिक्षक राज्य दंड का भागी होता था। अन्य दंडों में धमकाना, उपवास, शीतस्नान, तथा अध्यापक के सामने से हटाना आदि थे। यह दंड विधान आधुनिक विचारों के अनुरूप ही थे।

शिक्षा का वर्ष—वैदिक काल में प्रतिवर्ष शिक्षा का आरंभ आषाढ़ी पूर्णिमा को उपाकर्म यज्ञ के बाद होता था और पौष पूर्णिमा के बाद उत्सर्जन के साथ समाप्त होता था, जब वृक्षों की जड़ों में पानी सूख जाता था। बीच बीच में भी पूर्णिमा, अष्टमी, शुक्लपक्ष की द्वितीया तथा पर्वों में शिक्षण बन्द रहता था। अकाल, युद्ध, बीमारियों तथा ग्राम रक्षा के अवसरों पर भी विद्यार्थी अध्ययन से मुक्त कर दिये जाते थे। सूत्रकाल से यह समय कम मालूम पड़ने लगा, अस्तु पौष से अषाढ़ तक वेदेतर विषयों का अध्ययन होने लगा और शिक्षण क्रम वर्ष भर चलने लगा। विद्यार्थी जीवन समाप्त होने पर समावर्तन संस्कार होता था। उस दिन ब्रह्मचारियों को नहला कर उनके परिधान बदल कर उन्हें सुन्दर वस्त्र, जूते छाते आदि मिलते थे। इत्र तथा सुगंधि भी दी जाती थी। ये वस्तुयें गृहस्थ अध्यापकों के पास दोहरी भेज देते थे। इस प्रकार सजाकर गुरु स्नातकों को परिषदों में परिचय के लिये ले जाता था, जहां वे अपना ज्ञान शास्त्रार्थ द्वारा सिद्ध करते थे और परिषद की सदस्यता प्राप्त करते थे। अस्तु स्पष्ट है कि पहिले

समावर्तन सभी विद्यार्थियों का न होता था। इसके अधिकारी केवल वही होते थे जो वैदिक ज्ञान पूर्णता प्राप्त करें। बाद में सभी का समावर्तन संस्कार होने लगा और वह उपनयन का पूरक संस्कार मात्र रह गया।

बौद्ध विद्यार्थी—बौद्धों के विद्यार्थी जीवन में कुछ भिन्नता थी, क्योंकि उनका शिक्षा का सङ्गठन विहारों में केंद्रित था अस्तु भावी भिक्षुओं की शिक्षा का ही वर्णन अधिक है। शेष गृहस्थ उपर्युक्त रीति से शिक्षा पाते थे ऐसा अनुमान है। प्रव्रज्या (पब्बज्जा) के द्वारा लोग बौद्ध भिक्षु बनते थे। इस समय व्यक्ति किसी भिक्षु के सामने गेरुये कपड़े लेकर बाल बनवाकर आता था। वह उसे कपड़े पहिनकर शरणत्रय में आने के लिये कहता था। "बुद्धं शरणं गच्छामि, संघं शरणं गच्छामि, धर्मं शरणंगच्छामि" कह कर वह व्यक्ति समनेर बन जाता था। भिक्षु उसे आचरण सम्बन्धी दश व्रतों से बचाव की शिक्षा देता था, यथा जीव हत्या, चोरी, अपवित्र आचरण, मिथ्यावादन, सुरापान, असमय भोजन, सङ्गीत तथा प्रेक्षा, हार, सुगंधि, आभूषण तथा अमूल्य वस्तुयें, ऊँचा पलङ्ग अथवा बैठने का स्थान, और सोना-चांदी। इस प्रकार प्रव्रज्या समाप्त हो जाती थी और उपसंपदा तक उसी भिक्षु के निरीक्षण में समनेर रहता था। यह परीक्षणकाल था जिसमें उस व्यक्ति की रुचि तथा ज्ञान का पता चल जाता था। इसके बाद उपसंपदा संस्कार में उसे भिक्षु बना लिया जाता था जो बीस वर्ष की आयु के पहले संभव न था। दोनों के बीच में कम से कम समय कुछ भी न था, अधिकतम समय बारह वर्ष था। उपसंपदा में दस भिक्षुओं के समक्ष उस व्यक्ति के बारे में पूरा पता लगाकर उसे भिक्षु बना लिया जाता था और एक आचार्य तथा उपाध्याय के पास पांच से दस वर्ष तक उसकी शिक्षा होती थी। भिक्षु को अपना उपाध्याय स्वयं चुनना पड़ता था और वह उससे तीन बार "भगवन् मेरे उपाध्याय हो जाइये" कहता था

तो उपाध्याय सिर हिलाकर अथवा शब्दों द्वारा स्वीकार कर लेता था। उपाध्याय विनय, सूत्र, अभिधर्म आदि के द्वारा सिद्धान्तों का ज्ञान कराता था। साथ ही एक आचार्य उसे आचरण सिखाता था। प्रत्येक भिक्षु उपाध्याय नहीं हो सकता था। उसमें अपार ज्ञान, नैतिकता, संयम निर्वाण तथा निर्वाण प्राप्त करने में सहायता देने की योग्यता अपेक्षित थी। तभी वे उसे विनय तथा धर्म की समुचित शिक्षा दे सकते थे। वे दो से अधिक शिष्य तभी बना ते थे जब उनमें असाधारण क्षमता होती थी। उपाध्याय तथा भिक्षु (सद्धिविहारिक) साथ साथ ही रहते थे, तथा उनका सम्बन्ध बड़ा घनिष्ट था। भिक्षु उपाध्याय की हर प्रकार सेवा करता था तथा उपाध्याय भी उसकी पूर्ण देख-रेख करके शिक्षित करता था। बीमार पड़ने पर वह उसकी उसी प्रकार सेवा करता था, जैसे विद्यार्थी उपाध्याय की। उसके भिक्षापात्र तथा वस्त्रों का प्रबन्ध भी उपाध्याय पर था। दोनों एक दूसरे के चरित्र तथा विचारों पर नियंत्रक थे कि संघ तथा धर्म में दोष न आने पावें।

शिष्य गुरु से पहिले उठता, दैनिक कृत्यों से निवृत्त होकर गुरु के लिये दतून तथा पानी प्रस्तुत करता। फिर आसन बिछाकर उसे धुले पात्र में खीर परोसता था। फिर बर्तन धोकर गुरु के कपड़े तथा भिक्षापात्र लाकर देता था। इसके उपरान्त उपाध्याय के साथ भिक्षा को जाता था, पर न उसके बहुत पास रहता था न दूर। कभी उसे टोकता न था चाहे वह ग़लत भी कहे। लौटने में उपाध्याय से पहिले आकर आसन तथा जल प्रस्तुत करता था। कपड़े बदलवा कर नहलाता था तथा स्वयं शीघ्र नहाकर गुरु को कपड़े देता था। स्नान के बाद अध्यापन होता था जो प्रश्नों तथा उत्तरों के रूप में होता था। इसके अतिरिक्त विहारों की स्वच्छता, तथा गुरु के बिस्तर का सुखाना तथा साफ़ करना भी इन्हीं शिष्यों का कर्तव्य था। उसकी अनुमति के बिना वह दूसरे उपाध्याय को चुन न सकता था और न यात्रा पर ही जा

सकता था। बीमारी में उपाध्याय की सेवा का भार भी उसी पर था। दश वर्ष के बाद वह भिक्षु स्वयं उपाध्याय हो सकता था।

इसी प्रकार के उपाध्याय-पद्धिविहारिकों के समूह विहारों में रहते थे जो एक दूसरे को नियमानुसार चलने में प्रोत्साहन देते रहते थे। इन समूहों के पारस्परिक संबंध के भी स्थिर नियम थे। साधारण संघ के नियम सभी पर लागू थे। इन्हीं सबके आधार पर बाद में विहार उच्चशिक्षा के केन्द्र बन गये, जिनमें कुछ विहारों में केवल उन्हीं भिक्षुओं को प्रवेश मिलता था जो ज्ञान में काफी बढ़े हों, यथा नालंदा में। अस्तु ऐसे केन्द्रों में केवल उच्चतम ज्ञान तथा सिद्धान्तों के वक्ता तथा श्रोता केन्द्रित हो गये और इन्हें विश्वविद्यालयों का रूप दे दिया।

शिक्षण-विधि

शिक्षण विधियों तथा अध्ययन विधियों में समय-समय पर परिवर्तन होता गया। शिक्षकों की बुद्धि तथा विषयों का स्वरूप ही इस परिवर्तन के मुख्य कारण थे। वैदिक शिक्षा केन्द्रों की शिक्षण विधि सदैव मौखिक तथा धीमी थी। वेद मंत्रों का लिखना निषिद्ध था।

अनुपाठ—फिर इनके उच्चारण, पढ़ने का ढंग आदि का भी अर्थ से कम महत्व न था क्योंकि वेद का अशुद्ध पाठ भी घातक माना जाता था। अस्तु इन्हें पढ़ाने में पहिले कुछ दिन शिक्षक स्वर, शब्द, छन्द आदि का ज्ञान कराकर एक-एक पद विद्यार्थियों के सामने पढ़कर सुनाता था, जिसे वे ठीक उसी प्रकार दोहराते थे। इस समय अध्यापक तथा शिष्य पृथ्वी पर साथ बैठते थे। शिष्यों के आग्रह पर ही अध्यापन आरंभ होता था। इस विधि में वेद पाठ के बाद उनका अर्थ बताया जाता था। उसकी विधि यह थी कि कोई कठिन तथा समस्तपद आने पर आचार्य उसका अर्थ प्रथम

विद्यार्थी से पूछता था यदि वह बता देता तो आगे बढ़ता नहीं तो स्वयं उसे स्पष्ट करता। इस ढंग की शिक्षा में आत्मीयता प्रधान थी क्योंकि गुरु की कृपा पर ही शिक्षा अवलंबित थी। स्मरणशक्ति अत्यंत प्रबल होती थी और संपूर्ण ज्ञान प्रत्येक समय व्यवहार के लिये प्रस्तुत रहता था। धर्मरक्षित ने नागसेन को त्रिपिटक भी इसी प्रकार पढ़ाया था।

टीका—अर्थ समझाने में तथा सिद्धान्तों को बताने में विशद टीका की जाती थी। दर्शन तथा सूत्र साहित्य तो इसके बिना समझ में आ ही न सकता था। आवश्यकतानुसार उपमा, उत्प्रेक्षा, कहानी आदि की सहायता भी अध्यापक लेते थे।

कहानी—धर्म शास्त्र, नीतिशास्त्र आदि पढ़ाने में तो आख्यायिकाओं का बड़ा हाथ रहता था जैसा हितोपदेश, कथा सरित्सागर आदि से स्पष्ट है।

शंका समाधान—तीसरी प्रमुख पाठनविधि शंका समाधान वाली विधि थी। विद्यार्थी अस्पष्ट तथा संदिग्ध सिद्धांतों तथा भागों पर प्रश्न करते थे और उपाध्याय अथवा आचार्य उन्हें स्पष्ट करता था।

भाषण—चौथी विधि में उपाध्याय स्वयं ही प्रमुख बातों पर भाषण देता था जिसे सभा समझ सकने वाले लोग सुनते तथा लाभ उठाते थे। भाषण के बाद तत्सम्बन्धी शंकायें भी स्पष्ट की जाती थीं। ह्वेनसांग को नालंदा तथा अन्यत्र के शिक्षकों की इस विशेषता से बड़ा हर्ष हुआ था कि वे ग्रन्थों का पाठ ही नहीं जानते वरन अस्पष्ट भागों को समझा सकते हैं तथा संदिग्ध गुत्थियों को सुलझाने में भी प्रकाश डालते थे।

अभ्यास—व्यावसायिक शिक्षा में अभ्यास का मुख्य स्थान था। यथा आयुर्वेद में बीमारों की देखरेख, दवायें ढूंढना, धनुर्वेद में हथियारों का अभ्यास आदि।

अध्ययन विधि

श्रवण मनन तथा तप—अध्ययन की विधियों में मुख्य गुरु के पढ़ाये पाठ को दोहराना था। साथ ही अन्य विद्यार्थियों से शास्त्रार्थ अथवा बातचीत द्वारा अर्थ समझने तथा शंका निवारण का प्रयास होता था। लिखित ग्रन्थों के मिलने पर उनका पढ़ना तथा लिखना भी एक विधि थी। इस प्रकार श्रवण और बाद में उस पर तथा विशेषतया अस्पष्ट अंगों पर मनन; तथा अंत में निदिध्यासन-तप द्वारा उसे सिद्ध कर लेना वैदिक शिक्षा के लिये आवश्यक थे। प्राचीन भारत में शिक्षा धार्मिक आधारों पर बनी थी अस्तु नैतिकता तथा धर्माचरण शिक्षा के लिये आवश्यक थे। इनके बिना ज्ञान तथा शिक्षक दोनों ही विद्यार्थी का परिहार करते थे। अस्तु तप शिक्षा की महत्वपूर्ण विधि थी। उपनिषदों तथा दर्शनों की शिक्षा का तो यह व्यावहारिक तथा आवश्यक अंग था। अन्य क्षेत्रों में यदि पाठ्य विषय को समझने तथा उसकी सत्यता प्रमाणित करने के लिये इसकी आवश्यकता न थी यथा साहित्य में, तो इसके द्वारा उस ज्ञान के उपार्जन में सुविधा होती थी, क्योंकि इसके द्वारा बुद्धि, विवेक तथा स्मरण शक्ति का विकास होता था। अस्तु अध्ययन की एक प्रमुख विधि तप उपासना अथवा योग था। ऋतर्षियों ने तप तथा श्रवण द्वारा ऋषित्व प्राप्त किया था, अथवा वैदिक सभ्यता को समझे थे।

तप का अर्थ संयम तथा नियम पालन था। उपासना से तप में सहायता मिलती थी। उपासना के दो ढंग थे एक तो यज्ञादि दूसरे समाधिस्थ होकर ब्रह्म के स्वरूप पर विचार। ब्रह्म को समझने के लिये पहिले उसे उसकी व्यक्त क्रियों के रूप में जाने यथा सविता, उषा आदि। यह प्रतीक उपासना हुई। फिर उसके आनन्दमय रूप पर ध्यान जमाने से मालूम होता है वह नहीं है, अर्थात् उस ज्ञानकी

नकारात्मक अभिव्यक्ति ही संभव है और इसी से उसे नेति-नेति कहते हैं। ब्रह्म के इस रूप पर विचार करने के लिए चित्त को सांसारिक प्रवृत्तियों से हटाकर ब्रह्म पर जमाना होगा। अस्तु यह योग अथवा चित्तवृत्ति निरोध ही तप का उत्कृष्ट रूप है और ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति का आवश्यक तथा सभी शिक्षा में सहायक अंग है। चित्तवृत्ति निरोध का अभ्यास होने से श्रवण के समय शीघ्रता से बातें समझ में आयेंगी तथा मनन में भी सहायता मिलेगी।

देश पर्यटन तथा शास्त्रार्थ—देश पर्यटन तथा अन्य विद्वानों से मिलना, शास्त्रार्थ करना तथा ज्ञान चर्चा करना भी भारतीय शिक्षा-पद्धति में प्रमुख स्थान रखते थे। इसी प्रकार याज्ञवल्क्य ने जनक से शिक्षा ली तथा बाद में उन्हें शिक्षित किया। श्वेतकेतु प्राच्य से पंजाब गया तथा चाणक्य तक्षशिला से पाटलिपुत्र आया था।

परीक्षा

शिक्षा समाप्ति पर विशेष परीक्षाओं का प्रबन्ध न था। गुरु का संतोष ही सबसे बड़ी परीक्षा थी। जब जीवक सात वर्ष तक्षशिला में आयुर्वेद का अध्ययन करके चलने लगा तो उसके गुरु को संतोष न था कि उसे पूर्ण आयुर्वेद का ज्ञान हो गया है और उसने यह स्पष्ट भी कर दिया था। वेदोपनिषत्काल में समावर्तन के बाद योग्य विद्यार्थियों को गुरु परिषदों में ले जाते थे तथा वहां शास्त्रार्थों द्वारा वे योग्यता प्रमाणित करके परिषद की सदस्यता प्राप्त करते थे। संभवतः ये शास्त्रार्थ ही परीक्षा का कार्य करते थे। चरक ने भी विद्वत्परिषदों में शास्त्रार्थों द्वारा वैद्यों के क्रम के निर्धारण का वर्णन किया है। राजशेखर ने भी राजदरबार में ऐसी ही परीक्षा का वर्णन किया है। परन्तु इन परीक्षाओं से यह स्पष्ट है कि वे किसी निम्नतम ज्ञान की द्योतक न थीं, जैसे आधुनिक परीक्षायें, वरन् किसी सभा तथा परिषद में ज्ञान

के अनुसार क्रम की ही परिचायक थीं। इसी हेतु नन्दों की दानशाला का अध्यक्ष सबसे बड़ा विद्वान् ही होता था।

प्रसिद्ध विद्वानों तथा शिक्षा केन्द्रों में शिष्यता द्वारा ही किसी भी स्नातक के निम्नतन ज्ञान का अनुमान लगा लिया जाता था। दूसरे शब्दों में जिस बात का परिचय आधुनिक प्रमाणपत्रों से मिलता है वह उस समय केवल गुरु तथा शिक्षा-केन्द्र के नाम से हो जाता था। ह्वेनसांग ने इसी हेतु लिखा है कि लोग नालंदा का नाम चुराकर उसके द्वारा अपने को प्रसिद्ध करते थे। इसी दोष को रोकने के लिये पाल राजाओं ने विक्रमशिला के स्नातकों को प्रमाणपत्र देने की विधि निकाली थी। अन्य राजदरबार भी विद्वानों को उपाधियों से विभूषित करते थे। उसी क्रम में अंग्रेजी सरकार ने भी कुछ उपाधियां देना आरम्भ किया था, यथा महामहोपाध्याय।

गुरुदक्षिणा—शिक्षा समाप्त होने तथा समावर्तन के उपरान्त शिष्य का कर्तव्य था कि वह गुरु को दक्षिणा द्वारा प्रसन्न करे। स्नातकों के लिये यह अपमान की बात थी कि उन्होंने दक्षिणा न दी हो। इसके लिये उन्हें अंतिमबार भिक्षा मांगने का भी अधिकार था। गृहस्थ तथा राजे महाराजे ऐसी भिक्षा के लिये न न कर सकते थे। अधिकतर स्नातक के घर वाले ही इसे प्रस्तुत कर देते थे।

संगठन तथा लाभ

शिक्षालय—हिंदू शिक्षा पद्धति में साधारणतया गुरु का घर ही शिक्षालय होता था। शिष्य उसके घर का सदस्य होकर रहता था। उसके पोषण का भार भी गुरु पर था। अतः गुरु बहुत से शिष्यों को न पढ़ा सकता था। किंतु सभी विद्वान्, वे गृहस्थ हों अथवा सन्यासी, विद्यादान में लगे होने के कारण किसी के पास बहुत ही अधिक विद्यार्थी पहुँचने की आवश्यकता न थी। जब अधिक विद्यार्थी पहुँचने

लगे तो अध्यापकों ने या तो प्रथम ही शुल्क लेकर पढ़ाना शुरू किया यथा तक्षशिला में, अथवा समाज तथा राज्य ने इन विद्यार्थियों तथा शिक्षकों के पोषण का भार अपने ऊपर ले लिया। विहारों तथा मन्दिरों के आसपास शिक्षा केंद्र बनने लगे, जिनमें लोगों की दी हुई सम्पत्ति से ख़र्च चलता था। दक्षिण के सलोंतगी, एन्नायरम आदि मन्दिर कालेजों तथा नालंदा, विक्रमशिला आदि बौद्ध विहारों में यही व्यवस्था थी। इनका प्रबंध कुछ नियमों पर आश्रित था और अध्यापक ही इनकी देखरेख करते थे। साधारण व्यक्तियों से अधिक आराम से रहने का व्यय अध्यापकों को मिल जाता था। दक्षिणी भारत में ग्रामपंचायतें तथा शासक कुछ गांव तथा भूमि शिक्षक ब्राह्मणों को दे देते थे, जो उस आय से विद्यार्थियों का व्यय भी चलाते थे। ऐसे गांव अग्रहार कहलाते थे। बंगाल के टोल भी जमींदारों की दानशीलता के फल थे। परन्तु ये सब उच्चतर शिक्षा के लिये मालूम पड़ते हैं। अस्तु उच्च शिक्षा के लिये गुरु के घरों तथा आश्रमों से बढ़ कर शिक्षाकेंद्रों की नींव पड़ी थी। आरंभिक शिक्षा प्रायः घर पर ही होती थी। सोलहवीं सत्रहवीं शताब्दी से इसके लिये भी पाठशालायें बनने लगीं जहां एक ग्राम अध्यापक गांव के सभी बच्चों को पढ़ाता था और उसके व्यय के लिये सभी गृहस्थ तथा मुख्यतया धनिकवर्ग प्रबन्ध करते थे।

व्यक्तिगत संपर्क—प्राचीन शिक्षा पद्धति में गुरु तथा शिष्य का व्यक्तिगत सपर्क अत्यंत आवश्यक माना जाता था। इसके बिना गुरु की सभ्यता, संस्कृति तथा व्यक्तित्व की स्पष्ट छाप विद्यार्थी पर न पड़ सकती थी, अस्तु अध्यापन के लिये संख्या सीमित थी। एक दो से लेकर पन्द्रह बीस विद्यार्थी तक ही एक गुरु के पास इस प्रकार शिक्षा पा सकते थे। एक साथ शिक्षा पाने के लिये इससे बड़ा समूह कभी नहीं बना मालूम पड़ता है। नालंदा विश्वविद्यालय में भी ८५००

विद्यार्थियों के लिये १५०० अध्यापक थे। किंतु सातवीं आठवीं शताब्दी के बाद राजनैतिक अशांति के कारण शिक्षा संगठन छिन्न भिन्न होने से अध्यापकों की संख्या कम हो गई थी, तथा पहिले भी कुछ आचार्य प्रसिद्ध होने के कारण उनके शिष्यों की संख्या बढ़ जाती थी। इन बढ़े हुये शिष्यों की शिक्षा के लिये कुशल विद्यार्थीयों की सहायता के सिवा और कोई चारा न था। प्रबन्ध तथा निरीक्षण आचार्य के हाथ में था पर उसके प्रधान शिष्य भी छोटे छोटे समूहों को शिक्षा देते थे। प्रधान आचार्य समय समय पर सभी शिष्यों से संपर्क रखता था। इसी प्रकार की पद्धति का पता हमें तक्षशिला में मिलता है और इस प्रकार ही एक एक आचार्य के आश्रम में पांच पांच सौ तक शिष्य रह सकते थे।

संगठन के बारे में एक अन्य सराहनीय बात यह है कि गुरुकुल आदर्श रहने के कारण एक वंश अथवा शिक्षण केंद्र की अलग परम्परा बन जाती थी, जिसे उन्नत तथा विकसित बनाने में उससे संबंधित सभी प्रयत्न करते रहते थे। प्रत्येक गुरुकुल की विचार धारा इस प्रकार राष्ट्रीय संस्कृति के विकास में सहायक होती थी।

बहुज्ञता—इस संगठन में धार्मिक शिक्षा, व्यावसायिक शिक्षा, आत्माज्ञान की शिक्षा, साहित्य, दर्शन, धर्म (नियम) आदि सभी की शिक्षा एक ही केंद्र में संभव थी। यद्यपि प्रत्येक अध्यापक किसी न किसी विषय का विशेषज्ञ होता था फिर भी इस प्रकार के सर्वतोमुखी शिक्षा केंद्रों का स्नातक होने के कारण उसका ज्ञान संकुचित नहीं रहता था। विशेषज्ञ नहीं वरन् बहुज्ञता ही विद्या का आदर्श था। अस्तु इस शिक्षण पद्धति के विद्यार्थी विशेषज्ञ होने के साथ ही अन्य विषयों से भी अवगत होते थे, जैसा आजकल सफल अमेरिकन शिक्षा का आधार है।

जनसाधारण की शिक्षा—अंतिम बात इस पद्धति में यह है कि

प्रत्येक बालक की शिक्षा का प्रबंध था। उसकी निर्धनता उसे उच्चतम शिक्षा पाने से भी रोक न सकती थी। बौद्धिक तथा नैतिक क्षमता तथा अध्यवसाय रहने पर हर प्रकार की शिक्षा मिल सकती थी। अस्तु उस समय सर्वदेशिक अथवा जनसाधारण की शिक्षा संभव थी जिससे अश्वपति कैकेय जैसे राजे इस बात का दावा कर सकते थे कि उनके राज्य में कोई अशिक्षित नहीं है। इस शिक्षा-पद्धति की एक प्रमुख विशेषता यह थी कि यह राजा महाराजाओं की सहायता अथवा कृपा पर ही आश्रित न थी। जनसाधारण, अध्यापकों, विद्यार्थियों तथा ग्रामपंचायतों का ही इस संगठन में मुख्य हाथ था। अस्तु हिंदू राजसत्ता नष्ट होने तथा संस्कृति नाशक बख्तियार, से लेकर औरंगजेब जैसे मुस्लिम शासकों ने भी इसे आमूल नष्ट न कर पाया। लोगों की रुचि कम होने पर ही इसमें धीरे धीरे संकोच आया था। दूसरे इस शिक्षा के लौकिक तथा पारलौकिक दोनों ही आधार होने के कारण भी इसका अस्तित्व अधिक दृढ़ था। और मुस्लिम शिक्षा केन्द्रों के विपरीत शाही कृपा अथवा राजपदों की कमी होने पर इसे कोई विशेष धक्का न लग सकता था। बाद में वैश्यों तथा शूद्रों की रुचि न रहने तथा राजनैतिक अशांति के कारण ही शिक्षा घटने लगी थी किंतु ब्राह्मण तथा क्षत्रियों में शिक्षा का मान न घटने पाया था और उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभ तक जन साधारण को कुछ न कुछ शिक्षा अवश्य मिल जाती थी।

दोष—इस शिक्षा पद्धति में कुछ दोष भी आगये जिनसे हानि हुई। सूत्रकाल तक तो लौकिक तथा पारलौकिक शिक्षा में सामंजस्य बना रहा किंतु बाद में पारलौकिक शिक्षा, कर्मवाद सन्यास तथा नैष्ठिक ब्रह्मचर्य का आवश्यकता से अधिक प्रभाव पड़ा जिससे जन साधारण का संपर्क इस शिक्षा से निकटतम न रहा, क्योंकि गृहस्थों के लिये यह ज्ञान संभव ही न माना गया। इसके कारण जन साधारण

की नैतिकता धीरे धीरे दुर्बल होने लगी। व्यवसाइयों की तो सांस्कृतिक शिक्षा समाप्त ही हो गई क्योंकि व्यावसायिक तथा सांस्कृतिक शिक्षा का संबंध टूट गया। उच्चतर शिक्षा तथा निर्गम का द्वार भी उनके लिये सदा को अवरुद्ध हो गया।

वेदोपनिषत्काल में विचार स्वातंत्र्य ने सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक उन्नति में सहायता दी थी। पर बाद में इसका उद्देश्य बाल की खाल निकालना ही रह गया अस्तु ईसा से पूर्व छठीं शताब्दी में ही हम दर्शनों की ६३ विचार धारायें पाते हैं, इनमें से कुछ ने तो ईश्वर के अस्तित्व पर भी संदेह प्रकट किया। जन साधारण इस तर्कजाल तथा वितंडावाद को समझ न सकता था।

इस विचार स्वातंत्र्य ने चौथी शताब्दी ईसवी तक ऐसा पलटा खाया कि पुरातनपंथियों ने वेदोपनिषद् को ईश्वरीय मानकर उस ज्ञान के विकास का मार्ग ही रोक दिया। फलस्वरूप शंकर जैसे अध्यात्मवादी अपने को प्राचीन ग्रन्थों के अनुकूल सिद्ध करने में ही समय नष्ट करते रहे। ब्रह्मगुप्त बराह मिहिर आदि ने ज्योतिष में जो ज्ञान प्राप्त किया, यथा ग्रहणों का कारण, उसे प्रकट करने में डरते से रहे। मिथ्याभिमान विदेश यात्रा निषेध आदि ने कूपमंडूकता का सृजन किया। अलबेरूनी के शब्दों में हमने विदेशियों से कुछ भी सीखना बंद कर दिया और इस प्रकार हमारे ज्ञान में विकास रुक सा गया।

इस शिक्षा पद्धति में संस्कृत शिक्षा का माध्यम होने के कारण प्रांतीय भाषाओं का विकास यथेष्ट न हो सका। साथ ही शिक्षा में देर भी लगती थी।

शिक्षाकेंद्र

इस वर्णन को समाप्त करने के पहिले प्रमुख शिक्षा केन्द्रों का वर्णन भी हितकर होगा। यह तो पहिले ही लिखा जा चुका है कि

गृहस्थ तथा सन्यासी दोनों ही शिक्षक होते थे अस्तु शिक्षाकेंद्र बस्तियों में भी थे और बस्तियों से बाहर वन के आश्रमों में भी मंदिरों और विहारों में भी कुछ शिक्षालय थे। सभी बड़े नगर, तीर्थ तथा राजधानियां शिक्षा के केन्द्र थे जिनक गृहस्थ ब्राह्मण आचार्यों के घर तथा मंदिर और विहारों में अध्यापन का क्रम अबाध गति से चलता रहता था। तक्षशिला, कान्यकुब्ज, अयोध्या, काशी, मिथिला, मथुरा, पाटलिपुत्र, उज्जयिनी, वलभी, काञ्ची, प्रतिष्ठान, नासिक प्रयाग, कल्याणी, मालखेद धारा, नदिया आदि सभी एक न एक समय शिक्षा के महत्वपूर्ण केंद्र थे।

वन्य आश्रम तो बिना लक्ष्य छोड़े नष्ट होगये पर उनका वर्णन भी पुस्तकों में मिलता है। कन्व तथा भरद्वाज के आश्रमों का वर्णन महाकाव्यों में मिलता है। बाण ने भी दिवाकर मित्र के आश्रम का वर्णन किया है ये भी उच्चतम शिक्षा के केंद्र थे। यहां पर केवल तक्षशिला, काशी तथा नालंदा का वर्णन पर्याप्त होगा क्योंकि वे विभिन्न ढगों के शिक्षा संगठन के लिये अत्यंत प्रसिद्ध हैं।

तक्षशिला—इसकी स्थापना मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचंद्रजी के समय भरत ने की थी और राजकुमार तक्ष यहाँ के शासक हुये थे। अस्तु इस भाग की राजधानी साधारणतया यहां रही क्योंकि यह पश्चिमोत्तर सीमा पर स्थित था। जनमेजय के नाग यज्ञ ने इसे पवित्रता प्रदान की। पारसीक, यूनानी, बैक्ट्रियन, शक, कुशन तथा हूणों ने इसे कई बार नष्ट किया; किन्तु बार-बार उस नगर का सौन्दर्य तथा संस्कृति राजधानी बनते ही वापस आ जाता था। हूणों की बर्बरता ने इसे सदा के लिये नष्ट कर दिया।

भगवान् बुद्ध के समय में तक्षशिला की प्रसिद्धि स्थिर हो चुकी थी जिससे मगध के विद्यार्थी भी यहाँ आते थे, यथा जीवक। सिकंदर को यहाँ के दार्शनिकों ने चकित किया। कुशनों के समय तक यहाँ के

शिक्षक तथा विद्यार्थी बड़े प्रसिद्ध थे। उसके बाद यहाँ का महत्व घटने लगा और फाह्यान को यहाँ कुछ महत्वपूर्ण न दिखा, तथा ह्वेनसांग को केवल आँसू बहाने के लिये खँडहर मिले।

तक्षशिला के आचार्यों के पास पाँच-पाँच सौ तक विद्यार्थी आते थे। अस्तु अपने घर में उनके निवास अथवा भोजन का प्रबन्ध वे न कर सकते थे। इसलिये नियंत्रित छात्रावासों की प्रथा चल पड़ी। यहाँ के विद्यार्थी या तो शुल्क प्रथम ही चुका देते थे, अथवा अपने श्रम से गुरु की सहायता करते थे। पाठन-विधि में भी आचार्य अपने कुशल विद्यार्थियों की सहायता लिया करते थे। प्रारंभिक विद्यार्थियों के शिक्षण का भार इन्हीं पर पड़ता था।

तक्षशिला में आयुर्वेद, धनुर्वेद तथा शिल्पों की शिक्षा का भी वैदिक तथा साहित्यिक शिक्षा के साथ प्रबंध था। ज्योतिष, मूर्तिकला आदि का यह प्रधान केन्द्र था। यहीं के यवन (यूनानी) मूर्तिकार तथा ज्योतिषी ऋषिकल्प माने गये थे। बाहरी सभ्यताओं से सम्पर्क का मुख्य केन्द्र तक्षशिला था। अस्तु यहाँ पर संस्कृत, पारसीक, यवन (यूनानी) आदि सभी साहित्यों का अध्ययन होता था। तक्षशिला के आस-पास हमें ब्राह्मी, खरोष्ठी तथा अरामैक तीन लिपियों के प्रमाण मिलते हैं।

काशी—यहाँ के शिक्षक भगवान् बुद्ध के समय ही प्रख्यात थे। जातकों में यहाँ के दार्शनिक राजा अजात शत्रु का वर्णन है। उनमें यहाँ के अन्य प्रमुख आचार्यों का भी वर्णन है जो वेद तथा अठारह शिल्पों की शिक्षा देते थे। ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी तक तक्षशिला के अध्यापक काशी तथा मगध के विद्यार्थियों को आकृष्ट करते रहे। उसके बाद काशी की समता का कोई शिक्षा केन्द्र उत्तरी भारत में न था। यहाँ के बौद्ध विहारों में बौद्ध शिक्षा भी दी जाती थी।

यह जैनों, बौद्धों तथा हिन्दुओं सभी का तीर्थ है। अस्तु यहाँ सभी

प्रकार की शिक्षा दी जाती थी। बौद्ध शिक्षा का अंत बख्तियार ने कर दिया पर ब्राह्मण शिक्षा का वह कुछ भी न बिगाड़ सका क्योंकि उसके लिये कोई मठ अथवा मन्दिर न थे। उसके लिये तो प्रत्येक शिक्षक का निवास स्थान ही शिक्षालय था। तेरहवीं शताब्दी के बाद ही यहाँ संगठित शिक्षालय खुले थ।

बौद्ध धर्म के ह्रास तथा ब्राह्मण धर्म के पुनरुत्थान के साथ ही काशी का महत्व बढ़ा था। धर्म की शिक्षा का यह मुख्य केन्द्र बन गया और अब भी है। नयी धार्मिक विचार धाराओं का प्रतिपादन तथा अनुमोदन बिना काशी में हुये वे प्रामाणिक न मानी जाती थीं। इसी हेतु शंकराचार्य तथा स्वामी दयानन्द सरस्वती यहाँ पधारे थे।

यहाँ की पाठन-विधि वैदिक शैली पर रही है, अर्थात् एक अध्यापक दस बारह विद्यार्थी ही पढ़ाता था, और वे उसके साथ अथवा पास ही रहते थे, जिससे अधिकांश समय गुरु के साथ रह सकें। यही छोटे-छोटे समूह उच्चतम ज्ञान की भी चर्चा करते और प्रारंभिक विषय भी पढ़ाते थे। इसी दृष्टि से तथा इनकी अधिक संख्या के कारण बर्नियर ने काशी को एक विश्वविद्यालय की संज्ञा दी थी।

अंग्रेज़ी युग में भी बनारस में एक संस्कृत कालेज स्थापित हुआ था, जिसमें पाठन-विधि उपर्युक्त ही है, केवल विद्यार्थी छात्रावास अथवा अपने घरों पर रहते हैं। इस कालेज के बाहर प्राचीन पद्धति के अध्यापक अब भी वर्तमान हैं।

नालंदा—गुप्तों के युग तक यह साधारण स्थान था। यहाँ एक साधारण स्तूप था। नरसिंह गुप्त बालादित्य ने यहाँ विहार बनवाये तथा उनको दान द्वारा सम्पन्न किया। उसी के बाद छठी शताब्दी से यह बौद्ध शिक्षा का एक प्रधान केन्द्र बन गया जहाँ समस्त एशिया के विद्यार्थी आते रहते थे। देशी तथा विदेशी सभी नरेशों ने इसे

सम्पन्न तथा समृद्ध बनाने में योग दिया। संस्कृति के शत्रु बर्बर मुसलमान बख्तियार ने इसका भी अंत किया।

नरसिंह गुप्त के बाद कुछ गुप्त सम्राटों मौखरियों, यशोवर्मा तथा धर्मपाल ने मुख्यतया नालंदा में इमारतें बनवाईं और ग्राम आदि दान किये जिनकी आय से इस विहार-शिक्षा केन्द्र का व्यय होता था। सुमात्रा के बलि पुत्र देव ने भी एक विहार बनवाया था तथा पाँच गाँव ख़रीद कर दान किये थे। इन कारणों से नालंदा में निःशुल्क शिक्षा का प्रबंध था जहाँ चीन, कोरिया, पूर्वी द्वीप समूह, तिब्बत तथा भारत के विभिन्न भागों से भिक्षु आकर यहाँ अध्ययन करके सुदूर देशों में धर्म फैलाने जाते थे।

ह्वेनसांग के वर्णन से पता चलता है कि नालंदा विहारों के चारों ओर एक परकोटा था जिसमें केवल एक फाटक था। फाटक से घुस कर मुख्य संघाराम के आठ सभा भवन पड़ते थे जिनमें शास्त्रार्थ तथा भाषण होते रहते थे। इनके आस-पास रहने के कमरे, स्नान गृह, पाकशाला आदि आवश्यक इमारतें थीं। इमारतें कई मंज़िल की थीं। इनकी भव्यता इनके विस्तार तथा ऊँचाई से मालूम होती थी। चित्रित मीनारें तथा विचित्र शिखर पहाड़ों की चोटियों के समान थे। वेधशाला का ऊपरी भाग तो प्रातःकाल की धुन्ध में खोया रहता था। ऊपरी मंज़िल के कमरे बादलों के ऊपर थे, उनकी खिड़कियों से बादलों, वायु, चाँदनी तथा सूर्य रश्मियों के खेल दिखते थे। यशोवर्मा के लेख में भी बादलों को चूमने वाले शिखरों का वर्णन है जो विहारों की पंक्ति को सुशोभित करते थे। पृथ्वी तल पर एक बड़ा तालाब था जिस पर रंग-बिरंगे कमल खिले थे, उसके किनारों पर विचित्र फूल पत्तियाँ थीं। संघाराम का भीतरी भाग भी रंगीन स्तंभों तथा चित्रित और नक्काशीदार दीवारों से सुसज्जित था। ह्वेनसांग के शब्दों में ये विहार सजावट तथा ऊँचाई में अतुलनीय थे। यहाँ की

मूर्तियाँ दोषहीन तथा यथार्थ में सुन्दर थीं। (नालंदा ने प्रमुखतया पूर्वी द्वीप समूह की कला पर प्रभाव डाला था।) इस प्रकार नालंदा विश्वविद्यालय में कारीगरी तथा प्राकृतिक सौन्दर्य दोनों का चमत्कार शिक्षण के अनुकूल वातावरण उपस्थित करता था।

नालंदा का प्रबन्ध भिक्षुओं की समिति के हाथों में था जो अनुशासन, भोजन, निवास आदि का निरीक्षण करती थी। निवास का नया वितरण प्रति वर्ष होता था। प्रत्येक विहार में अलग-अलग पाठशालायें थीं। अन्य आवश्यक वस्तुयें यथा वस्त्र, तेल, पात्र आदि भी विहार से ही मिल जाते थे। इस प्रकार विद्यार्थियों तथा अध्यापकों को विद्या के सिवा और किसी बात की चिंता न रहती थी।

नालंदा उच्चतम शिक्षा का केन्द्र था जहां लोग अपने संदेहों का विवरण करने, और शास्त्रार्थ करना, तथा व्याख्यान देना सीखने आते थे। यहां उनके विचार सूक्ष्म तथा परिष्कृत हो जाते थे जिससे नालंदा के नाममात्र से ही लोग आदर की दृष्टि से देखे जाते थे। यहां धर्मगंज (पुस्तकालय) तीन विहारों में बंटा था जिनमें ४०० ग्रन्थ पढ़ने का प्रबंध था।

इस उच्च शिक्षा के केन्द्र में सभी को स्थान न मिल सकता था। केवल ऐसे लोगों को प्रवेश मिलता था जो नालंदा की शिक्षा से लाभ उठाने के योग्य हों। इस लिये द्वार पर ही पंडितों से शास्त्रार्थ करके योग्यता प्रमाणित करना पड़ती थी, इस प्रकार केवल बीस प्रतिशत लोग प्रवेश पाते थे, शेष वापस जाते थे। इस प्रकार के उच्च शिक्षार्थियों की संख्या ह्वेनसांग के समय ८५०० थी जिन्हें १५१० शिक्षक पढ़ाते थे। इनमें दस पंडित पचास पुस्तकों के ज्ञाता थे, इन्हीं में से एक कुलपति था। कुलपति शीलभद्र थे जिन्हें बौद्ध धर्म के संपूर्ण ग्रन्थों का ज्ञान था।

प्रति दिन सौ व्याख्यान होते थे, अर्थात् सौ विभिन्न विषयों पर

प्रति दिन शिक्षा दी जाती थी। विद्यार्थी अपने विषयों के व्याख्यानों में निश्चय जाते थे। एक बात और मालूम पड़ती है कि नालंदा में बौद्धों को सभी विचार धाराओं के अतिरिक्त ब्राह्मण धर्म के दर्शन, तर्कशास्त्र (हेतु विद्या) शब्द विद्या, चिकित्सा विद्या आदि पर भी व्याख्यान होते थे। भिक्षुओं के सिवा यहां गृहस्थों (मानव) तथा ब्रह्मचारियों को भी स्थान मिलता था। इस प्रकार नालंदा किसी विशेष धर्म का आधार होते हुये भी सभी धर्म वालों के लिये उन्मुक्त था। बौद्धिक क्षमता तथा ज्ञान ही प्रवेश के लिये आवश्यक थे। इस प्रकार वह यथार्थ में एक विश्वविद्यालय था। यहां के प्रमुख अध्यापकों को विदेशों में आमंत्रित किया जाता था यथा तिब्बत, मंगोलिया, कोरिया जावा आदि। ह्वेनसांग के समय नालंदा के प्रमुख अध्यापकों में बौद्ध साहित्य के प्रकांड पंडित धर्मपाल तथा चन्द्रपाल, शास्त्रार्थी गुणमति, स्थिरमति तथा प्रभामित्र, व्याख्याता जन मित्र, तथा आदर्श आचरणवाले जीन चन्द्र थे। शीलभद्र कुलपति थे।

इस प्रकार नालंदा एक निवासयुक्त विश्वविद्यालय था जहां विविध विषयों के उच्चतम ज्ञान की चर्चा तथा ज्ञान का विकास ही मुख्य उद्देश्य समझे जाते थे।

सरांश

भारतवर्ष में शिक्षा अनादि काल से चली आई है। सिंध घाटी की सभ्यता में भी शिक्षा के चिन्ह मिलते हैं।

आर्य अथवा हिन्दू शिक्षा के प्रमुख उद्देश्य आत्मज्ञान यज्ञविधियों का ज्ञान. और सामाजिक तथा व्यक्तिगत विकास और उन्नति प्रतीत होते हैं। शिक्षः से प्रेम तथा अटूट संबंध भी इस शिक्षा का एक उद्देश्य था जो उसकी सफलता का सर्वोच्च कारण बना।

पाठ्यक्रम का क्रमिक विकास हुआ। ऋग्वेद के समय में संहिता,

वेदांग तथा नाराशंसी गाथायें ही मुख्य थी, पर उत्तर वैदिक काल में वेदोपनिषदों के सिवा शिल्पों की शिक्षा भी आरंभ हुई। सूत्रकाल में इनके सिवा सूत्रों तथा धर्मशास्त्रों का अध्ययन आरंभ हुआ। ईसा के बाद साहित्य ने भी पाठ्यक्रम में प्रवेश किया। इसी समय बौद्ध शिक्षा तथा दर्शनों का अध्ययन भी आरंभ हुआ। यही पाठ्यक्रम किसी न किसी रूप में निरंतर चल रहा है। विशेष विषयों का अध्ययन भी गुप्त काल से आरंभ हुआ था, जिसके कारण विशेषज्ञता का प्रादुर्भाव हुआ। पठानों के आक्रमण के समय तक शिक्षा में संकोच आ गया था और उस समय से पाठ्यक्रम में तथा विद्यार्थियों की संख्या में उत्तरोत्तर कमी आती रही है।

शिक्षक का भारतीय पद्धति में बड़ा महत्व है। वे असाधारण गुणों वाले थे। प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति अध्यापन का कार्य करने के लिये बाध्य था यद्यपि ब्राह्मणों को ही यह अधिकार रह गया। शिष्यों की सर्वांगीय उन्नति के लिये शिक्षक उत्तरदायी था। आरंभ में वे वैदिक साहित्य तथा शिल्पों को पढ़ाते थे, पर बाद में शिल्पों का पढ़ाना उन्होंने छोड़ दिया।

विद्यार्थी जीवन में ब्रह्मचर्य का पालन करना तथा गुरु के पास रहना आवश्यक था। विद्यार्थी में नैतिक गुण आवश्यक थे। उपनयन तथा समावर्तन गुरुओं से शिक्षा पाने के दो छोर थे। बौद्ध विद्यार्थियों का जीवन कुछ भिन्न था।

शिक्षण विधियों में अनुपाठ, टीका, कहानी, भाषण तथा अभ्यास थे।

अध्ययन विधियों में श्रवण, मनन, तप देशपर्यटन, अभ्यास, तथा शास्त्रार्थ मुख्य थे।

गुरु का घर ही साधारणतया शिक्षालय होता था। बाद में संग-

ठित शिक्षालयों का भी उदय हुआ, जहां कई अध्यापक पढ़ाते थे तथा विद्यार्थी और गुरु वहीं साथ-साथ निवास करते थे।

इस शिक्षा पद्धति में गुरु-शिष्य का संपर्क ज्ञान का प्रसार, तथा निर्धन विद्यार्थियों को भी उच्चतम शिक्षा मिलने का प्रबंध था। जन शिक्षा का यह एक उपयुक्त संगठन था।

कई शिक्षा केंद्र बन गये थे कुछ जंगलों में, कुछ वस्तियों में इन शिक्षाकेंद्र को तीन प्रकारों में बांट सकते हैं जिनके प्रतीक तक्षशिला काशी तथा नालंदा हैं।

प्रश्न

१. ब्रह्मचर्य के महत्व तथा विद्यार्थी जीवन का वर्णन कीजिये।
२. हिन्दू शिक्षा के उद्देश्यों तथा संगठन की टीका कीजिये, और स्पष्ट कीजिये कि वह जन शिक्षा का संगठन था।
३. बौद्ध शिक्षा पद्धति तथा नालंदा का वर्णन कीजिये। क्या नालंदा विहार एक विश्व विद्यालय था?
४. हिन्दू शिक्षा पद्धति के तथा वर्तमान शिक्षकों के गुणों, सामाजिक आदर, तथा शिक्षण विधि के आधार पर तुलना कीजिये। नये राष्ट्र निर्माताओं की दीक्षा के लिये हमें इससे क्या उपदेश मिलता है?

अध्याय २

भारतीय-मुस्लिम शिक्षा

भूमिका—भारत में मुहम्मदगोरी की विजय ने एक ऐसा युग आरंभ किया जिसमें एक विदेशी तथा अनार्य संस्कृति के उपासकों ने यहाँ की शासन पद्धति पर बलात् अधिकार कर लिया। जनता ने इस अधिकार को पूर्ण रूपेण नहीं माना अतः शासकों तथा शासितों की जीवन धारा प्रायः अलग अलग बनी रही। अकबर तथा उसके पहिले अफ़गानों ने दोनों को एक में मिलाने के लिये कुछ उपाय किये तथा सूफी साधुओं ने भी इसमें कुछ हाथ बंटाया परन्तु साधारणतया शासकों ने केवल मुस्लिमों के वैभव का प्रयास किया। देश की अधिकांश हिंदू जनता को मुस्लिम धर्म में लाने के लिये तलवार, प्रचार, उत्कोच तथा उनके जीवन पर प्रतिबंध तथा अधिक कर सभी उपायों का प्रयोग हुआ। इस नीति का शिक्षा पर भी प्रभाव पड़ा। अधिकांश मुसलमान शासकों ने केवल मुसलमानो की शिक्षा का ही प्रबन्ध किया तथा भारतीय संस्कृति तथा शिक्षा प्रणाली को नष्ट करने में ही उन्हें स्वर्ग का द्वार उन्मुक्त दीख पड़ा। इन कट्टर पंथी फीरोज़ों और आलमगीरों ने जहां भारतीय शिक्षा प्रणाली पर प्रहार किये, उसके साथ ही मुसलमानों के लिये अच्छी से अच्छी शिक्षा का प्रबन्ध किया। किंतु कालांतर में हिंदुओं ने भी इनके मदरसों से लाभ उठाकर अपने को राजपदों के योग्य प्रमाणित किया। फ़ीरोज़ सिकंदर अकबर तथा आलम गीर ने जनसाधारण तक शिक्षा पहुँचाने का उद्देश्य भी अपनाया, यद्यपि अकबर को छोड़कर अन्य

के लिये जन साधारण का अर्थ उन्हीं के धर्म के अनुयाइयों से था। हिंदुओं ने इस काल में अपनी सभ्यता तथा संस्कृति को सुरक्षित रक्खा उनका संगठन ऐसा था कि उनकी शिक्षा तथा धर्म को मिटाना असम्भव हो गया। समय समय पर सांस्कृतिक अनाचार का विरोध हुआ, तथा राजनैतिक शांति न होने के कारण शासन ग्रामीण जनता के सामाजिक जीवन तक न पहुँच सका, अस्तु हिंदू सामाजिक संगठन तथा शिक्षा प्रणाली अपने ही क्रम से चलते रहे। मुसलमानों ने केवल सगठित शिक्षाकेन्द्रों को ही नष्ट कर पाया, अधिकांश शिक्षक अपना कार्य करते ही रहे और भारतीय संस्कृति तथा परम्पराओं की स्वतंत्रता तथा अस्तित्व की उन मुसलमानों से रक्षा की, जिन्होंने संसार के एक बड़े भूखंड की सभ्यताओं को मिटाकर वहां की जनता को अपने धर्म तथा संगठन में आत्मसात् करलिया था। इस प्रकार माध्यमिक काल में भारतवर्ष में दो शिक्षा पद्धतियाँ चलती रहीं, जिन्हें हम हिन्दू तथा भारतीय मुस्लिम शिक्षा कह सकते हैं। पहले पर मुसलमानों का नकारात्मक प्रभाव ही पड़ा था यथा उनकी व्यापकता तथा विद्यार्थियों की उत्तरोत्तर कमी। दूसरी विदेशी शिक्षा पद्धति थी जो मुसलमान शासकों के साथ आई थी। इसका स्वरूप विदेशी ही बना रहा, पर पाठ्यक्रम तथा पाठ्य विषयों पर भारतीय पाठ्यक्रम और साहित्य का प्रभाव भी पड़ा। उदाहरण स्वरूप व्यावसायिक शिक्षा में भारतीय व्यवसायों का प्रमुख स्थान हुआ, पाठ्य विषयों में भारतीय मतों का प्रभाव ज्योतिष, तथा दर्शनों पर विशेषतया पड़ा। सूफ़ी मत तथा वेदांत का संबंध स्पष्ट है। उर्दू का जन्म फ़ारसी तथा हिन्दी बोलने वालों के संपर्क से ही हुआ। इस प्रकार कालांतर में संस्कृति के उद्भव का श्रेय इसी शिक्षा पद्धति तथा धर्म परिवर्तित कलाकारों को मिलना चाहिये। पहिली शिक्षा का वर्णन हो चुका है दूसरी शिक्षा का क्रमिक विकास इस अध्याय का विषय है।

मुस्लिम शासक, अमीर और शिक्षा

शिक्षा का महत्व—इस्लाम धर्म में भी हिन्दू धर्म के समान ही शिक्षा को महत्व दिया गया है। क़ुरान में हज़रत मुहम्मद ने लोगों को ज्ञान उपार्जन के लिये प्रोत्साहित किया है "ज्ञान प्राप्त करो" क्योंकि जो मनुष्य ज्ञान प्राप्त करता है, वह ईश्वर की भक्ति करता है, इसी प्रकार जो योग्य विद्यार्थियों को सिखाता है वह भी ईश्वर भक्त है। ज्ञान के द्वारा धार्मिक (कर्त्तव्य) तथा अधार्मिक बातों (अकर्त्तव्य) का अंतर स्पष्ट हो जाता है। ज्ञान रेगिस्तान में मित्र, अकेले में साथी, दुःख में सहानुभूतिप्रदर्शक, सुख का द्वार, मित्रों के बीच आभूषण, तथा शत्रुओं से रक्षक है। ज्ञान स्वर्ग के मार्ग का प्रदर्शक है। संसार में ज्ञान के द्वारा सौजन्य तथा उच्चपद और सम्राटों का सम्पर्क प्राप्त होता है, तथा मरने पर पूर्ण वैभव। हज़रत अली के अनुसार ज्ञान ही सच्चा जीवन तथा धन है। मोहम्मद साहब ने तो वेदों के समान ज्ञान में अमरत्व की क्षमता देखी थी, "जो विद्या का अनुसरण करता है वह मृत्यु को नहीं प्राप्त होता" *। विद्यार्थियों तथा अध्यापकों को इतना पवित्र इस्लाम ने माना है कि लोग बड़े २ मकबरे बनवाकर उनके ऊपरी भाग में शिक्षा का प्रबंध करते थे, जिससे मृतात्मा पवित्र हो जावे। कितने ही लोगों ने अपनी इच्छा प्रकट की थी कि वे मदरसों में गाड़े जावें। शेख मुहम्मद ईसा देहल्वी ने तो विद्यार्थियों के जूते उतारने के स्थान को ही अपने मजार के उपयुक्त माना था।

इसी धार्मिक दृष्टिकोण के कारण शासकों, अमीरों तथा अन्य धनिकों ने, शिक्षा को प्रोत्साहित करने में यथासाध्य सहायता दी। लीटमर महोदय ने पंजाब में उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में शिक्षा के अवशेषों को देखकर लिखा था कि शिक्षा के प्रति समादर भारतवर्ष का सनातन तथा विशेष लक्षण रहा है। शिक्षालय स्थापित करने

---

* Jaffar—"Education in Muslim India.

तथा विद्वानों को दान देने में अत्यन्त सिद्धाँतहीन निरंकुश शासक, धनी महाजन, लुटेरे तथा साधारण धनिक सभी एक दूसरे से स्पर्धा करते आये हैं। प्रायः प्रत्येक धनी मनुष्य अपने तथा अन्य बालकों को पढ़ाने के लिए मौलवी, पंडित अथवा गुरू रखता था। प्रत्येक ग्रामवासी अपनी आय का कुछ भाग अध्यापक को भेंट करता था। *

प्रारंभिक युग—मुहम्मद गोरी ने भारत में साम्राज्य स्थापित करते ही मुसलमानों की शिक्षा के लिए अजमेर में व्यवस्था की थी। बाद में शेख निजामुद्दीन औलिया की दरगाह वहीं बनाने से यह बराबर मुस्लिम शिक्षा का केन्द्र बना रहा। वहां पर गौरी ने मस्जिद के साथ ही शिक्षालय भी बनाया था। यही परम्परा बाद में भी रही। मुहम्मद गोरी ने अपने दासों की शिक्षा का भी ऐसा प्रबन्ध किया था कि वे उसके कुशल सेनापति तथा उपशासक हुये। इन्हीं में से कुतुबुद्दीन दिल्ली का सम्राट हुआ। उसने भी अपने दासों को सैनिक तथा साहित्यिक शिक्षा दिलाई। हिन्दू शिक्षा केंद्रों तथा मन्दिरों को ध्वस्त कराया किन्तु जो मसजिदें बनवाई उनमें शिक्षा भी दी जाती थी। गुलामों में अल्तमश ने सर्व प्रथम मुस्लिम शिक्षा के लिये एक स्वतंत्र मदरसा स्थापित किया जिसका फीरोज तुगलक ने जीर्णोद्धार किया। उसके सभी बेटी, बेटे, तथा गुलाम शिक्षित और शिक्षा प्रेमी थे। नासिरुद्दीन ने दिल्ली में मिनहाज-ए-सिराज की प्रधानता में नसीरिया कालेज तथा एक कालेज जालंधर में स्थापित किया। बलवन ने भी यही क्रम जारी रक्खा। उसके बेटे मुहम्मद ने एक विद्वानों, दार्शनिकों तथा साहित्यकों की गोष्ठी स्थापित की जिसका प्रधान अमीर खुसरो था। शाही विद्वत्सभाओं का आरंभ यहीं से होता है। बुगरा खां ने अन्य कलाकारों को प्रोत्साहित किया और उसके दरबार में संगीतज्ञों, नर्तकों, नाटक खेलने वालों तथा कहानी कहने

* Dr. A. S. Altekar. "Educa.ion in Ancient India."

वालों का अड्डा था। मिनहाज-ए-सिराज ने इतिहास लिखा। याथार्थ में भारतवर्ष में इतिहास तथा दर्बार के रोजनामचे लिखने का प्रथा मुस्लिम शासन प्रणाली की ही देन है।

अलाउद्दीन खिलजी—खिलजियों में जलालुद्दीन ने शाही पुस्तकालय की स्थापना करके अमीर खुसरो को उसका निरीक्षक नियुक्त किया। अलाउद्दीन ने गद्दी पर बैठते ही देखा कि शिक्षा केन्द्रों के कुछ मुल्ला उसके विरुद्ध हैं, तथा उनके पास दान दी हुई भूसम्पत्ति है, जिसके कारण ही वे विरोध करने में समर्थ हैं, अस्तु उन्हें अपने प्रभाव में लाने के लिये उसने पहिले भी शिक्षा सम्बन्धी दान भूमियों पर अधिकार कर लिया। जियाउद्दीन बरनी ने उस समय का वर्णन किया है, तभी उसने लिखा है कि अलाउद्दीक अशिक्षित था तथा विद्वानों से सम्पर्क भी न रखता था। अलाउद्दीन ने प्रथम बार शासन को मुल्लाओं के प्रभाव से मुक्त किया था, अस्तु बरनी का बुराई करना और भी स्पष्ट हो जाता है। यथार्थ में अलाउद्दीन जागीर प्रथा का विरोधी था, शिक्षा का नहीं। उसने शिक्षा पर खजाने से व्यय देना आरम्भ किया, और इस प्रकार राज्य द्वारा संगठित शिक्षा का श्री गणेश किया, जिसमें शासक का अध्यापकों पर प्रभाव स्पष्ट था। वह उसने अपनी ख्याति बढ़ाने तथा विरोधियों को समूल नष्ट कर सम्राट की प्रतिष्ठा तथा मान बढ़ाने के लिये ही किया था। इस प्रकार ही सम्राट मुल्लाओं को अपने प्रभुत्व में रख सकता था कि वे अपने जीवनयापन के लिये उसी पर आश्रित हो। अस्तु फरिश्ता लिखता है कि केवल दिल्ली के मदरसों में तैंतालीस बड़े मौलवी पढ़ाते थे जो इस्लामी धर्म तथा कानूनो के पंडित थे। अब्दुलहक़ हक्की के बयान से मालूम पड़ता है कि इन धार्मिक जागीरों के न रहने पर भी अलाउद्दीन के समय दिल्ली में विद्वानों का जमघट लग गया था और अलाउद्दीन ने शिक्षा तथा धर्म के मंचों

को (शिक्षकों तथा धर्मोपदेशकों को प्रोत्साहन देकर) शक्ति प्रदान की, तथा पूजाघरों और कालेजों के नियमो में स्थिरता ला दी। अलाउद्दीन के कार्य को स्थिरता प्रदान करने के लिये मुबारकशाह ने जागीरें भी वापस कर दीं। *

ग़यासुद्दीन तथा मुहम्मद तुग़लक़ ने विद्वानों का ऐसा आदर किया कि दिल्ली यूरेशिया के मुस्लिम विद्वानों का केंद्र बन गई। मुहम्मद तुग़लक़ के दरबार में सभी विद्वानों को मान, काम तथा धन मिलता था। यद्यपि इन्हीं विदेशियों ने बाद में उसे हानि पहुँचाई।

फीरोज़ तुग़लक़—दिल्ली सल्तनत में फिरोज़ तुग़लक़ शिक्षा के लिये सबसे अधिक प्रसिद्ध है। अभी तक सुल्तानों ने विद्वानों को प्रोत्साहित किया था तथा राज्य के विभागों तथा मसजिदों के लिये ही आवश्यक शिक्षित समाज के निर्माण की व्यवस्था की थी। फ़िरोज़ ने तमाम मुसलमान जनता को शिक्षित बनाने का उपक्रम किया। विशेषतया वह अपने १८००० गुलामों को सुशिक्षित तथा जीवन में सफल बनाना चाहता था। अतः उसने बहुत से शिक्षालय खोले। अब्दुल बाक़ी के अनुसार उसने पचास मदरसे खोले। फरिश्ता तथा जनश्रुति के अनुसार इनकी संख्या तीस थी। बाक़ी ने शायद जीर्णोद्धार वाले मदरसों की संख्या भी सम्मिलित कर ली है। इन उच्च शिक्षा केन्द्रों में धर्म, नियम, साहित्य, इतिहास तथा भूगोल मुख्य विषय थे। मुख्य मदरसे फीरोज़ाबाद तथा जौनपुर में थे। इन नये नगरों को इसी ने बसाया था। व्यावसायिक शिक्षा के लिये उसने सरकारी कारख़ानों का प्रबंध किया जहां दरबार तथा शाही सेना के लिये आवश्यक सामान तैयार होता था।

सैयदों ने बदायूं तथा कटेहर में मदरसे खोले। इसी समय प्रांतीय स्वतंत्र राज्य स्थापित हुये। जहां के शासकों ने भी शिक्षा की उन्नति के

* Jaffar, Education in Muslim India.

लिये दिल्ली के सुलतानों का अनुकरण किया। शर्कियों ने जौनपुर को शीराज़ बना दिया। इब्राहीम शर्की ने पन्द्रहवीं शताब्दी में यहाँ सैकड़ों मदरसे खोले जिनमें जीगीरें लगा दीं। विद्यार्थियों को सफल होने पर तमग़े, इनाम तथा जागीरें मिलती थीं। इसी से भारत के कोने-कोने से तथा विदेशों के विद्वान् तथा विद्यार्थी यहां आते थे। बीदर का महमूद गवां का कालेज भी इसी प्रकार कुछ दिन प्रसिद्ध रहा। मुल्तान, बीजापुर, गोलकुंडा, अहमदनगर, मांड तथा गौड़ भी मुस्लिम शिक्षा तथा सभ्यता के केन्द्र बन गये। बीजपुर का पुस्तकालय तो इतना बड़ा था कि औरङ्गजेब पुस्तकें गाड़ियों में भराकर दिल्ली लाया था। बंगाल के हुसेनी बंश ने प्रांतीय भाषा बगाली को प्रोत्साहन दिया तथा उसने महाभारत का अनुवाद बंगाली में कराया। अन्य ग्रन्थों का अनुवाद भी हुआ।

सिकन्दर लोदी—लोदियों में सिकन्दर सबसे महत्वपूर्ण शिक्षा-योजनाओं का समर्थक हुआ है। वह स्वयं भी कवि था तथा सत्रह साहित्यक उसकी गोष्ठी मे थे। उसने अपने सिपाहियों को सैनिक तथा साहित्यक शिक्षा दिलाने का प्रबन्ध किया; तथा फ़रोज़ के समान अपने राज्य को मदरसों से भर दिया। उसके समय में अनुवाद, लेखन तथा सम्पादन के कार्यों में प्रगति हुई, जिसके फलस्वरूप चिकित्सा पर तिब्ब-ए-सिकन्दरी ग्रन्थ सम्पादित हुआ।

इसने जौनपुर विजित करने में कुछ कालेज ध्वस्त किये किन्तु पुनः उसे तथा अपने नये नगर आगरा को उत्तम शिक्षा-केन्द्र बना दिया। उसने आगरा को इस समय एक विश्वविद्यालय सा बना दिया जहाँ विदेशी भी आते थे।* इसके सिवा सिकन्दर की जन-शिक्षा योजना में एक और विशेषता यह आई कि हिन्दू जनता भी मदरसों में फ़ारसी पढ़ने लगी, जिससे संस्कृतियों के मिश्रण में तथा विचारों

* Jaffar. Education in Muslim India.

के आदान-प्रदान में सुगमता हुई और शासन के निम्न पदों के लिये भी फ़ारसी पढ़े व्यक्ति मिलने लगे।

इस प्रकार सिकन्दर की योजनाओं से सैनिक तथा निम्न पदाधिकारी भी सुशिक्षित होने लगे। उच्च शिक्षा तथा भारतीय और मुस्लिम संस्कृतियों के मिश्रण में भी प्रगति हुई।

सिकन्दर के बाद की राजनैतिक उथल-पुथल ने दिल्ली के विद्वानों को प्रान्तीय शासकों की शरण लेने पर विवश किया इसी से बाबर को वहां तथा 'सिकन्दर के विश्वविद्यालय-नगर आगरा' में भी सभ्य समाज का अभाव प्रतीत हुआ। उसने अपने सार्वजनिक निर्माण विभाग को मदरसे बनाने का भी आदेश दिया था। उसकी शीघ्र मृत्यु के बाद हुमायूँ ने शाही पुस्तकालय की उन्नति की, जिसे वह इतना चाहता था कि युद्ध के समय तथा फारस भागते समय भी साथ ले गया था, अन्त में पुस्तकालय ही में उसकी मृत्यु भी हुई थी। उसने दिल्ली में एक मदरसा स्थापित किया जिसमें ज्योतिष तथा भूगोल पर विशेष ज़ोर दिया गया। उसके फारस चले जाने पर शेरशाह ने शिक्षा को राष्ट्रीय बनाने की ओर प्रयास किया। उसके मंत्री टोडरमल ने हिन्दुओं को भी मदरसों की ओर आकृष्ट किया। उसने स्वयं जौनपुर में शिक्षा पायी थी, अतः नारनौल में एक मदरसा उसी ढंग का स्थापित किया।

अकबर—अकबर ने शिक्षा तथा अपने शासन और साम्राज्य में राष्ट्रीयता लाने का भरसक प्रयत्न किया। एक ओर उसे मुल्ला-मौलवियों की शेखी तथा अभिमान पर अविश्वास तथा क्षोभ हुआ, दूसरी ओर जेसुयट पादरियों ने उसे इस्लामेतर धर्मों की ओर आकृष्ट किया तो उसका साक्षात्कार हिन्दू तथा जैन दर्शनों के विचार स्वातंत्र्य से हुआ। उसने सभी धर्मों के आधार पर एक नया राजनैतिक संप्रदाय चलाने का प्रयास किया, जिसमें वह विफल रहा। फिर भी उसी लक्ष्य को सामने रखते हुए अकबर ने जन-साधारण को शिक्षित बनाने तथा

हिन्दू-मुस्लिम संपर्क बढ़ाने के लिये उन्हें एक ही मदरसों में पढ़ने को प्रोत्साहित किया। इसलिये उसने संस्कृत ग्रन्थों का फ़ारसी में अनुवाद कराया तथा मदरसों के पाठ्य-क्रम में संस्कृत का कुछ अंश भी सम्मिलित करा दिया। अकबर ने पाठन विधि तथा पाठ्य-क्रम के संगठन के लिये जो कुछ किया उसका वर्णन आगे होगा। उसके संगठन का फल यह हुआ कि आगरा के मदरसों के बारे में अबुलफ़ज़ल का ख्याल था कि वैसे मदरसे अन्यत्र नहीं होंगे। उसने यह भी लिखा है कि सभी देशों में नवयुवकों को शिक्षा के लिये शिक्षालय थे, पर भारतवर्ष उनके लिये विशेषतया प्रसिद्ध था। इस प्रसिद्धि के दो कारण थे एक तो इन मदरसों में उच्च कोटि की शिक्षा मिलती थी जिसका प्रतिबिम्ब इबादतख़ाने के शास्त्रार्थों में मिलता है। दूसरी बात यह थी कि अकबर के समय शिक्षालयों का पाठ्यक्रम अत्यंत सुविस्तृत था। उसमें नीतिशास्त्र, गणित, दर्शन, चिकित्सा, कृषि, ज्योतिष आदि सभी विषय थे। इसी बात पर ज़ोर देते हुए भी कज़िन्स ने लिखा है कि "अकबर के राजत्वकाल में मुसलमान शिक्षा का सबसे व्यापक युग था।" * अकबर का शिक्षा सम्बन्धी उद्देश्य—राजनैतिक, धार्मिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक एकता द्वारा शांति तथा राष्ट्रीयता का सृजन भी स्पृहणीय था।

अकबर ने सीकरी, आगरा तथा अन्य स्थानों पर मदरसे स्थापित किये, जहां निवास करने वाले विद्यार्थियों के अतिरिक्त, बाहरी विद्यार्थी भी आते थे। अमीरों ने भी मदरसे बनवाये, जिनमें माहम अनगा का दिल्ली का मदरसा (१५६१) अत्यंत प्रसिद्ध हुआ जहाँ इतिहासकार अब्दुल कादिर बदाउनी ने शिक्षा पाई थी।

फारसी राजकार्य की भाषा—इसी समय टोडरमल ने आज्ञा निकाली कि सरकारी काग़ज तथा हिसाब फारसी में ही रखना होंगे।

---

* Jaffar, Education, in Muslim India.

*इस प्रकार फारसी राजभाषा के यथार्थ पद पर आसीन हुई और राजकर्मचारियों तथा राज पद चाहने वालों का उस पर अनुराग उसी प्रकार बढ़ा, जिस प्रकार १८४४ई० मे लार्ड हार्डिङ्ग के अंग्रेज़ी शिक्षालयों के विद्यार्थियों को ही राजपदों पर रखने की घोषणा से अंग्रेज़ी शिक्षा के प्रति बढ़ा था।

इन सभी कारणों से अकबर की शिक्षा नीति को बल मिला तथा फारसी की शिक्षा का विस्तार बढ़ा। अकबर ने लेखनकला, संगीत तथा अन्य कलाओं को भी ऊँचा उठाया।

जहाँगीर ने अपने पिता की नीति को निबाहा उसने तीस मदरसों का जीर्णोद्धार कराके शिक्षक नियत किये उसने फ़ैजी के नेतृत्व में समृद्ध पुस्तकालय को और बढ़ाया। उसने मदरसों तथा शिक्षा के बढ़ते हुये व्यय को पूरा करने के लिये जागीरें देना ठीक न समझा किन्तु अमीरों तथा अन्य दायाद रहित लोगों के मरने पर सरकार द्वारा ज़ब्त की जाने वाली संपत्ति का एक भाग सुरक्षित कर दिया।

शाहजहां के समय में अकबर का शिक्षा संगठन कुछ ढीला पड़ने लगा था यद्यपि उसने भी शिक्षा तथा अन्य कलाओं पर व्यय किया। उसने दिल्ली में जामामस्जिद के पास एक मदरसा भी स्थापित किया। दारा ने संस्कृत ग्रन्थों का अनुवाद फ़ारसी में कराया। किन्तु औरंगजेब तथा बर्नियर के कथनों से शिक्षा की गिरती दशा का वर्णन मिलता है। बर्नियर लिखता है "उन राज्यों में (शाहजहां के समय) विस्तृत तथा गहन अज्ञान का राज्य है। मदरसों की स्थापना कैसे हो? संस्थापक कहां हैं? अगर कुछ हों भी तो विद्यार्थी कहाँ हैं? बच्चों को शिक्षालयों में रखने की आर्थिक क्षमता वाले अभिभावक कहाँ हैं? यदि हों भी, तो इतना धनी कौन प्रतीत हो सकता है? यदि वे भी हों, शिक्षा में विद्यार्थियों को प्रोत्साहन देने वाले पद, सम्मान

*Keay. Education in Ancient India & later times.

तथा जागीरें कहां हैं, जिन्हें प्राप्त करने के लिये ज्ञान की अपेक्षा हो ?" इस वर्णन की अतिशयोक्ति को निकालने पर भी मालूम होता है कि मदरसों में विद्यार्थियों की संख्या गिर रही थी क्योंकि दरबार द्वारा विद्वानों का अधिकतम आदर न होता था। यह विद्रोहों और अशांति का युग था अस्तु कुशल सेनानायकों पर ही पद तथा जागीरों की वर्षा होती थी। दूसरे शाहजहाँ की सृजनात्मक भावनाओं पर शिक्षा से अधिक प्रभाव निर्माण तथा चित्र कलाओं ने कर रखा था।

औरंगजेब ने भी राजा होने पर शाहजहाँ द्वारा नियुक्त अपने गुरु की कटु आलोचना की और उसकी दी हुई शिक्षा को अपूर्ण तथा कुछ सीमा तक व्यर्थ बताया। औरंगजेब ने अपनी सफलता का कारण और लोगों से शिक्षा लेना बताया था। औरंगजेब ने अरबी माध्यम, शब्दजालयुक्त दर्शन तथा व्यक्ति के आगामी जीवन से असम्बन्धित शिक्षा की अनुपयुक्तता पर लक्ष्य किया। उसके अनुसार उस समय की शिक्षा में राजकुमारों की शिक्षा के आवश्यक गुणों का अभाव था। औरंगजेब ठीक ही समझता था कि राजकुमार को संसार के अन्य देशों की भूगोल, वहां की शक्ति तथा सम्पन्नता को लक्ष्य करके, और इतिहास, वहाँ की उन्नति, अवनति, विप्लवों तथा महान् परिवर्तनों के कारणों को स्पष्ट करते हुये पढ़ाने चाहिये। उसे पड़ोसी देशों की भाषा, सैनिक कुशलता—क़िले बन्दी, क़िले घेरना, तोड़ना तथा विभिन्न शस्त्रास्त्रों का प्रयोग,—समृद्धि तथा विपत्ति में समभाव लाने वाले दर्शन, शासकों और शासितों के पारस्परिक सम्बन्ध तथा शासन की शिक्षा अनिवार्य रूप से मिलना चाहिये।

औरंगजेब—इस प्रकार हम देखते हैं कि शाहजहाँ के समय में शिक्षा के प्रसार तथा शिक्षा के गुणों दोनों ही का ह्रास, हुआ था। औरंगजेब को सूफ़ी विचार धारा तथा दारा का अकबर की भांति हिन्दू शास्त्रों से प्रेम भी असह्य था। अस्तु उसने शासक होते ही शिक्षा

को सुधारने तथा फैलाने पर कमर कस ली। एक बार देश भर में फिर मदरसों का जाल बिछ गया जिनमें विद्यार्थियों तथा शिक्षकों को राजकीय वृत्तियाँ मिलने लगीं। साथ ही राजकीय पदों तथा मानों से भी उनका स्वागत होने लगा। परन्तु औरंगज़ेब की शिक्षा केवल मुसलमानों के लिये थी। उसने हिन्दू शिक्षा केन्द्रों तथा मंदिरों को नष्ट करने के लिये सूबेदारों के पास १६६९ई० में फर्मान भेजे। डच जेसुयटों का लखनऊ भवन छीनकर मदरसा बनाया गया। प्रत्येक मस्जिद का जीर्णोद्धार हुआ तथा इमाम नियुक्त हुये जो प्रारम्भिक शिक्षा भी देते थे मुसलमानों की शिक्षा का आलमगीर को ऐसा चाव था कि १६७८ई० में अपढ़ बोहरों को पढ़ाने की विशेष व्यवस्था के लिये अध्यापक नियत किये, मासिक परीक्षाओं के फल अपने पास मँगवाये तथा उनके लिये शिक्षा अनिवार्य कर दी।

उत्तर मुग़ल काल—औरंगजेब के समय तथा मरने पर अमीरों ने भी शिक्षालय स्थापित किये, इनमें ग़ाज़ीउद्दीन का दिल्ली का मदरसा तथा राजा जैसिंह का जन्तर मन्तर—ज्योतिष तथा नक्षत्र विद्या की उन्नति के लिये वेधशाला–प्रमुख हैं। स्यालकोट इस समय शिक्षा का प्रमुख केन्द्र बन गया था क्योंकि वहाँ काग़ज़ आसानी से मिलता था।

नादिरशाह, गुलाम क़ादिर, अहमदशाह अब्दाली की लूट और बाद में अंग्रेज़ तथा मराठों के बढ़ते हुए वैभव ने दिल्ली और उत्तरी भारत के मुस्लिम शिक्षाकेन्द्रों का अंत कर दिया क्योंकि उनकी आर्थिक सहायता बन्द हो गई। शाही पुस्तकालय तथा कलावस्तुएँ भी लुट गयीं। इसके बाद अवध में लखनऊ, गोपामऊ तथा खैराबाद और दक्षिण में गुलबर्गा मुस्लिम शिक्षा के प्रधान केन्द्र बन गये जहाँ अमीरों की सहायता उपलब्ध थी। अंग्रेज़ी शासन काल में हेस्टिंगज ने कलकत्ते में मदरसा बनवाया। सर सय्यद अहमद ने

अलीगढ़ को अखिल भारतीय ही नहीं एशिया का भी एक प्रमुख शिक्षा केन्द्र बना दिया। इसी प्रकार अन्य केन्द्र पेशावर, इटावा, आजमगढ़ तथा हैदराबाद (दक्षिण) हुये। राजनैतिक स्वतंत्रता के युद्ध में अलीगढ़ ने राष्ट्रीय नेताओं के विरुद्ध रहने की ठानी। अस्तु राष्ट्रीय मुसलमानों ने दिल्ली में जामिया मिल्लिया की नींव डाली जो राष्ट्रीय मुसलमानों का केंद्र बन गया। अलीगढ़ लीगी मनोवृत्ति के मुसलमानों का केंद्र हो गया और पाकिस्तान की स्थापना के लिये यहाँ से सांप्रदायिक विष का मनमाना वमन हुआ। विभाजन के बाद से इसका यह स्वरूप धीरे धीरे बदल रहा है और वहाँ राष्ट्रीय तथा प्रगतिशील मुसलमानों का प्रभाव बढ़ रहा है।

अभी तक उच्च शिक्षा केन्द्रों का ही अधिक वर्णन हुआ है। इनके सिवा सभी शासकों, अमीरों तथा धनिकों ने मकतबों की भी स्थापना की थी। ये अधिकतर मसजिदों से संबंधित होते हैं और इनमें कुरान की प्रारंभिक शिक्षा दी जाती है। इमाम ही अधिकतर शिक्षक होता है। व्यापकता तथा निरंतरता मकतबों में अधिक है। ये अब भी वर्त्तमान हैं और शिक्षा विभाग इनके निरीक्षण का विशेष प्रबंध एक इंस्पेक्टर के द्वारा करता है। अब संपूर्ण प्रारम्भिक शिक्षा तथा कुरान इनका पाठ्यक्रम है।

संगठन

उद्देश्य—मुस्लिम शिक्षा का प्रथम उद्देश्य प्रार्थनायें करना सिखाना है। मकतबों का मुख्य उद्देश्य यही रहा है।

शिक्षा का दूसरा उद्देश्य लोगों को अज्ञान से निकाल कर ज्ञान के आलोक में लाना और उनकी आत्मिक उन्नति का मार्ग प्रशस्त करना है। ये दोनों धार्मिक उद्देश्य हैं।

शिक्षा का तीसरा उद्देश्य व्यक्ति को इस्लामी क़ानूनों तथा

प्रथाओं के अनुसार चलाकर नैतिक बनाना है। उसे उचित तथा अनुचित का विवेक करा देना तथा नैतिक आचरणों पर चलाना गुरु का कर्तव्य है।

इस्लामी शिक्षा का चौथा तथा सांसारिक उद्देश्य जज, काज़ी धर्मोपदेशक तथा सरकारी पदों के योग्य व्यक्ति तैयार करना था। अधिकांश लोग इन्हीं पदों के योग्य बनने ही के लिये शिक्षालयों में जाते थे, और बर्नियर के अनुसार इनकी कमी होने के कारण ही शाहजहां के समय शिक्षाप्रसार संकुचित हो गया था। मुस्लिम शिक्षा की यह कमज़ोरी थी कि उससे अनुराग बनाये रखने के लिये वृत्तियाँ तथा भावी उन्नति आवश्यक थीं।

अकबर का शिक्षा संबंधी उद्देश्य राजनीतिक सामाजिक तथा सांस्कृतिक एकता द्वारा एकराष्ट्र का निर्माण था। दूसरी ओर औरंगज़ेब शिक्षा द्वारा मुसलमानों के हृदयों को आलोकित करना चाहता था। विद्यार्थियों को भावी जीवन के योग्य शिक्षा देने पर फीरोज़, अकबर तथा औरंगज़ेब सभी ने ज़ोर दिया।

मक़तब तथा मदरसे—मकतब तथा मदरसा के कार्यों में जो भिन्नता है वह उनके मौलिक अर्थ से भी मालूम होती है। मकतब का अर्थ लिखने का स्थान अथवा लिखने की शिक्षा का स्थान है, अस्तु वह प्रारंभिक शिक्षा के लिये था। मदरसा का अर्थ दर्स अथवा भाषण का स्थान है, अस्तु इसका संबंध उच्च शिक्षा से था। मकतब प्रायः मसजिदों से लगे रहते थे और प्रायः प्रत्येक मुस्लिम बच्चे को मकतब में शिक्षा मिलती थी, लड़कियाँ इन मकतबों में न जाती थीं। कुछ लोग अपने घर पर भी पढ़ाते थे, तथा कुछ लोग अध्यापकों को अपने यहाँ वेतन पर रख भी लेते थे। मकतबों तथा प्रारंभिक अध्यापकों के ज्ञान के अनुसार ही प्रारंभिक पाठ्यक्रम घटता बढ़ता रहता था। एडम महोदय को बंगाल में ऐसे मकतब के अध्यापकों का पता चला था जो कुरान की सीमित प्रार्थनाओं के अतिरिक्त कुछ भी लिखपढ़ न सकते थे।

वे कुरान को समझने अथवा समझाने की योग्यता का ढोंग भी न करते थे। अन्य मकतबों में लिखना, पढ़ना, भाषा, व्याकरण, कुरान, हदीस, कविता, नीतिशास्त्र, गणित आदि पाठ्यक्रम में थे। मुस्लिम काल में इसी प्रकार के अधिक मकतब रहे होंगे, जहां से निकलकर विद्यार्थी मदरसों की शिक्षा से लाभ उठा सकते थे।

मकतब प्रवेश—"जब बच्चा चार वर्ष चार महीने चार दिन का होता था तो मकतब-प्रवेश अथवा बिस्मिल्लाह की रस्म मनाई जाती थी। नियत समय पर संबंधियों तथा मित्रों के समक्ष बच्चे को अच्छे वस्त्र पहिना कर बिठाया जाता है फिर उसके सामने लिपि, कुरान की भूमिका तथा उसका पचपनवां और सत्तासीवां अध्याय रखा जाता है और बच्चे को उन्हें क्रम से पढ़ना सिखाया जाता है। सब न दोह-राने पर बिस्मिल्लाह कह देने पर भी काम चल जाता है। बस उसकी शिक्षा आरंभ हो जाती है।" शाहजादों की बिस्मिल्लाह रस्म का वर्णन मिलता है।

पाठयक्रम—"सर्व प्रथम बच्चे को लिपि का ज्ञान आंख तथा कान के मार्गों से कराया जाता है। इस प्रकार लिपि-ज्ञान होने पर कुरान का तीसवां भाग पढ़ाया जाता है, जिसमें दैनिक प्रार्थनायें तथा फ़ातिहा हैं। ठीक उच्चारण पर बड़ा ध्यान दिया जाता है। इसी उद्देश्य से सादी का पन्दनामा भी पढ़ाया जाता है। बच्चे को इन्हें समझने की आवश्यकता नहीं। इसके बाद लिखने की शिक्षा दी जाती है। इसके बाद फ़ारसी का व्याकरण रटाया जाता है। इसके बाद सादी का गुलिस्तां तथा बोस्तां समझाकर पढ़ाये जाते हैं जिनसे नैतिक शिक्षा भी मिलती है। साथ ही लिखने की कला में प्रतिदिन चार पांच घंटे लगाये जाते हैं। फिर यूसुफ जुलेखा, लैला मजनू, सिकंदरनामा आदि काव्य पढ़ाये जाते हैं। अबजद अथवा अक्षरों की संख्या से गणना (और शकुन विचार) भी सिखाया जाता है।

अंकगणित, बातचीत का ढंग, पत्रकला, अर्जीनवीसी आदि के बाद फ़ारसी (प्रारंभिक) शिक्षा समाप्त हो जाती है।*

मदरसों का माध्यम साधारणतया अरबी था। उनमें उच्च शिक्षा दी जाती थी और पाठ्यक्रम भी सुविस्तृत था। व्याकरण, तर्कशास्त्र, धर्म, कानून, दर्शन, गणित, ज्योतिष, भूगोल, इतिहास, साहित्य, चिकित्सा, कृषि आदि विषयों पर मदरसों में भाषण होते थे। दर्शनों की महिमा अत्यधिक थी। अकबर के समय में पाठ्यक्रम और विस्तृत हो गया था और अकबर का मत था कि प्रत्येक विद्यार्थी को नीतिशास्त्र, गणित, ज्योतिष, कृषि, भूमिति, शरीर-विज्ञान घरेलू, मामले, शासन पद्धति, चिकित्सा, तर्क, तबोई इलाही और रियाज़ी विज्ञानों पर क्रमशः पुस्तकें पढ़ना चाहिये। [तिब्बी विज्ञानों के अंतर्गत भौतिक विज्ञान, रियाज़ी में गणित, ज्योतिष, संगीत तथा शिल्प ज्ञान और इलाही के अंतर्गत धर्म और ईश्वर के ज्ञान संबंधी मार्ग का वर्णन था।]× संस्कृत के विद्यार्थियों को व्याकरण, न्याय, वेदांत तथा पतञ्जलि (योग) का अध्ययन करना चाहिये। इस प्रकार अकबर ने पाठ्ययक्रम को अधिक उपयोगी, तथा सभी लोगों के योग्य बनाने का प्रयास किया। औरंगजेब ने पाठ्य विषयों का ज्ञान वास्तविक तथा लाभप्रद बनाने की चेष्टा की। इसी हेतु उसने यथार्थ भूगोल और इतिहास के अध्ययन की मांग की, तथा अध्यापकों की कूपमंडूकता, जिसमें उन्हें भारतवर्ष में ही राजवैभव सर्वोच्च दिखता था, की भर्त्सना की। उसने मुल्ला सालेह से कहा कि तुमने मुझे बताया था कि फिरंगिस्तान (यूरोप) एक तुच्छ द्वीप के समान है जहां का सर्व शक्तिमान् राजा पहिले पुर्तगाल नृपति, फिर हालैंड नृपति और अब इंगलैंड का अधीश्वर है। फ्रांस और एण्डलूशिया के राजों के बारे में तुमने कहा था कि

---

*Adam. Quoted by K. S. Vakil Education in India.

×Keay Education in Ancient India Later times.

वे हमारे छोटे मोटे राजाओं के समान हैं....तुमने कहा था कि फारस उजबेग, काशगर, तातार, पेगू, श्याम चीन सभी भारत के नरेशों के नाम से कांपते हैं। प्रशंसनीय भौगोलिक ! गहन इतिहास मर्मज्ञ !" इस प्रकार औरंगजेब ने भारतीयों का ध्यान उचित रीति से इतिहास और भूगोल की शिक्षा द्वारा देश को अंतर्राष्ट्रीय प्रतिद्वंद्विता में अजेय रखने के लिये आकृष्ट किया था, जिस पर चलने से भारत की दुर्दशा बच सकती थी।

औरंगज़ेब ने अरबी के स्थान पर मातृभाषा के माध्यम पर ज़ोर दिया क्यों कि "अरबी में दस बारह वर्ष के अध्यन से भी पारंगत होना असंभव है" और "मातृभाषा द्वारा भी प्रार्थनायें की जा सकती हैं तथा ज्ञान आसानी से बताया जा सकता है।" इस्लामी सभ्यता की उर्दू से संबंध बताने वालों को आलमगीर के कथन पर विचार करना चाहिये। औरंगजेब ने इस प्रकार पाठ्यक्रम को अधिक सुगम तथा उपयोगी बनाने पर ज़ोर दिया था।

मदरसों तथा मकतबों का प्रबन्ध सरकार के हाथों में न था। शासक तो अन्य लोगों की भांति रुपया जुटाने तथा पद सम्मान आदि द्वारा शिक्षा को प्रोत्साहित किया करते थे। कभी कभी उनके संबंधी और समीपी होने पर राजे महराजे सभी अध्यापकों तथा विद्यार्थियों को वृत्तियां देते थे, तथा सफल विद्यार्थियों को तमगों, जागीरों तथा पदों से सम्मानित करते थे जैसा इब्राहीम शर्की और औरंगज़ेब ने प्रबन्ध किया था इनका प्रबंध समितियों तथा स्थानीय सम्मानित पुरुषोंके हाथ में था। यही लोग मदरसेके व्यय, का तथा मदरसों की जागीरोंका प्रबन्ध करते थे।

शिक्षक तथा विद्यार्थी—मकतबों के विद्यार्थी अपने घरों में रहते थे तथा मकतब अथवा शिक्षक के पास शिक्षण के लिये ही जाते थे। अकबर के समय कुछ विद्यार्थी मदरसों में भी बाहर रह कर पढ़ते थे परन्तु मदरसों में अधिकांश विद्यार्थी वहीं निवास भी करते थे दोनों ही में धार्मिक पूजा का प्रबन्ध रहता था। गुरु का स्वामी के समान आदर

तथा सेवा करना शिष्य का कर्तव्य था। गुरु की कृपा तथा सहवास से ही ज्ञान, सदाचार तथा धर्म की शिक्षा संभव थी। राजकुलों में इसी हेतु गुरु अधिकांशया ज़नख़े होते थे जो हरमों में रहकर राजकुमारों को शिक्षित कर सकते थे। कुशल गुरुओं के साथ अलग महलों में रहने का वर्णन भी मिलता है। फ़ीरोज़ ने फतहख़ाँ के लिये अलग महल में वैयाकरणों, शिक्षकों और सैनिक गुरुओं की व्यवस्था की थी। * उच्च शिक्षा ही के साथ व्यावसायिक तथा शिल्पों की शिक्षा का प्रबन्ध भी था। औरंगज़ेब ने शिक्षा को भावी जीवन के अनुरूप बनाने पर ज़ोर दिया था। बहुज्ञता के साथ ही विशेषज्ञता इन मदरसों का भी आधार स्तम्भ था।

फ़ीरोज़ के समय के एक मदरसे का वर्णन इस प्रकार है। उच्च मीनारयुक्त विस्तृत इमारत एक उद्यान के बीच में स्थित थी, इसे प्राकृतिक सौन्दर्य तथा मानवकलाओं ने आकर्षणीय बना दिया था। एक बड़े तालाब में मदरसे की परछाईं झिलमिलाती थी जो उसके किनारे बना हुआ था। कितना आकर्षक वह दृश्य होगा जब सैकड़ों विद्यार्थी इस विद्यालय में भाषणों को सुनते अथवा इधर उधर व्यस्त घूमते होंगे।

यहाँ जलालुद्दीन रूमी एक समय कुरान, धर्म, तथा फ़िक़ (कानून) की शिक्षा देते थे। विद्यार्थी तथा अध्यापक दोनों ही मदरसे में रहते थे। मसजिद में प्रार्थनायें होती थीं। सूफ़ी ध्यानावस्थित होकर तथा हाफ़िज़ कुरान को पढ़ते हुये सम्राट की भलाई की प्रार्थना करते थे। मस्जिद में ग़रीबों को दान मिलता था।

विदेशियों के लिये अलग स्थान सुरक्षित था। सफल विद्यार्थियों को पुरस्कार मिलते थे। सभी निवासियों को निश्चित दैनिक व्यय मिलता था। × महमूद गवां के बीदर के कालेज का भी ऐसा ही वर्णन मिलता है। साथ ही वहां बड़ा पुस्तकालय भी था।

---

* Jaffar Education in Muslim India.

× N. N. Law Quoted K. S. Vakil. "Education in India

शिक्षण विधि—मकतबों की शिक्षणविधि का वर्णन ऊपर हो चुका है। मदरसों में भी साधारणतया वही मौखिक ढंग ही अपनाया जाता था। साथ ही साथ विद्यार्थियों को पढ़ने और समझने की ओर भी आकृष्ट किया जाता था। व्यावहारिक विषयों में प्रायोगिक शिक्षा भी दी जाती थी, यथा सैनिक शिक्षा में, अथवा राजकुमारों को न्याय करने की शिक्षा में। व्यावसायिक शिक्षा कारखानों में होती थी अस्तु यह भी प्रायोगिक ही थी। मुस्लिम शिक्षालयों में तक्षशिला की तरह कुशल विद्यार्थियों से सहायता भी ली जाती थी। निम्न कोटि के विद्यार्थियों को वे ही पढ़ाते थे। यूरोपियनों ने यह मानीटर प्रथा भारत से ही अनुकरण की है। मुस्लिम शिक्षा पद्धति की हिन्दू शिक्षा पद्धति के समान सबसे प्रमुख बात यह थी कि प्रत्येक विद्यार्थी पर व्यक्तिगत ध्यान दिया जाता था, तथा कक्षापद्धति का प्रयोग न होता था, अस्तु प्रत्येक विद्यार्थी अपनी रुचि तथा गति के अनुसार प्रगति करता था।

मुस्लिम शिक्षा पद्धति में बहुत सा समय अरबी, फारसी की व्याकरण, लिखना तथा पढ़ना सीखने में लगता था। विद्यार्थियों की प्रगति बड़ी धीमी थी और उन्हें सभी उपयोगी विषयों के अध्ययन का समय न मिलता था। अस्तु अकबर ने केवल पढ़ना सिखाने में व्यर्थ होने वाले समय को रोकने की चेष्टा की। हिन्दू शिक्षालयों में लिखना तथा पढ़ना साथ-साथ सिखाया जाता था। अकबर ने इसी को अपनाना चाहा। रटाई के मामलों में भी उसने समझने और लिखने को भी शामिल करके उसे सुविधाजनक, तथा द्रुत करने की योजना निकली।

अबुलफ़ज़ल लिखता है, "प्रत्येक देश में और विशेषतया भारतवर्ष में बालक मकतबों में कई वर्ष तक स्वरों तथा व्यंजनों को सीखते रहते हैं। विद्यार्थियों के जीवन का एक बड़ा भाग पुस्तकों के पढ़ने (बिना समझे) में व्यर्थ होता है। अस्तु सम्राट की आज्ञा है कि प्रत्येक

विद्यार्थी पहिले वर्णमाला सीखे। इसमें दो दिन लगना चाहिये फिर एक सप्ताह संयुक्ताक्षरों का अभ्यास करे। इसके बाद लड़के को कुछ गद्य पद्य, प्रार्थनायें तथा नीतिवचन रट लेनां चाहिये, जिन्हें वह अलग-अलग लिखता भी रहे। इस बात का ध्यान रहे कि वह प्रत्येक को स्वयं समझने का प्रयास करे, किन्तु अध्यापक भी यत्र तत्र सहायता कर दे। लेखन-कला में उसे प्रतिदिन कुछ लिखने से कुशलता आजावेगी। अध्यापक को लिखने, शब्दों का अर्थ, कविता, मिसरा तथा पिछले पाठ पर ध्यान रखना चाहिये। इस प्रकार विद्यार्थी एक महीने अथवा एक दिन में इतना पढ़ जावेगा कि लोग स्तब्ध हो जावेगें" इस प्रकार ही अकबर मदरसों के विस्तृत पाठ्यक्रम को पूरा करने की आशा करता था, क्योंकि विद्यार्थियों में स्वतंत्र अध्ययन का स्वभाव पड़ जाता। अकबर के बाद इस प्रथा का उपयोग अधिक दिन तक हुआ नहीं जान पड़ता क्योंकि औरंगजेब ने भी अरबी पर समय बर्बाद होने की शिकायत की है।

मुस्लिम शिक्षालयों में बड़े कठिन दंडों की व्यवस्था थी। थप्पड़, बेंत कोड़ा सभी का प्रयोग होता था। मुर्गा बनाना, खूंटी पर टांगना, अपशब्द कहना तथा अन्य किसी भी प्रकार दंड देना अध्यापक की इच्छा पर निर्भर था। यह अवांछनीय था।

परीक्षाओं के बाद तमगे तथा सनदें मिलती थीं। और अमीर तथा राजे उन्हें मान, धन तथा पदों से पुरस्कृत करते थे। इन्हीं मदरसों के निकले उलेमा में से काजी, जज, मंत्री, तथा अन्य कर्मचारी नियुक्त होते थे। यह मुस्लिम शिक्षा पद्धति अब भी अवशिष्ट है और इसमें धर्म प्रचारक ही तैयार होते हैं साथ ही अलीगढ़ तथा उस्मानिया विश्व विद्यालयों ने भी इनके पाठ्यक्रम को स्थान दिया है।

मुस्लिम शिक्षा का प्रमुख दोष यह था कि विद्यार्थी तथा अध्यापक वृत्तियों के मिलने तक ही मदरसों को सुशोभित करते थे, अस्तु

इनका आर्थिक स्रोत बंद होते ही वे अन्य मदरसों में चले जाते थे और पुराने मदरसे को पशु-पक्षियों के लिये छोड़ देते थे! दूसरे बर्नियर के अनुसार वे इस शिक्षा को अधिकतर सरकारी पदों तथा सांसारिक उन्नति का ही साधन मानते थे, अस्तु इनके न रहने पर भी शिक्षा में कमी आजाती थी। तीसरे अरबी माध्यम ने इस शिक्षा को दुरूह बना दिया था। हिन्दू शिक्षा के समान मुस्लिम शिक्षा ने भी प्रांतीय भाषाओं को न अपनाकर उनकी उन्नति में देर की। स्त्रियों की शिक्षा का भी कोई समुचित प्रबंध न था।

शिक्षाकेंद्र—मुस्लिम प्रारंभिक शिक्षा तो प्रत्येक मस्जिद अथवा मुस्लिम आबादी के पास पाई जाती थी, किन्तु उच्च शिक्षा नगरों में ही केंद्रित रही, इसका मुख्य कारण यह था कि भारतीय मुस्लिम सभ्यता तथा शासन सत्ता नगरों ही में अधिकांशतया रही। इस प्रकार प्रत्येक नगर में एक न एक मदरसा किसी न किसी समय अवश्य स्थापित हुआ। यदि वहां राजा, सूबेदार अथवा अन्य मुस्लिम पदाधिकारियों का अड्डा रहा। साधुओं के मरण स्थानों तथा दरगाहों पर भी मदरसे स्थापित हुये थे। कुछ नगरों में एक से अधिक मदरसे थे। इनमें प्रमुखतम नगर जौनपुर, दिल्ली, आगरा, लाहौर, स्यालकोट प्रयाग अजमेर, पटना, हैदराबाद, बीदर, अहमदाबाद, लखनऊ, आदि हैं।

जौनपुर इन सब में अधिक प्रसिद्ध हुआ। उसे शीराज-ए-हिन्द कहा गया क्योंकि यहां इब्राहीम शर्की (१४०२-४०) तथा सिकंदर लोदी के समय में सैकड़ों मदरसे बने। शेरशाह ने यहीं शिक्षा पाकर अपने को एक कुशल तथा प्रतिभाशाली विजेता तथा शासक सिद्ध किया, इससे यहां की शिक्षा की उपयुक्तता सिद्ध होती है। यहां उसने इतिहास, दर्शन, शासनपद्धति, सैनिक शिक्षा तथा साहित्य का अध्ययन किया था। शाहजहां के समय तक यह प्रमुख केंद्र रहा पर अठारहवीं शताब्दी तक कुछ मदरसे बने रहे।

कुछ केंद्र कुछ विशेष विषयों के लिये प्रसिद्ध हुये। लाहौर और स्यालकोट गणित तथा ज्योतिष के केंद्र थे, रामपुर तर्क तथा चिकित्सा के लिये प्रसिद्ध हुआ, तथा दिल्ली में इस्लामी प्रचलनों तथा प्रथाओं पर पाण्डित्य की कमी न थी। * लखनऊ शिया शिक्षा का केंद्र बन गया। बींदर में गवां के कालेज को अधिक दिन ख्याति न मिली क्योंकि औरंगजेब के आक्रमण के समय वह नष्ट हो गया। हैदराबाद आगे चल कर उर्दू शिक्षा का केंद्र बन गया।

सारांश

भारतीय मुस्लिम शिक्षा का कारण इस देश की मुस्लिम विजय है। हिन्दू शिक्षापद्धति संकुचित हुई पर बनी रही। नई शिक्षा ने आगे चलकर संस्कृतियों के मिलन का मार्ग खोल दिया।

इस्लाम में भी शिक्षा का बड़ा महत्व है। अस्तु शहाबुद्दीन ग़ोरी से लेकर सभी मुस्लिम शासकों, अमीरों तथा धनिकों ने शिक्षा को संगठित तथा प्रोत्साहित किया। इनमें फ़ीरोज़ तुग़लक़, सिकंदर लोदी अकबर, औरंगजेब, जैसिंह प्रभृति मुख्य हैं। फिरोज़ तथा आलमगीर ने समस्त मुस्लिम जनता को शिक्षित बनाने का प्रयास किया और सिकंदर तथा अकबर ने हिन्दुओं तथा मुसलमानों के संपर्क को शिक्षा द्वारा बढ़ाया। अकबर ने पाठ्यक्रम तथा शिक्षणविधि में भी सुधार करना चाहा।

मुस्लिम शिक्षा के मुख्य उद्देश्य धार्मिक, नैतिक तथा सांसारिक उन्नति हैं।

मकतब तथा मदरसे क्रमशः प्रारंभिक तथा उच्च शिक्षा के केन्द्र थे। मकतब अधिकतर मसजिदों से लगे होते थे और उनमें धर्म, लिपि, फारसी, गणित तथा अबजद का मुख्य स्थान था।

---

* Keay Indian Education in Ancient and Later Times.

मदरसे माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा के केन्द्र थे। उनके पाठ्यक्रम में भौतिक विज्ञान, इतिहास-भूगोल, चिकित्सा, दर्शन, कृषि, धर्म, तर्क, नीति शास्त्र, ज्योतिष, गणित, साहित्य शिल्प आदि थे। अकबर ने संस्कृत व्याकरण, न्याय, वेदांत, योग तथा घरेलू मामले भी जोड़ दिये।

शिक्षकों तथा विद्यार्थी का बड़ा घनिष्ठ संबंध था। शिष्य दासवत् सेवा करता था। उसे कठिन दंड मिलते थे। शिक्षालयों का वातावरण आकर्षक था। शिक्षणविधि मौखिक थी। अरबी माध्यम तथा दर्शनों के मारे बड़ा समय लगता था। स्त्री शिक्षा की कमी थी। मदरसों का संगठन अधिकतर स्थायी न था।

प्रमुखतम शिक्षा केंद्र जौनपुर था जो शीराज़-ए-हिन्द कहलाता था।

प्रश्न

१. भारतीय मुस्लिम शिक्षा पद्धति के गुणों तथा दोषों को स्पष्ट करते हुये आधुनिक पद्धति से तुलना कीजिये।

२. "अकबर एक कुशल शिक्षा विशारद था" टीका कीजिये।

३. मक़तब तथा मदरसों का आलोचनात्मक विवरण लिखिये।

अध्याय ३

विदेशी और शिक्षा, सन् १८१३ ई० तक

विदेशियों के इस देश में सरकार बनाने के समय देशी शिक्षा पद्धतियां सफलतापूर्वक स्थापित थीं। इनमें प्रमुखतम पांच पद्धतियाँ थीं। संस्कृत भाषा के आचार्य अपने घर पर शिक्षा देते थे। दूसरे संस्कृत के संगठित शिक्षालय थे। जिन्हें बंगाल में टोल कहते थे। इनमें कुछ विश्वविद्यालय होने का दावा भी करते थे। दक्षिण में ये मंदिरों अथवा अग्रहार * गाँवों में स्थापित थे। इनके सिवा फ़ारसी तथा अरबी पढ़ाने वाले मदरसे थे जहाँ हिन्दू तथा मुसलमान दोनों ही शिक्षा पाते थे। मकतबों में प्रारम्भिक अरबी तथा फारसी की शिक्षा दी जाती थी। ये अधिकांशतया मस्जिदों में थे। इसी हेतु इनमें केवल मुसलमान शिष्य ही थे। इन सबका वर्णन पिछले दो अध्यायों में हो चुका है। इनके सिवा ग्रामीण शिक्षा का एक भिन्न संगठन उत्पन्न हो गया था जो प्रान्तीय भाषा, फारसी तथा उपयोगी शिक्षा तक ही सीमित था। इसका वर्णन विदेशियों के शिक्षा प्रयास के पहिले आवश्यक है, क्योंकि उनके प्रारम्भिक प्रयासों का आधार यही ग्रामीण शिक्षा थी।

प्रारम्भिक शिक्षा मद्रास—कम्पनी सरकारों ने इस शिक्षा के बारे में विस्तृत ज्ञान १८२०-३७ ई० तक प्राप्त किया जब १८१३ ई० में स्वीकृत शिक्षा व्यय का प्रश्न सामने आया। श्री मुनरो ने मद्रास में

---

* ऐसे गांव या भूसम्पत्ति जो विद्वान ब्राह्मणों तथा शिष्योंके व्यय के लिये दान कर दी गई थी, जिसके द्वारा शिक्षा का व्यय होता था।

यह पड़ताल सन् १८२२ ई० में करायी थी। उन्होंने अपनी जांच के आधार पर स्थिर किया कि ग्रामीण अथवा प्रारम्भिक शिक्षालयों में १८८००० विद्यार्थी थे, जनसंख्या सवा करोड़ थी अस्तु ६७ में एक व्यक्ति स्कूल में था। चूंकि अधिकांश लड़के ही पढ़ते थे, अस्तु २५% पुरुष शिक्षित हुये। "किन्तु मैं शिक्षित पुरुषों की संख्या एक चौथाई के स्थान पर एक तिहाई मानने के पक्ष में हूँ क्योंकि घर पर पढ़ने वालों की संख्या प्रान्त से प्राप्त नहीं हुई। मद्रास में घर पर शिक्षा पाने वालों की संख्या २६६०३ अथवा शिक्षालयों में पढ़ने वालों की अपेक्षा पचगुने से भी अधिक है। इस संख्या में कुछ ग़लती है, और यद्यपि घर पर पढ़ने वालों की संख्या इतनी नहीं है, परन्तु फिर भी बहुत है क्योंकि घर पर सम्बन्धियों तथा व्यक्तिगत अध्यापकों द्वारा बच्चों की शिक्षा इस प्रान्त में असाधारण नहीं है" * कनारा ज़िले के कलक्टर ने लिखा था कि "ज़िले में शिक्षा इतनी अधिक घरेलू रूप से होती है कि शिक्षालयों और उनके विद्यार्थियों का लेखा बेकार ही नहीं वरन् जनसंख्या में शिक्षा पाने वालों का अनुपात निकालने से भ्रामक होगा।

बिलारी ज़िले के कलक्टर ने लिखा था कि ज़िले के प्रायः एक करोड़ जनता के लिये ५३३ शिक्षालय थे। जहाँ ६६४१ विद्यार्थी थे इनमें साठ हिन्दू बालिकायें भी थीं इनमें ४५ उच्च शिक्षा के केन्द्र थे एक अंग्रेजी के लिये, २१ फारसी के लिए तथा २३ संस्कृत के लिये। शेष प्रान्तीय भाषाओं के लिए थे। उसने शिक्षा के संगठन का भी वर्णन किया है कि ये शिक्षालय बड़े सस्ते थे। प्रारम्भिक शिक्षालयों में ५ से १० वर्ष की आयु तक के विद्यार्थियों को शिक्षा मिलती थी।

---

* Selections from the Records of the Government of Madras quoted by Nurullah and Naik in History of Education in India,

विद्यारम्भ के समय बालक सम्बन्धियों के साथ आता था और गणेश की स्तुति करता तथा चावल में लिखता था, बस शिक्षा आरम्भ हो जाती थी।

देर से आनेवाले विद्यार्थियों को दण्ड मिलता था, तथा प्रथम विद्यार्थी के हाथ पर सरस्वती लिख कर सम्मान किया जाता था। बालक एकत्र होकर सरस्वती वंदना करते थे। इसके बाद विद्यार्थी शिक्षा के अनुसार समूहों में बट जाते थे। छोटे लड़के बड़े तथा स्वल्प शिक्षित विद्यार्थियों द्वारा पढ़ाये जाते थे, अध्यापक विशेषतया इन्हीं शिक्षित विद्यार्थियों की शिक्षा पर अधिक ध्यान देता था, किन्तु सभी विद्यार्थियों पर ध्यान रखता था। इस प्रथा का डा० बेल ने स्काटलैंड में मानीटर प्रथा के नाम से अनुकरण किया था और अब शिक्षालय संगठन में भी इस प्रथा का महत्व है। इस प्रथा से एक बड़ा लाभ यह है कि एक अध्यापक कई बालकों की शिक्षा का भार अपने ऊपर ले सकता है दूसरे मानीटरों की शिक्षा निश्चित हो जाती थी, क्योंकि उसकी अत्यंत कठिन परीक्षा पढ़ाने में हो जाती थी।

लिपि-ज्ञान के लिये बच्चे पहिले मिट्टी में हाथ से, फिर पत्तों पर क़लम से लिखते थे। मांटेसरी प्रथा वाले भी बालू में अक्षर लिखवाना मांसपेशियों में स्वभाव डालने के लिए अत्यन्त आवश्यक मानते हैं। इसके बाद बालक व्यंजनों तथा स्वरों को मिलाकर लिखना सीखता था। साथ ही गिनती, पहाड़े, पौवे, सवैये आदि भी याद करता था, जो दिन में दो बार दोहराये भी जाते थे, जहाँ एक बालक अपने साथियों को मौखिक ढंग से दोहरवाता था, तथा सभी बालक भूमि पर उंगली से लिखते भी जाते थे। इसके बाद गणित आरम्भ होती थी जो मौखिक तथा लिखित दोनों ही ढंग से सिखाई जाती थी। पत्र-कला, विभिन्न ढंगों की लिखाई, पढ़ना, कचहरी के काग़ज़ लिखना, कहानियाँ तथा कवितायें भी पाठ्यक्रम में थीं।

कलक्टर कैम्पबेल ने इस प्रथा की अल्पव्ययता तथा मानीटर प्रथा की सराहना की थी, किन्तु पुस्तकों की कमी तथा अध्यापकों की दीक्षा की आवश्यकता की ओर ध्यान आकर्षित किया था।

बम्बई—बम्बई प्रांत में गवर्नर एलफिन्स्टन ने १८२९ ई० में यही पड़ताल कराई थी। उसके अनुसार उस प्रांत में ४७ लाख जनता के लिये १७०५ स्कूल थे जिनमें ३५ हज़ार विद्यार्थी थे। पर इस संख्या में घरेलू शिक्षा के आंकड़े नहीं हैं। वस्तुस्थिति का ज्ञान श्री प्रेन्डरगास्ट के वक्तव्य से होता है। जिसमें उन्होंने १८२१ ई० में बम्बई कार्यकारणी समिति के सामने कहा था—"मुझे कहने की आवश्यकता नहीं, जो प्रत्येक सदस्य मेरे ही समान भली भांति जानता है कि हमारे प्रदेश में कदाचित् ही कोई छोटा अथवा बड़ा गांव हो जहां पाठशाला नहीं है, बड़े गांवों में अधिक, कस्बों तथा नगरों में कई एक हैं, जहां देशी बच्चों को लिपि तथा गणित की शिक्षा इतनी सस्ती—एक दो मुट्ठी अनाज से लेकर एक रुपया प्रति मास पर,—किन्तु साथ ही इतनी स्पष्ट तथा प्रभावकारी मिलती है कि ऐसा कोई किसान और छोटा व्यापारी नहीं है जो हमारे देश के निम्नकोटि के लोगों से अधिक कुशलता से हिसाब न रखता हो। बड़े व्यापारी तथा साहूकार किसी भी अंग्रेजी व्यापारी के समान स्पष्टता तथा सुविधा से हिसाब रखते हैं।" सन् १८३० ई० में एलफिन्स्टन ने भी कहा था कि जहाँ तक लिखने पढ़ने का संबंध है यथेष्ट रूप से विस्तृत (सार्वदेशिक) तो नहीं है किन्तु जनता के लिये सराहनीय है। * मैल्कम को अशांत मालवा में भी प्रत्येक सौ देहरी वाले गांवों में पाठशाला मिला थी।

बम्बई शिक्षा समाज (Bombay Education Society) और सरकारी स्कूलों ने जो प्रथा अपनाई थी वह बम्बई प्रांत में पहिले ही से चालू थी। डाक्टर टेलर ने बम्बई की शिक्षा प्रणाली का वर्णन

*Vakil Education in India.

किया था। × स्कूल में प्रविष्ट होने पर विद्यार्थी पट्टी पर मिट्टी अथवा गुलाल में लकड़ी से अक्षर बनाना सीखते थे। पहले गुरु के बनाये अक्षरों पर लकड़ी फेरना तथा उनका नाम लेना होता था। फिर पुस्तक पर लिखा जाता था। इसी प्रकार संख्यायें भी सिखाई जाती थीं। स्कूल में बालक कक्षावार न बांटकर दो-दो के समूहों में बट जाते थे, जिनमें एक आने से कम ज्ञान वाले को सहायता देता था। पाठ्य-क्रम मद्रास के समान था।

बङ्गाल—बङ्गाल प्रान्त में इसी प्रकार की पड़ताल १८३५-३८ ई० तक श्री एडम ने की। उन्होंने तीन रिपोर्टें दीं। उनके मत में बङ्गाल-बिहार में चार करोड़ की आबादी में प्रायः प्रत्येक गांव में एक पाठ-शाला थी अर्थात् उनकी संख्या एक लाख थी। यह संख्या ग़लत नहीं है, जैसा श्री हार्टग ने माना है, क्योंकि एडम को इसमें कोई ग़लती मालूम पड़ने पर वह अवश्य लिखते। किन्तु इसमें घरेलू स्कूल भी शामिल हैं। वार्ड ने भी लिखा था कि बङ्गाल के प्रत्येक गांव में लिपि तथा गणित पढ़ाने की पाठशालायें हैं।

इन प्रारम्भिक शिक्षालयों के अध्यापकों की आमदनी बहुत कम थी। बहुत से अध्यापक धनिकों के वेतनिक नौकर थे। फारसी, बङ्गाली तथा हिन्दी भाषाओं के आधार पर इन शिक्षालयों को तीन भागों में बांट सकते हैं। पाठ्यक्रम तथा अध्यापन विधि तीनों में अलग-अलग थी। फारसी स्कूल मकतबों की विधि पर चलते थे। बङ्गाली तथा हिन्दी के स्कूल मद्रास तथा बम्बई की ग्रामीण शिक्षा के अनुरूप थे। महाजनी स्कूलों में बनियों के हिसाब किताब की विशेष शिक्षा दी जाती थी।

आगरा—१८४३ ई० में यहां गवर्नर ने गवर्नरजनरल को लिखा था "प्रान्त के प्रत्येक क़स्बे में अपने स्कूल हैं, प्रत्येक परगने में दो या

× Altekar. Education in Ancient India.

अधिक स्कूल हैं, और बहुतेरे गांवों में भी शिक्षक पाया जाता है।" *

यहाँ भी अन्य प्रान्तों के समान फारसी तथा प्रान्तीय भाषा की प्रारम्भिक पाठशालायें थीं। फारसी की पाठशालायें या तो घरेलू थीं, अथवा मकतबों के रूप में। प्रान्तीय भाषाओं में उर्दू को स्कूल के योग्य न माना जाता था, अस्तु उसकी शिक्षा का कोई प्रबन्ध न था। शेष पाठशालाओं को लिपि तथा भाषा के अनुसार तीन भागों में बांट सकते हैं, हिन्दी, कैथी तथा महाजनी अथवा मुड़िया की पाठशालायें, अध्यापक सभी जातियों के होते थे किन्तु ब्राह्मण, वैश्य तथा कायस्थ मुख्य थे। गांव से अनाज तथा त्योहारों पर भेंट ही इन अध्यापकों का वेतन था। लिपिज्ञान में पढ़ना तथा लिखना साथ-साथ सिखाया जाता था। साधारणतया एक ही लिपि नागरी, कैथी अथवा मुड़िया सिखाई जाती थी। हिन्दी स्कूलों में साधारण शिक्षा होती थी, जिसका केंद्र भाषा तथा गणित था। भाषा का उद्देश्य धार्मिक ग्रन्थों का सुगम अनुशीलन, पत्र लेखन आदि था। गणित में मौखिक गणित द्वारा हिसाब कर सकना ही उद्देश्य था। कैथी स्कूल पटवारी तैयार करते थे, और महाजनी स्कूल दूकानों के लेखक। कैथी स्कूलों में पैमाइस तथा पटवारी के कागजों पर जोर था तो महाजनी में गणित और बहीखाते पर। फारसी स्कूल कचहरी के नौकर तैयार करते थे।

बालक लिपि सीखकर बारह खड़ी सीखते थे, फिर गिनती पहाड़े और पौवे सवैये आदि। मौखिक गणित में गुरों का प्रमुख स्थान था, यथा 'जितने रुपये मन, उतने ही आने की ढाई सेर' इत्यादि। गणित में प्रत्येक प्रकार के वजनों का अभ्यास कराया जाता था। घसीट पढ़ने की आदत भी डाल दी जाती थी। इस प्रकार यह शिक्षा उपयोगी शिक्षा थी।

देशी शिक्षा के ह्रास के कारण—ये देशी शिक्षालय धीरे-धीरे

Viakl Education in India.

नष्ट हो गये। इसके कई कारण थे। फारसी स्कूलों की उपयोगिता १८३७ ई० में समाप्त हो गई। जब प्रान्तीय भाषायें तथा अंग्रेजी ने राजभाषा पद से उसे गिरा दिया।

प्रान्तीय भाषाओं के शिक्षालयों को अंतिम धक्का हमारे प्रान्त में सरकारी प्रारम्भिक पाठशालाओं से लगा, जिनके सामने सरकार ने इन्हें सुधारने का प्रयास ही नहीं किया। अन्य प्रान्तों ने उन्हे सुधार कर सरकारी शिक्षा पद्धति में स्थान दिया था।

उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में इस शिक्षा का प्रसार पचीस से पैंतीस प्रतिशत तक मालूम पड़ता है। इतना संकोच क्यों हो गया था इसके कारणों का विवरण हमें सरकारी अफसरों से मिलता है।

बिलारी के कलक्टर श्री कैम्पबेल ने १८२३ई० में लिखा था कि भारतीय जनता में सस्ती प्रारंभिक शिक्षा दिलाने की सामर्थ्य भी नहीं थी, इसका मुख्य कारण निर्धनता थी। व्यावसायिक क्रान्ति के बाद इंगलैण्ड ने बना हुआ माल भारत में लाकर यहां के कपड़े के व्यवसायों को नष्ट कर दिया। बहुतेरे देशी राज्य समाप्त होने से सरकारी पदाधिकारियों तथा दरबारों के नष्ट होने पर विदेशी अधिकारी यहां से वेतन के रूप में सम्पत्ति बराबर बाहर ले जाने लगे, जिससे ग़रीबी और बढ़ी। सरकारी करों की कड़ाई से वसूली का भी वही फल हुआ। अस्तु लोग बच्चों की शिक्षा पर खर्च न कर सकते थे, वरन् उनके श्रम का शीघ्र ही उपयोग करते थे। "अस्तु उन बहुतेरे गावों में जहां पहिले स्कूल थे, अब नहीं हैं और जहां बड़े-बड़े स्कूल थे, वहां अब केवल धनिकों के थोड़े बच्चे शिक्षा पाते हैं, दूसरे ग़रीबी के कारण नहीं आ सकते हैं।"

"किसी भी देश में सरकारी प्रोत्साहन बिना शिक्षा फली फूली नहीं है, और इस भाग में विज्ञान को मिलने वाला प्रोत्साहन बहुत पहिले समाप्त हो चुका है" "मुझे स्वीकार करते लज्जा आती है कि

इस ज़िले के ५३३ शिक्षालयों में एक को भी सरकारी सहायता नहीं मिलती। विज्ञान पहिले मिलने वाली सरकारी सहायता से रहित होकर दानशील व्यक्तियों से यदा कदा प्राप्त दानों पर अपने मुट्ठी भर चनों के लिये आश्रित है,, एलफिन्स्टन के मत में देशी रियासतों के पदों की समाप्ति भी एक कारण था।

अध्यापकों का अज्ञान भी एक कारण हो सकता है कि उन्हें शिष्य न मिलने लगे। राजनीतिक अशांति भी एक प्रमुख कारण थी। अन्यथा अधिकांश भागों के प्रारंभिक शिक्षालय राजकीय सहायता पर निर्भर न होने के कारण चलते ही रहते। उत्तरी भारत में ग्राम-संगठनों के टूटने पर शिक्षा का प्रबंध भी ढीला होता गया।

किंतु उन्नीसवीं शताब्दी में भी इस शिक्षा का रूप ऐसा था कि उसमें सुधार करके उसे जनशिक्षा के उपयुक्त बनाया जा सकता था। श्री एडम का निष्कर्ष था कि सभी प्रकार तथा वर्गों के छोटे बड़े देशी शिक्षालय लोगों के आचरण सुधारने और ऊंचा करने के योग्यतम साधन हैं। इन्हें इस प्रकार प्रयोग करना सबसे सरल, सुरक्षित, लोकप्रिय, सस्ता और शिक्षा के लिये लोगों के विचारों को जागृत करने तथा उन्हें अपने सुधार में संलग्न करने का सफल उपाय होगा, जिसके बिना और सभी साधन असफल रहेंगे। * जिन प्रांतों में इस बात पर ध्यान न दिया गया वहां शिक्षा की प्रगति बड़ी धीमी रही, जैसे इस प्रांत में, जहां इसी विचारधारा पर काम हुआ वहां सफलता हुई, जैसे बम्बई में।

अब हम विदेशियों द्वारा शिक्षा क्षेत्र में किये उपायों का वर्णन करेंगे। उन्नीसवीं शताब्दी के पहिले यूरोप में सरकार शिक्षा का दायित्व न मानती थी, अस्तु ईस्ट इंडिया कम्पनी ने भी शिक्षा में कोई हाथ न बटाया था। केवल पादरियों तथा निस्स्वार्थ सेवियों को

---

* Vakil. Education in India.

आर्थिक सहायता दी थी अथवा शासन की सुविधा के लिए कुछ शिक्षालय स्थापित किये थे। इस प्रकार १८१३ ई० के पहिले कम्पनी सरकार ने शिक्षा के लिये बहुत ही कम प्रयास अथवा व्यय किया था।

पुर्तगाली—विदेशियों द्वारा शिक्षा का आरंभ पुर्तगाली मिशनरियों से होता है। वे यहां सोलहवीं शताब्दी के प्रारंभ में ही बसने लगे थे। पुर्तगाली व्यापार तथा राज्य स्थापना के साथ ही वहाँ की सरकार कैथलिक धर्म की अनुयायी होने के नाते कैथलिक धर्म प्रचार पर भी विश्वास करती थी। शिक्षा द्वारा धर्मप्रचार तथा धर्म परिवर्तित लोगों की धार्मिक शिक्षा दोनों ही के लिये ऐसे शिक्षालयों की नींव पड़ी जिनका प्रबंध पादरियों के हाथ में था।

पुर्तगाली स्कूलों में धर्म, स्थानीय भाषा, पुर्तगाली भाषा, गणित और अनाथ बालकों के लिये व्यावसायिक शिक्षा का प्रबन्ध था। इनमें से कुछ चर्चों में थे और कुछ स्वतंत्र थे। उच्चतर शिक्षा के लिये कालेज थे जहां लैटिन, तर्क, धर्म, पुर्तगाली भाषा तथा संगीत की शिक्षा मिलती थी तथा पादरियों की शिक्षा भी दी जाती थी। इस प्रकार पुर्तगाली शिक्षा धार्मिक थी।

जेसुएट पादरी जेवियर ने १५४२ ई० में भारत आते ही प्रत्येक गांव में कैथलिक धर्म-प्रचार के लिये एक-एक स्कूल खोलने की व्यवस्था की। इनके अध्यापक सभी ईसाई और अधिकांश पुर्तगाली होते थे। १५७५ ई० बम्बई के निकट बन्[illegible] में उन्होंने एक विश्वविद्यालय स्थापित किया। १५७७ ई० में उन्होंने कोचीन के निकट प्रेस स्थापित किया। १५८० ई० में गोआ में और फिर अन्यत्र कालेज खुले। सत्रहवीं शताब्दी में उनका राजनीतिक पतन हुआ अस्तु उनके शिक्षा संगठन का भी केवल ऐतिहासिक महत्व रह गया, जिससे अंग्रेजों ने सीखा कि सरकार द्वारा धार्मिक शिक्षा भी धार्मिक असंतोष तथा विद्रोह का कारण बन सकती है, तथा शिक्षा के द्वारा ही धर्म-प्रचार शीघ्रता से संभव है।

फ्रांसीसी—फ्रांसीसियों ने भी अपने उपनिवेशों में प्रारंभिक शिक्षा तथा स्कूलों में फ्रेंच भाषा को स्थान न दिया। स्थानीय भाषा ही माध्यम थी और स्थानीय अध्यापक भी रखे गये। इनमें ग़ैर ईसाई बालकों को भी स्थान मिलता था। एक मिशनरी प्रत्येक स्कूल में धर्म की शिक्षा देता था। इस प्रकार इन स्कूलों में धर्म का स्थान प्रधान न था क्योंकि स्थानीय अध्यापक भी सभी ईसाई न थे।

पांडचेरी के उच्चतर शिक्षाकेंद्र में इन स्कूलों के प्रखरतर बुद्धि वाले विद्यार्थी तथा फ्रांसीसी बालक शिक्षा पाते थे। इनमें फ्रेंच भी पढ़ाई जाती थी, तथा अन्य विषयों में भी शिक्षा मिलती थी। मिशनरी धर्म की शिक्षा देता था। इनके शिक्षालय इनके उपनिवेशों तक ही सीमित रहे और अधिक प्रभावशाली कभी भी न हो सके।

ईस्ट इंडिया कम्पनी १८१३ ई० तक—अंग्रेज़ी कम्पनी ने आते ही पुर्तगालियों के विरुद्ध प्रोटेस्टेंट धर्म की शिक्षा का प्रबन्ध किया। अस्तु उसने भी अपने पादरियों को इस ओर अग्रसर किया। श्री नरेंद्रनाथ ला के मत में अंग्रेज पुर्तगालियों के प्रभाव को दूर करने ही के प्रमुख उद्देश्य से धार्मिक प्रचार की ओर झुके थे।

अंग्रेजों की पहिली कोठी १६१२ ई० में सूरत में बनी और १६१४ ई० में उन्होंने एक भारतीय को प्रचारक की शिक्षा के लिये इंगलैंड भेजा था। लाड ने आक्सफोर्ड में (भारत के लिये प्रचारक तैयार करने के उद्देश्य से) अरबी विभाग खोला। १६५९ ई० से कम्पनी के प्रत्येक जहाज में मिशनरी तथा पादरी अंग्रेज़ों की धार्मिक आवश्यकता तथा यहां ईसाई-धर्म-प्रचार के लिये आने लगे। मद्रास में १६७० ई० में पुर्तगाली, अंग्रेज तथा यूरेशियन बच्चों के लिये प्रथम स्कूल खुला। १६८७ ई० में कम्पनी के डाइरेक्टरों ने मद्रास में म्युनिसिपैलिटी बना कर शिक्षा कर द्वारा अंग्रेज़ी शिक्षा स्थापित करने का आदेश दिया। १६९८ ई० के आज्ञापत्र में पार्लियामेंट ने उन्हें

प्रत्येक कोठी में एक पादरी और अध्यापक रखने का आदेश दिया। इसी आज्ञा पत्र से ईस्ट इंडिया कम्पनी के शिक्षा प्रयास का ढुलमिल इतिहास आरंभ होता है।

१६९८ ई० के आज्ञा-पत्र ने कम्पनी को अपने नौकरों-देशवासी तथा भारतीय तथा उनके बच्चों की शिक्षा का भार सौंपा। यह काम मुख्यतया पादरियों पर पड़ा, क्योंकि शिक्षा का सहायक उद्देश्य ईसाई धर्म प्रसार था। इस कारण निःशुल्क दातव्य शिक्षालयों की स्थापना हुई। १७१५ ई० में मद्रास में सेंटमेरी दातव्य शिक्षालय (Charity School) खुला। इसका उद्देश्य अंग्रेज़ सिपाहियों के ऐंग्लो-इंडियन बच्चों तथा अन्य ग़रीब बालकों को लिखना-पढ़ना, हिसाब रखना और उनकी योग्यतानुसार अन्य विषय पढ़ाना था। लड़कियों को लिपि तथा गृहकार्य सिखाये जाते थे। ऐसे ही शिक्षालय १७१८ ई० में बम्बई तथा १७३१ में कलकत्ते मे खुले। बाद में ऐसे स्कूल बनारस, कानपुर, तंजौर तथा अन्य स्थानों पर भी खोले गये और उनमें भारतीय ईसाइयों को प्राथमिकता मिलने लगी। १९ वां शताब्दी में इनमें कुछ यूरोपियन बालकों की शिक्षा के लिये सुरक्षित हो गये यथा कलकत्ते का स्कूल, और कुछ सभी भारतीयों के लिये खुल गये. यथा कानपुर और बनारस के स्कूल।

इस कालमें अंग्रेजी कम्पनी ने आगे चलकर दो और कालेज केवल अंग्रेज़ी नौकरों के लिये खोले। एक कलकत्ते का फोर्ट विलियम कालेज (१८००) तथा दूसरा मद्रास का फोर्ट सैंट जार्ज कालेज (१८१८) इनका कार्य अंग्रेज़ अफसरों को भारतीय भाषायें पढ़ाना था। बम्बई प्रेसीडेन्सी ने इस हेतु कोई कालेज तो न खोला किन्तु कुछ मुंशी नौकर रख लिये जो प्रत्येक अफ़सर को प्रांतीय भाषायें कुछ समय के भीतर पढ़ा देते थे। इस शिक्षा पर बहुत व्यय होता था। मेजर बसु ने १८२७ ई० के आंकड़े दिये हैं कि उस वर्ष इन दोनों कालेजों पर

सवा दो लाख से अधिक व्यय हुआ था जिसमें विद्यार्थियों (भावी अफ़सरों) का वेतन शामिल न था।

ईस्ट इंडिया कंपनी ने इस काल में कुछ कालेज भी स्थापित किये थे जो भारतीयों की उच्चतर शिक्षा के लिये थे। यथा कलकत्ता मदरसा (१७८१) और बनारस संस्कृत कालेज (१७६१) इनका उद्देश्य जजों के लिये हिन्दू तथा मुस्लिम कानूनों के सलाहकार प्रस्तुत करना था, क्योंकि १७८० ई० में पार्लियामेंट ने भारतीय न्यायालयों में अंग्रेज़ी क़ानून के स्थान पर भारतीय कानून लागू करने का नियम बना दिया था। उस समय भारतीय क़ानूनों के एकमात्र ज्ञाता पंडित तथा मौलवी ही थे। इसी प्रकार अन्य पदों पर भी इन्हीं के प्रमाणपत्र प्राप्त व्यक्तियों को रखने का उद्देश्य भी वारेन हेस्टिंग्ज़ का था।* जनता को कम्पनी के शासन के प्रति राजभक्त बनाने का भी उद्देश्य था क्योंकि इन कालेजों द्वारा कम्पनी भारतीय विद्वानों, तथा भारतीय साहित्य, सभ्यता तथा दर्शनों की संरक्षक बन गई। इस काल में सरकार द्वारा सीधा शिक्षा प्रबंध यहीं तक सीमित था।

इन सीधे प्रयासों के सिवा कम्पनी ने मिशनरियों को भारतीयों की शिक्षा में सहायता दी। ये मिशनरी ही भारतीयों की शिक्षा में अग्रणी हुये। डेन लोगों ने अपने उपनिवेश त्रणकुवार में दो जर्मन मिशनरियों—जीगेनबल्ग तथा प्लूशो—को १७०६ म भेजा। इन्होंने आते ही तामिल तथा पुर्तगाली भाषा सीखी। प्रथम ने शुल्ज की सहायता से आधुनिक तामिल बाइबिल अनूदित की। उसने १७१२-१३ में तामिल तथा रोमन लिपि का प्रेस स्थापित किया। १७१६ ई० में उन्होंने अध्यापकों की दीक्षा के लिये एक शिक्षालय खोला। अध्यापकों को शिक्षित कर चुकने पर उन्होंने मद्रास के पास पुर्तगाली

*Howell. Educatian in British India.

तथा तामिल बच्चों को अंग्रेज़ी तथा बाइबिल पढ़ाने के लिये निःशुल्क स्कूल खोले। इन लोगों ने १७२५ ई० तक सत्रह स्कूल मद्रास प्रांत में खोले, किन्तु अभिभावकों और अध्यापकों ने बाइबिल न पढ़ाने दिया, अस्तु इन लोगों ने इन पर ध्यान न दिया, और वे बन्द हो गये।

१७२७ में शुल्ज़ को अंग्रेज मिशनरियों ने रख लिया तो शुल्ज़ और श्वार्ज़ ने तामिल शिक्षालयों के स्थान पर अंग्रेज़ी स्कूल तंजौर, रामनद, मद्रास, त्रिचनापल्ली आदि में खुलवाये। कम्पनी ने १७८७ ई० में इन शिक्षालयों को सहायता देना भी आरंभ कर दिया। इनके पाठ्यक्रम में अंग्रेज़ी तामिल, हिन्दो गणित तथा ईसाई धर्म की शिक्षा थी। इसी वर्ष मद्रास में दो निःशुल्क स्कूल अनाथ बालक बालिकाओं के लिये खुले विशेपतया सिपाहियों के अर्ध अंग्रेज़ बच्चों के लिये।

बम्बई प्रांत छोटा था अस्तु वहां इस काल में और कोई शिक्षालय न खुले। निःशुल्क स्कूल को १८०७ ई० में कम्पनी ने सहायता देना आरंभ कर दिया, उसमें भारतीय विद्यार्थी भी जाने लगे और उन्हें धर्म के घंटों में न बैठने की छूट थी क्योंकि कम्पनी धार्मिक हस्तक्षेप से दूर रहना चाहती थी।

बंगाल में सरकारी प्रयासों के सिवा निःशुल्क शिक्षालय खुल ही चुके थे। इस प्रांत में कम्पनो धर्मप्रसार से दूर ही रहना चाहती थी अस्तु उसने मिशनरियों को भी सहायता न दी। सेरामपुर के मिशनरियों ने प्रारंभिक शिक्षालय खोले जो बहुत ही सफल हुये और शीघ्र ही इनकी संख्या कई सौ हो गई, पर यहां के पादरियों—कैरी, वार्ड तथा मार्शमैन-ने १८०८ में एक पुस्तिका द्वारा हिन्दू तथा इस्लाम धर्म पर आक्षेप किये, अस्तु कंपनी ने इन्हें तनिक भी सहायता न दी। सेराम-पुर में एक एंग्लो-इंडियन अनाथों के लिये निःशुल्क शिक्षालय भी था। १८८७ ई० में कलकत्ते में एक निःशुल्क शिक्षा समिति

(Free School Society) बनी जिसने वहां के निःशुल्क स्कूल को संभाल लिया।

१८१३ का आज्ञापत्र तथा शिक्षासंबंधी अनुदान

१८१३ ई० में कम्पनी का आज्ञापत्र बदलने के समय तक कई बातें बदल चुकी थीं। बंगाल के पादरियों ने प्रचार किया कि कम्पनी की नीति ईसाई मत के विरुद्ध है और उसे शिक्षा पर व्यय करना चाहिये (अर्थात् उनकी सहायता करना चाहिये) भारतीयों की शिक्षा पर व्यय न करने को उन्होंने अन्यायपूर्ण बताया।

१७९३ ई० में भी विल्बरफोर्स तथा अन्य उदार सदस्यों ने शिक्षा संबंधी धारा जोड़ना चाही थी किन्तु उस समय डाइरेक्टरों का तर्क काम कर गया था कि "स्कूल और कालेजों की स्थापना की मूर्खता द्वारा हमने अभी अमेरिका खो दिया है, भारतवर्ष में वही मूर्खता पूर्ण कार्य ठीक न होगा।" कुछ अंग्रेज़ी अफसरों का भी यही मत था कि भारतीयों में शिक्षा प्रसार न हो सर लायोनेल स्मिथ ने १८३१ई० में कहा था "शिक्षा जाति तथा धर्म के उन कुसंस्कारों को दूर कर देगी जिनके द्वारा हमने हिन्दुओं को मुसलमानों के विरुद्ध कर देश पर अधिकार कर रखा है। शिक्षा उनके मस्तिष्कों को विकसित करके उनकी अपरिमित शक्ति का उन्हें परिचय प्राप्त करा देगी।" * संभवतः वह लोगी मनोवृत्ति को उत्पन्न करने की बात सोच न पाया था।

सन् १८१३ ई० तक समय बहुत बदल गया था। इङ्गलैंड में भी सरकार द्वारा जन शिक्षा पर असफल प्रस्ताव पार्लियामेंट में आचुका था। १७९७ ई० में सरचार्ल्स ग्रान्ट ने एक पैम्फ्लेट ग्रेट ब्रिटेन की एशियाई प्रजा के समाज की दशा, विशेषतया नैतिकता तथा उसे सुधारने के उपाय—लिखकर दर्शाया कि भारतीय नैतिकता

* M. Paranjpe- A source Book of India Education.

निम्नतम गर्त में पहुंच गई है। * उसके मत में उस समय भारतीय नैतिकता आधुनिक काल से भी गई बीती थी। वह लिखता है—"यूरोप के गये बीते भागों में भी सच्चे ईमानदार तथा शुद्ध आत्मावाले प्राणी मिल सकते हैं। बंगाल में सच्चाई तथा ईमानदारी का व्यक्ति सृष्टि का अनुपम रत्न है, और मुझे भय है कि जीवन के सभी अंगों में विशुद्ध आचरण के व्यक्ति अप्राप्य हैं। भारतीयों के हाथ में दी हुई शक्ति अत्याचार तथा अन्याय द्वारा प्रयुक्त होती है, सभी पद रुपया कमाने के लिये हैं, न्याय खरीदा जा सकता है। भारतीय स्वार्थ के सामने किसी हित की परवा नहीं करते। देश प्रेम भारतवर्ष में अज्ञात है।" लार्ड कार्नवालिस का भी यही मत था। भारतीयों का विचार है कि यह ग़लत विचार था किन्तु जनसाधारण की मानसिक अवस्था का शायद यह सही द्योतक है, अथवा कम से कम सरकारी कर्मचारी विभाग का जिनके अनुभव पर ही ग्रान्ट ने यह लिखा था। श्री परान्जपे के मत में यह विचार तो ग़लत था, किन्तु प्रस्तावित सुधार उचित थे। "हिन्दू ग़लती करते हैं क्योंकि उनके दोष उनके सामने नहीं रखे गये। हमारे ज्ञान तथा प्रकाश ही उचित औषधि हैं, जो उचित ढंग से धैर्यपूर्वक प्रयोग करने से बड़े आनन्ददायक फल देंगे जो हमारे लिये लाभप्रद तथा गर्वास्पद होंगे।" यह प्रकाश प्रोटेस्टेंट धर्म का था और ज्ञान अंग्रेज़ी भाषा, साहित्य तथा यूरोपीय विज्ञानों का। ग्रान्ट ने अंग्रेज़ी माध्यम को ही उचित माना था क्योंकि इससे उस भाषा के पूर्ण साहित्य से भारतीयों का संबंध हो जायगा, वे मिशनरियों के अंग्रेज़ी स्कूलों को पसंद करते थे, वे इस भाषा को शासन की दृष्टि से भी सीखकर लाभ उठावें इत्यादि। उसका विश्वास था कि सदाचारी अध्यापकों के नेतृत्व में अंग्रेज़ी कलायें, साहित्य, दर्शन तथा

---

* Major Basu. History of Education in India under the East India Co.

धर्म भारतीयों की विचार धारा बदल देंगे। विज्ञानों द्वारा व्यावसायिक उन्नति होगी। इस प्रकार "हिन्दुओं में वाह्य संपन्नता तथा सामाजिक शांति" आ जावेगी।

ग्रांट की विचार धारा ने लोगों को प्रभावित किया, वह १८०५ ई० में कम्पनी का चेयर मैन भी बन गया था और १८०२ ई० से पार्लियामेंट का सदस्य था, अस्तु १८१३ ई० के निर्णय पर उसका विशेष प्रभाव था।

इसके सिवा भारतीय अधिकारी भी सरकार द्वारा शिक्षा के प्रोत्साहन के समर्थक थे। गवर्नर जनरल लार्ड मिंटो ने १८११ ई० में भारतीय संस्कृति तथा साहित्य की रक्षा पर इंग्लैण्ड को लिखा था। "यह साधारण कथन है कि भारतीयों में विज्ञान तथा साहित्य क्रमशः नष्ट हो रहा है, विद्वानों की संख्या ही नहीं घटी है वरन् उनके ज्ञान का वृत्त भी संकुचित होता जाता है। (शिक्षा से) विज्ञान तथा साहित्य छुट गये और केवल धार्मिक सिद्धांतों से संबंधित शिक्षा ही बची है। तत्कालीन फल कई ग्रन्थों का नाश है। और यदि सरकार शीघ्र सहायक हाथ नहीं बढ़ाती तो भय है कि शिक्षा का पुनरुद्धार भी ग्रन्थों तथा उनको समझाने वालों की कमी से असंभव हो जायगा" मिन्टो ने भारतीय विद्वानों को सरकारी सहायता और भी आवश्यक बताई, क्योंकि उन्हें और कोई सहारा नहीं था और यह ज्ञान यूरोपियनों के लिये उपलब्ध करना आवश्यक था। कम्पनी के १८१४ ई० की नीति से स्पष्ट है कि इस विचार धारा का प्रभाव भी पड़ा था।

इस प्रकार मिशनरी; अंग्रेज़ी भाषा, दर्शन, विज्ञानों के समर्थक; तथा भारतीय ज्ञान भंडार के रक्षक सभी सरकार द्वारा शिक्षा का प्रोत्साहन चाहते थे, अतः १८१३ ई० में पार्लियामेंट ने शिक्षा के लिये कम से एक लाख रुपये का अनुदान स्वीकृत किया—"यह गवर्नर जनरल के लिये न्याय संगत होगा कि बची हुई रकम से......कम

से कम एक लाख रुपया प्रतिवर्ष अलग करादे और उसे साहित्य के पुनरुद्धार तथा सुधार और भारतीय विद्वानों के प्रोत्साहन में तथा भारतीय ब्रिटिश क्षेत्रों में विज्ञानों के ज्ञान के प्रारंभ तथा उन्नति में लगावे।"

इसके साथ सभी देशों के मिशनरियों को भी स्वतंत्रता मिल गई कि वे भारतवर्ष में अपना कार्य कर सकें। "इस समिति का विचार है कि ब्रिटिश भारतीय निवासियों के हितों और सुख की उन्नति इस देश (ब्रिटेन) का कर्तव्य है और उनमें उपयोगी ज्ञान तथा नैतिक सुधार के साधनों का उपयोग होना चाहिये। उपर्युक्त उद्देश्यों तथा इन सौजन्यपूर्ण कार्यों को पूरा करने के लिये भारत जाने और रहने के इच्छुक व्यक्तियों को क़ानून द्वारा यथेष्ट सुविधायें मिलेंगी।"

पिछला प्रस्ताव कम्पनी के डाइरेक्टरों तथा भारतीय शासकों की इच्छा के विरुद्ध था क्योंकि वे धार्मिक हस्तक्षेप के विरोधी थे, किन्तु फिर भी इसके पास होने से अंत में लाभ ही हुआ क्योंकि मिशनरियों ने अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये शिक्षाक्षेत्र में भी बड़ा कार्य किया, उन्होंने ही अपने आदर्श से भारतीयों को शिक्षा संगठन में उतरने का प्रोत्साहन दिया, जिसके बिना सरकारी शिक्षा की प्रगति और भी कच्छपगति से होती।

सारांश

उन्नीसवीं शताब्दी में भारतवर्ष के सभी भागों में देशी शिक्षा वर्तमान थी। उच्चतर शिक्षा का वृत्त कम हो गया था पर प्रारंभिक शिक्षा घटने पर भी कहीं-कहीं पैंतीस प्रतिशत तक थी।

१८२२ ई० से १८३७ ई० तक अंग्रेजों ने इस देशी प्रारंभिक शिक्षा के बारे में खोज कर उसके रूप और विस्तार का निश्चय किया।

यह प्रारंभिक शिक्षा सभी भागों की निजी आवश्यकताओं के अनुसार थी, अत्यंत सस्ती थी और सफलता पूर्वक दी जाती थी। इसमें मुख्य दोष पुस्तकों की-कमी तथा अध्यापकों की अयोग्यता थी।

यह शिक्षा भी कम हो रही थी क्योंकि सरकारी प्रोत्साहन, तथा पदों की नितांत कमी हो गयी थी। राजनीतिक अशांति तथा ग्रामसंगठनों के ढीले पड़ने से इसे धक्का लगा था। ग्रामीणों की निर्धनता मुख्य कारण थी।

विदेशियों ने यहाँ शिक्षा धर्म प्रसार के लिये आरंभ की थी। पुर्तगालियों का यही उद्देश्य था। फ्रांसीसियों ने प्रारंभिक शिक्षालयों में विदेशी भाषा पाठ्यक्रम से हटा ली तथा स्थानी अध्यापकों को रखा और धार्मिक शिक्षण पर जोर न दिया। त्रणकुबार के डेन मिशनरियों के शिक्षा प्रयास (१७०६-२४) का भी यही रूप था। बादमें अङ्गरेजी मिशनरियों के साथ उन्होंने दक्षिण में अंग्रेजी स्कूल स्थापित किये जिन्हें १७८७ ई० से सरकारी सहायता भी मिलने लगी।

इसी समय निशुल्क शिक्षालय विशेषतया यूरोपियन यूरेशियन तथा ईसाई बालकों के लिये खुले।

कम्पनी ने शासन की सुविधाके लिये कलकत्ता मदरसा और बनारस संस्कृत कालेज भारतीयों के लिये खोले। फोर्टविलियम तथा फोर्ट सेंट जार्ज कालेज सिविल पदाधिकारियों को देशी भाषायें सिखाने के लिये खोले गये।

सेरामपुर के पादरियों ने प्रारंभिक शिक्षा का अच्छा उद्योग किया किंतु धार्मिक असहिष्णुता को जन्म देने के कारण उन्हें कम्पनी का कोप ही मिला। १८१३ ई० में आज्ञापत्र बदलने पर शिक्षा के लिये १ लाख रुपये का अनुदान स्वीकृत हुआ।

प्रश्न

१. देशी प्रारंभिक शिक्षा के स्वरूप, गुणों, तथा ह्रास के कारणों का विवेचन कीजिये।

२. ब्रिटिशों के अतिरिक्त अन्य मिशनरियों के शिक्षा प्रयास का वर्णन कीजिये। उनसे ईस्ट इंडिया कम्पनी ने क्या निष्कर्ष निकाला? इस निष्कर्ष की आलोचना कीजिये।

३. १८१३ ई० के आज्ञापत्र में हुए परिवर्तनों की आलोचना कीजिये और भारतीय शिक्षा-विकास के इतिहास में उनका महत्व स्पष्ट कीजिये।

अध्याय ४

ईस्ट इंडिया कंपनी और शिक्षा १८१३-१८५३ ई०

भूमिका—ईस्ट इंडिया कंपनी ने १८१३ से १८३३ ई० तक शिक्षा के विषय में कोई निश्चित नीति निर्धारित न की वरन् तीनों प्रेसीडेंसियों में होने वाले कार्य से अनुभव प्राप्त करती रही। इस ढुलमुल नीति का मुख्य कारण यह था कि कंपनी के डाइरेक्टर स्थानीय ब्रिटिश अफ़सरों की योग्यता पर विश्वास करते थे और जानते थे कि उनके विचारों से इन अफसरों का अनुभव ही अधिक सफल होगा। इसी लिये उन्होंने कोई स्पष्ट नीति स्थिर नहीं की, और नौ-दस वर्ष तक १ लाख के अनुदान का अधिकांश भाग व्यय होने की नौबत न आई।

अरबी-संस्कृत के समर्थक—भारतीय ब्रिटिश शासकों में शिक्षा संबंधी तीन गुट थे। शिक्षा के विरोधियों का तो अंत हो रहा था क्योंकि अब पार्लियामेंट ने ही शिक्षा के लिये सरकारी प्रोत्साहन की नीति मान ली थी। इन गुटों में एक दल वारेन हेस्टिंगज़ और मिन्टो का अनुयायी था जो भारतीय साहित्य, धर्म, दर्शनों आदि की शिक्षा के साथ ही पाश्चात्य दर्शनों तथा विज्ञानों की शिक्षा देना उचित मानता था, किन्तु इनका माध्यम अरबी तथा संस्कृत रखने के पक्ष में था। शिक्षालयों का संगठन भी ये भारतीय विधियों द्वारा ही करना चाहते थे जैसे बनारस संस्कृत कालेज का संगठन धर्मशास्त्र के नियमों के अनुसार हुआ था। इन शिक्षालयों में निःशुल्क शिक्षा, अध्यापकों तथा शिष्यों के निकटतम संबंध द्वारा दी जाती थी। शिक्षा धर्म

तथा संस्कृति को केंद्र मानकर ही आगे बढ़ती थी। ये लोग कलकत्ता मदरसा तथा बनारस संस्कृत कालेज को ही आदर्श मान कर शिक्षा प्रसार करना चाहते थे। आवश्यकतानुसार उनके पाठ्यक्रम में कुछ परिवर्तन भी करने के पक्ष में वे थे, यथा अंग्रेज़ी कक्षायें जोड़ देना। इस दल का मुख्य प्रभाव बंगाल प्रेसीडेन्सी में था।

वर्नाक्युलर के समर्थक—दूसरा दल अन्य दोनों प्रेसीडेन्सियों में प्रभावशाली था, वे प्रांतीय भाषाओं के माध्यम द्वारा ही शिक्षा विकास की आशा रखते थे। इनका ही दृष्टिकोण ठीक था। वे पाश्चात्य विज्ञान भी इन्हीं भाषाओं में अनुवादों द्वारा पढ़ाने के पक्षपाती थे। अंग्रेज़ी को ये वैकल्पिक रूप से इच्छुक विद्यार्थियों तक ही सीमित रखना चाहते थे। मुनरो तथा एल्फिन्स्टन इस दल के नेता थे। वे देशी शिक्षालयों के सुधार तथा पाठ्यक्रम के विस्तार में विश्वास रखते थे। अध्यापकों की योग्यता तथा आय में भी वे वृद्धि करके उन्हें विस्तृत पाठ्यक्रम पढ़ाने के योग्य बनाना चाहते थे। निरीक्षण के भी वे हामी थे।

अंग्रेज़ी के समर्थक—तीसरा दल अभी छोटा ही सा था, जो अंग्रेज़ी साहित्य तथा पाश्चात्य विज्ञानों की शिक्षा को अंग्रेज़ी माध्यम द्वारा देना ही उचित मानता था। इस दल के समर्थक बहुतेरे थे और उनके दृष्टिकोण भी भिन्न थे। इसके समर्थक सभी प्रांतों में थे पर बंगाल में तुलनात्मक दृष्टि से कुछ अधिक थे। इन्हीं का अंत में ज़ोर हुआ और इन्होने शिक्षा का रूप स्थिर किया, जिससे जन शिक्षा को बड़ा धक्का पहुँचा।

सभी दलों में भारतीय भी थे। तीसरे दल के भारतीय समर्थकों में राजा राम मोहन राय का नाम उल्लेखनीय है। ये बंगाल में स्थित उस भारतीय शिक्षित समाज के अगुआ थे जो अत्यंत अल्पमत में था तथा जिसने ब्रिटिश संबंध से होने वाले लाभों के फेर में पड़कर क्रांति

द्वारा अंग्रेज़ी राज्य के मूलोच्छेद की भावना को भुला दिया था। इस दल का उद्देश्य सरकार से सहयोग करके समाज की अधिकाधिक उन्नति और प्रगति करना था। उनके अल्पकालीन उद्देश्य थे अंग्रेज़ी शिक्षा द्वारा पदों की प्राप्ति, शिक्षितवर्ग की वृद्धि तथा सम्पन्नता।

मिशनरी तथा ग्रांट के अनुयायी अफसर इस शिक्षा द्वारा ईसाई धर्म तथा पाश्चात्य सभ्यता के प्रचार की आशा रखते थे। उनका विचार था कि "इस शिक्षा द्वारा एक ऐसे समाज की सृष्टि होगी जो हमारे (ब्रिटिश) तथा हमारी करोड़ों जनता के बीच विचार-वाहक बनें, एक ऐसा वर्ग जो रंग तथा रक्त में भारतीय किन्तु विचारों, रुचियों, नैतिक आदर्शों तथा बुद्धि में ब्रिटिश हो" (मैकाले)। इस प्रकार सभ्यता पर विजय इस शिक्षा का एक उद्देश्य था। मैकाले ने बाद मे अपने विचारों को अधिक स्पष्ट करते हुये पादरियों की विचार धारा को और भी पुष्ट किया था। उसने १८३६ ई० में अपने पिता को लिखा था, "हमारे अंग्रेज़ी शिक्षालय आश्चर्यजनक गति से बढ़ रहे हैं, स्कूलों में सभी विद्यार्थियों को स्थान देना कठिन है····हिन्दुओं पर इस शिक्षा का बड़ा प्रभाव पड़ता है। जितने हिन्दू यह शिक्षा प्राप्त करते हैं, उनका अपने धर्म से सच्चा लगाव नहीं रह जाता। कुछ नीतिवश उसे मानते रहते हैं···अन्य बहुतेरे ईसाई हो जाते हैं। मेरा दृढ़ विश्वास है कि यदि हमारी शिक्षानीति चलती रही तो तस वर्ष बाद बंगाल के सम्मानित वर्गों में एक भी मूर्तिपूजक न रह जायगा। और यह बिना धर्म प्रचारके केवल ज्ञान और विचार से हो जायगा। मैं इस संभावना से प्रसन्न हूँ।"

इसी गुट में बेंटिंग, ट्रेवेलियन आदि भी थे जो शिक्षा द्वारा अंग्रेज़ी राज्य की नींव दृढ़ और ब्रिटिश शासन को दीर्घायु करना चाहते थे। उनके विचार में भारतीय शिक्षा उन्हें जाग्रत करती* पर

---

* डाइरेक्टरों ने १८ जनवरी सन् १८२४ में बंगाल सरकार की

उसके विपरीत यह शिक्षा उन्हें अंग्रेज़ी पर आश्रित तथा अंग्रेज़ी संबंध के लिये कृतज्ञ बना देगी तथा शिक्षित समाज का जब तक बहुमत न होगा वह ब्रिटिश सत्ता का पोषक रहेगा क्योंकि उसे भी जनता से भय रहेगा। मेजर बसु के मत में ट्रवेलियन के विचार पाश्चात्य शिक्षा के सभी समर्थकों के विचार थे। उसने इस प्रकार अपने विचार व्यक्त किये थे "हिन्दू तथा मुसलमान दोनों ही हमें अधिकार नाशक विदेशी समझते हैं, जिन्होंने उनका देश छीन कर उन्हें मान तथा धन के पदों से वंचित किया है।" अरबी तथा संस्कृत पुस्तकों की ऐसी ही राजनीतिक विचारधारा है। सौभाग्यवश ये विचार कुछ विद्वानों तथा पुस्तकों तक सीमित हैं।....पर उस राष्ट्रीय शिक्षा को क्या समझा जावे, जो इनका उद्धार कर जनता तक पहुँचा देगी।....हमारे परम शत्रु भी न चाहेंगे कि हम ऐसी शिक्षा का प्रचार करें जो हमारे विरुद्ध मानव प्रकृति की प्रबलतम भावनाओं को भड़कावे"*"यूरोपियन शिक्षा का उल्टा ही प्रभाव देशी दिमाग़ों पर पड़ता है।....वे अपनी संस्थाओं को अंग्रेज़ी आदर्शों के अनुसार सुधार कर वैधानिक स्वराज्य का प्रयास करेंगे, न कि देशी आदर्शों के अनुसार क्रांति द्वारा स्वतंत्रता चाहेंगे।....पिछली विधि के समर्थक षड्यन्त्र किया करते हैं, पर नई विधि में उद्देश्य की सफलता क्रमिक होगी और उसमें युग लग जायेंगे"+ श्री वौमरन का भी यही मत था।

भर्त्सना करते हुये लिखा था, "केवल हिन्दू मुस्लिम शिक्षा के कालेज की स्थापना द्वारा तुमने अधिकांश निरर्थक तथा बहुतेरा हानिप्रद विषय पढ़ाने में अपने को बांध लिया।"

* Travelyan. Education of the People of India, (1838) quoted by M. R. Paranype. A Source Book of Modern Indian Education.

+Magor Basce his to of Education under the East India Co.

बाद में इस गुट में मेटकाफ़ और लार्ड हेस्टिंग्ज़ जैसे कुछ व्यक्ति भी मिल गये जो शिक्षा द्वारा जनता की उन्नति शासक जाति का कर्तव्य मानते थे*। किन्तु इस गुट में अधिकांश स्वार्थ तथा राजनीतिक नीति के पोषक ही थे। सौभाग्यवश इतिहास ने इनकी आशाओं को ग़लत सिद्ध किया। इस गुट ने ही आगे चल कर धन की कमी के कारण केवल थोड़े लोगों को अच्छी प्रकार शिक्षित करने को जन-साधारण को थोड़ी शिक्षा देने से अधिक अच्छा माना और इस प्रकार शिक्षा छनने के सिद्धान्त (Filtration Thesoy) को जन्म दिया, जिसके वश में आकर शिक्षा की प्रगति बहुत दिनों तक रुकी रही।

डाइरेक्टरों के १८१४ के आदेश—इस प्रकार इन दलों के विचार १८१३ ई० में परिपक्व भी न थे और उनकी पारस्परिक उपयोगिता भी सिद्ध न हो पाई थी। अस्तु, कम्पनी के डाइरेक्टरों ने सभी के परीक्षण के हेतु अथवा उदासीनता और अनुभव हीनता के कारण १८१४ ई० में उन्होंने एक लाख का अनुदान व्यय करने के लिये कोई निश्चित नीति न स्थिर की। उन्होंने लिखा था (शिक्षा के अनुदान की) धारा विचारणीय दो समस्यायें प्रस्तुत करती है, प्रथम भारतीय विद्वानों का प्रोत्साहन और साहित्य का पुनरुद्धार तथा सुधार, द्वितीय भारतीयों में विज्ञान के ज्ञान का प्रसार। इनमें से कोई भी उद्देश्य हमारे विश्वविद्यालयों के कालेजों के जैसे सरकारी कालेजों के माध्यम से प्राप्त नहीं हो सकते, क्योंकि सम्मानित तथा जाति वाले भारतीय उनके अनुशासन को स्वीकार न करेंगे, साथ ही सन्देह है कि विचारणीय उद्देश्यों की पूर्ति के लिये कोई निश्चित विधि सोच निकालना सम्भव होगा।" इस प्रकार डाइरेक्टरों ने अपनी शिक्षा संबंधी अज्ञानता को स्वीकार कर लिया।

आगे उन्होंने लिखा "हमारा विचार है कि विद्वान हिन्दुओं को

इस उद्देश्य की पूर्ति में सहायक बनाने के लिये उन्हें अपनी चिर-कालीन प्रथा द्वारा अपने घरों पर शिक्षा देने दिया जाये, और उनको ....प्रोत्साहित करने के लिये सम्मान सूचक उपाधियां तथा कभी-कभी आर्थिक सहायता भी दी जावे।"

उन्होंने भारतीय शिक्षण विधि की उपयोगिता की सराहना की। क्योंकि वह विप्लवों में अक्षुण्ण रही थी तथा उसी के कारण देशी लेखक तथा एकाउटेंट कुशल थे। "हम उसकी उपयोगिता के इतने कायल हैं कि तुम शीघ्र ही उसकी वर्तमान दशा का पता लगाओ और हमें सूचित करो, तथा ग्राम अध्यापकों के न्यायोचित अधिकारों और (करआदि से) छूटों की रक्षा करो, तथा उनमें से विशेष योग्य व्यक्तियों को सम्मानित करो क्योंकि भारत में सर्वत्र ग्राम अध्यापक को बड़ा सम्मान प्राप्त है।"

हमें ज्ञात हुआ है कि संस्कृत भाषा में कई उत्तम नीति शास्त्र, धर्मशास्त्र तथा प्रत्येक वर्ग के आचरणों के नियम हैं, इनका ज्ञान सरकारी न्याय विभाग के भावी पदाधिकारियों के लिये उपयोगी होगा। हमें मालूम हुआ है कि बहुत से सराहनीय ग्रन्थ पौधों तथा दवाइयों के गुणों तथा उनके औषधियों के प्रयोग पर हैं। संभव है इनका ज्ञान यूरोपीय डाक्टरों को लाभ दायक हो। भूमिति तथा बीजगणित समेत गणित तथा ज्योतिष पर भी ग्रन्थ हैं जो यूरोपीय विज्ञानों पर प्रकाश तो नहीं डाल सकते, परन्तु इनके द्वारा हमारे वेधशाला तथा इंजीनियर विभाग के कर्मचारियों और भारतीयों में संपर्क स्थापित हो सकता है, जिससे भारतीय इनमें तथा अन्य विज्ञानों में आधुनिक प्रगतियों को धीरे-धीरे अपना लें।"

"इन बहुमुखी उद्देश्यों के लिये हमारा संकल्प है कि हमारे उन विभागों के ऐसे कर्मचारियों को जो संस्कृत पढ़ना चाहें, प्रोत्साहन मिले तथा इस हेतु भारतीय शिक्षक उन लोगों में से चुने जावें जिन्होंने उन

विज्ञानों में कुछ ज्ञान प्राप्त कर लिया हो, और उनका वेतन उदार हो।"

इस प्रकार डाइरेक्टरों ने विद्वानों को उपाधियों तथा आर्थिक सहायता देकर पहिला उद्देश्य प्राप्त करना चाहा तथा विद्वानों के पारस्परिक संपर्क द्वारा यूरोपीय विज्ञान भारतीयों तक पहुँचाने का प्रयास किया। शासन तथा चिकित्सा-प्रबंध में सुधार के लिये भी देशी शिक्षा प्रणाली को पुनरुज्जीवित करने की सलाह दी।

मद्रास सरकारी प्रयास—अब हमें देखना है कि इन चालीस वर्षों में शिक्षा ने क्या प्रगति की। मद्रास प्रांत में मुनरो ने १८२२-२६ ई० तक शिक्षा संबंधी पड़ताल कराई जिसका वर्णन अन्यत्र हो चुका है। इसके आधार पर मुनरो ने लिखा, "इस देश में शिक्षा की दशा इंगलैण्ड की तुलना में गिरी हुई है, पर अधिकांश यूरोपीय देशों से बढ़ी हुई है।" इस गिरी दशा के कारणों के विवेचन में उन्हें सरकारी उपेक्षा तथा जनता की निर्धनता ही मुख्य जँचे। इसके सुधार के लिये उन्होंने स्कूलों को दान, शिक्षकों की दीक्षा तथा उन्हें आंशिक सरकारी वेतन देने की व्यवस्था की।

मद्रास शिक्षा-समिति—शिक्षकों की दीक्षा के लिये मद्रास शिक्षा समिति (Madroas School Book Society) को एक शिक्षालय खोलने के लिये ८४००) वार्षिक देना निश्चय किया। प्रत्येक ज़िले में प्रारंभ में दो मुख्य स्कूल खोलने की योजना की, एक हिन्दुओं के लिये और एक मुसलमानों के लिये। बाद में धीरे-धीरे प्रत्येक तहसील में हिन्दुओं के लिये एक-एक मुख्य स्कूल स्थापित करने की उसकी इच्छा थी।

लोक शिक्षा समिति १८२२—इसके सिवा उसने १८२२ में एक लोक शिक्षा-समिति (Committee of Public Instruction) नियत की जो उपर्युक्त योजना को लागू करे। मुनरो ने इस शिक्षा-संगठन के दो उद्देश्य रखे थे। प्रथम शिक्षा द्वारा जनता को

अनुशासित तथा सम्पन्न बनाना, दूसरे इस प्रकार शासकों का कर्तव्य पूरा करना। उसने लिखा था, "हमें सदा साम्राज्य बनाये रखने का स्वप्न न देखना चाहिये। बल्कि भारतीयों को ऐसा बना देना चाहिये कि वे अपना शासन इस प्रकार कर सकें कि उससे उनका, हमारा तथा विश्व का हित हो। हमें अपने प्रयासों के प्रतिफल में अपना कर्तव्य पूरा करने की भावना तथा इस सफलता का श्रेय ही लेना चाहिये"* मुनरो की कौंसिल ने उसके इन कार्यों में पूर्ण सहयोग किया। मुनरो ने जनता की शिक्षा के लिये डाइरेक्टरों से ५००००) वार्षिक माँगा क्योंकि १८१३ के अनुदान से मिलने वाला २००००) वार्षिक धर्म, कानून तथा ज्योतिष की शिक्षा पर ही व्यय हो जाता था। उसका अनुमान था कि उसकी पूरी शिक्षा प्रणाली लागू होने पर ४८०००) वार्षिक व्यय इस प्रकार होगा।

मद्रास शिक्षा समिति	८४००)
जिलों के १५ मुस्लिम स्कूल २०) प्रति मास	३६००)
,, ,, हिन्दू ,, ,, ,,	३६००)
तहसीलों के ३०० स्कूल ६) प्रति मास	३२४००)
	४८०००)

१८२८ ई० में डाइरेक्टरों ने यह व्यय स्वीकार कर लिया किन्तु मुनरो की मृत्यु के कारण १८३० ई० तक केवल ७० तहसीली स्कूल खुल पाये और उसी वर्ष डाइरेक्टरों ने जन शिक्षा के स्थान पर उच्च शिक्षा तथा अंग्रेज़ी शिक्षा पर ध्यान देने को लिखा, "तुम्हारी सरकार के प्रथम प्रस्तावों में जनता के किसी भी अंश की उच्च शिक्षा का कोई स्थान न था। प्रारम्भिक शिक्षा का सुधार ही उनका उद्देश्य था। ....परन्तु जनता की नैतिक तथा बौद्धिक दशा सुधारने में वही शिक्षा सुधार अत्यंत सफल होते हैं, जिनका संबंध उच्चतर वर्गों

* K. S. Vakil. Educationin India.

में होता है, जिनके पास अवसर तथा जनता पर स्वाभाविक प्रभाव है। बहुसंख्यक वर्गों पर सीधे प्रभाव डालने के स्थान पर इन्हीं वर्गों के शिक्षा स्तर को ऊंचा करके जनता के विचारों तथा भावनाओं में अधिक व्यापक तथा हितकारी परिवर्तन करना संभव है। साथ ही तुम्हें ज्ञात है कि हमारी उत्कट इच्छा है कि ऐसे भारतीय हमारे पास हों जो अपने स्वभाव तथा विद्या द्वारा अपने देश के शासन में उच्चतर पदों पर रखने योग्य हों। तुम्हारी प्रेसीडेन्सी की शिक्षा में ऐसे व्यक्ति प्रस्तुत करने की क्षमता नहीं है। प्रधान प्रेसीडेन्सी (बंगाल) में भारतीय उच्च वर्गों को अंग्रेजी भाषा तथा यूरोपीय साहित्य और विज्ञानों की शिक्षा देने का प्रयास हुआ। इन प्रयासों को इतनी सफलता मिली ····कि भारतीयों में सभ्य यूरोप के विचार तथा भावनायें प्रचारित करना संभव है। वैसा ही प्रयास तुम्हारी प्रेसीडेन्सी में होना चाहिये। *

इस पत्र से मुनरो के स्कूलों को पाला मार गया, तहसीली स्कूलों का विकास रुक गया। १८३६ ई० में तो उन पर रोक लग गई क्योंकि कलकत्ते से बेंटिंग ने केवल अंग्रेज़ी शिक्षा पर ही व्यय करने का आदेश दिया। इससे जन शिक्षा को बड़ा धक्का लगा।

इसी समय से मद्रास लोक शिक्षा समिति का कार्य भी खटाई में पड़ गया। सन् १८३६ ई० में उसे भारतीय शिक्षा समिति (Committee of Native Education) का नाम मिला क्योंकि अब उसका संपर्क जनता की शिक्षा से टूट चुका था। १८४१ ई० में विश्वविद्यालय स्थापित करने के उद्देश्य से एक स्कूल खोला गया तो इस समिति का नाम विश्वविद्यालय समिति (University Committee) करके उसका ध्यान केवल उच्च शिक्षा पर ही केंद्रित रखा गया। मद्रास सरकार ने १८४५ ई० में फिर उसका नाम शिक्षा की समिति (Council of

---

* Nurullah and Naik—History of Education in India.

Education) करके उसका कार्यक्षेत्र बढ़ाना चाहा पर डाइरेक्टरों ने उसका नाम १८४८ ई० में (University Board) विश्वविद्यालय बोर्ड रख दिया। १८५१ ई० में फिर उसका नाम प्रबन्धक बोर्ड (Bord of Governers) हुआ १८५४ ई० में लोक शिक्षा विभाग (Department of Public Instvueteonl) ने इसे समाप्त कर दिया।

मद्रास सरकार इस बीच कुछ भी महत्व पूर्ण कार्य न कर सकी। समय डाइरेक्टरों तथा मद्रास सरकार के बीच विवादों में ही कट गया।

पादरी—चर्च मिशन सोसायटी ने मद्रास प्रान्त में १८१५ से ३५ तक कई स्कूल खोले इनमें अधिकतर १०७ तिनेवली ज़िले में थे जहां प्रायः तीन हज़ार विद्यार्थी शिक्षा पाते थे। अन्य मिशनरी भी इस प्रांत में आये। पादरियों के अधिकांश शिक्षालय प्रांतीय भाषाओं में थे क्योंकि वे निम्न कोटि की जनता को ही प्रभावित करने में अधिक संलग्न थे। शुल्ज़ के समय के अंग्रेज़ी स्कूल भी चल रहे थे। श्रीपतचिएप्पा के दान को सरकार ने अपने हाथ में लेकर मद्रास में भारतीय बच्चों के लिये एक निःशुल्क विद्यालय खोला जहां अंग्रेज़ी साहित्य तथा विज्ञानों के साथ ही तामिल तथा तेलगू भी पढ़ाई जाती थी। बाद में इसी संस्था ने कुछ छात्रवृत्तियां भी स्थापित कीं।

अस्तु मद्रास प्रांत में इस काल में सरकार ने न तो लोक शिक्षा ही को पूर्णतया सुधार पाया और न अंग्रेज़ी शिक्षा में ही विशेष प्रगति की। १८४१ के स्कूल के सिवा पांच स्कूल राजमहेंद्री, कडलौर, कालीकट, बिलारी तथा कोम्बंकोनम में थे। १८५३ ई० में मद्रास विश्वविद्यालय का कालेज विभाग खुला, अर्थात् १८४१ वाला सरकारी स्कूल कालेज हो गया। किन्तु पादरियों के स्कूलों ने यहां अंग्रेज़ी शिक्षा की बड़ी प्रगति कर दी थी "जिससे यहां बम्बई प्रांत, जहां प्रांयः प्रति ज़िले में एक स्कूल था, से भी अधिक विस्तृत अंग्रेज़ी शिक्षा थी"

प्रायः ३०००० विद्यार्थियों में ३००० के करीब विद्यार्थी उदार अंग्रेज़ी शिक्षा पा रहे थे। *

बंगाल—बंगाल प्रेसीडेंसी में इस काल की शिक्षा का इतिहास बड़ा महत्वपूर्ण रहा क्योंकि यहीं की निर्धारित शिक्षा नीति अंततोगत्वा अन्य प्रांतों में भी लागू हुई। सर्वप्रथम इस प्रांत ने डाइरेक्टरों की उदासीनता और शिक्षा से राजनीतिक अशांति के भावों को तोड़ दिया।

मेटकाफ़ का लेख १८१५—सन् १८१५ ई० में दिल्ली के कमिश्नर सर चार्ल्स मेटकाफ़ ने सरकार को लिखा था" कि भारतीयों को शिक्षित बनाने के विरुद्ध तर्क दिये गये हैं, पर एक उदार सरकार के लिए उन पर ध्यान देना कितना अन्यायपूर्ण होगा? ईश्वर ही साम्राज्य देता तथा छीनता है। शासक तो प्रजा के हितसाधन द्वारा शासन के योग्य बन सकते हैं। अस्तु यदि हम अपना कर्तव्य पालन करें तो भविष्य में चाहे जो भी परिवर्तन हों, हमें भारतीयों से कृतज्ञता तथा विश्व से प्रशंसा मिलेगी। किन्तु यदि हम अपने स्वार्थ तथा भावी विपत्तियों के डर से अपनी प्रजा को अच्छी बातों संचित रखेंगे....तो हमें पतन के साथ ही विश्व की घृणा भी मिलेगी।.... मेरा स्वयं विचार है कि हम भारतीयों के लिए जितनी ही अच्छी बातें करेंगे, उतना ही वे हमसे अधिक स्नेह करेंगे और फलतः साम्राज्य की शक्ति तथा आयु बढ़ेगी।"

लार्ड हेस्टिङ्ग्ज का मत—लार्ड हेस्टिङ्ग्ज ने भी इसी प्रकार के तर्कों से सम्मति प्रकट करते हुये कहा था, "यह सरकार इस कुविचार के प्रभाव में कभी न आवेगी कि लोगों में ज्ञान फैलाने से उनको शासन में रखना अधिक कठिन हो जाता है। यह कल्पना करना भी ब्रिटिश विचारधारा के प्रति राजद्रोह होगा कि लोगों की अशिक्षा से थोड़े झूठे लाभों के लिये उनमें अज्ञान को बनाये रखना कभी भी इस सरकार की नीति रही होगी। ×

---

*Nurullah & Naik History of Education in India.

× Marshman History of India. quoted by K. S. Vak l.

लार्ड हेस्टिङ्ग्ज को ही नये शिक्षा अनुदान तथा डाइरेक्टरों के १८१४ ई० के पत्र के आधार पर नीति निर्धारित करनी थी। उसके मत में देशी उच्च शिक्षा केंद्रों द्वारा नये विज्ञानों का प्रसार संभव न था। अस्तु उसने जनता में विज्ञान के प्रोत्साहन के लिये निश्चित अनुदान को उच्च कालेजों पर व्यय करने की अपेक्षा स्कूलों के सुधार में लगाना अधिक उपयोगी माना। स्कूलों के सम्बन्ध में भी उसका मत था कि देश में मिलने वाली शिक्षा— लिपिज्ञान, गणित आदि को ही निःशुल्क बनाना भी अपव्यय है। "अस्तु सरकार को निरीक्षण अथवा दान द्वारा वर्तमान शिक्षण को सुधारना चाहिये तथा उसे ऐसे लोगों तथा स्थानों में फैलाना चाहिए, जो इस शिक्षा से वंचित हैं।" इसी उद्देश्य को लेकर लार्ड हेस्टिङ्ग्ज ने चिनसुरा में पादरियों के स्कूलों का विवरण प्राप्त करके उसी तरह के स्कूलों के प्रसार में स्वयं भी योग दिया। उसे पता चला था कि एक वर्ष में खोले गये सोलह स्कूलों में प्रायः साढ़े नौ सौ विद्यार्थी उपस्थित रहने लगे, और ऐसे स्कूलों का व्यय २०) मासिक के लगभग था अस्तु उसने चिनसुरा के कमिश्नर के निरीक्षण में मे के प्रयोग के लिये ७२००) वार्षिक देना स्वीकार किया। यह रकम शीघ्र ही ९६००) कर दी गई।

कलकत्ता पुस्तक समाज १८१७ व शिक्षालय समाज १८१९— इसके सिवा सरकार ने १८२१ ई० में कलकत्ता पुस्तक समाज (Calcutta School Book Society) और १८२३ ई० में कलकत्ता शिक्षालय समाज (Calcutta School Society) को छः छः हज़ार वार्षिक देना स्वीकार किया। पुस्तक समाज की नींव १८१७ ई० में धर्मरहित प्रारंभिक शिक्षा द्वारा भारतीयों के बौद्धिक तथा नैतिक स्तर को उठाने के लिये पड़ी थी। शिक्षालय समाज १८१९ ई० में बना था कि वह अपने भरपूर प्रयास से पहिले कलकत्ते में तथा फिर प्रांत में प्रारंभिक शिक्षालयों को सहायता दे। इन दोनों

समाजों के समर्थक अधिकांशतया उदार ब्रिटिश थे। बंगाल में प्रारंभिक शिक्षा का विकास इस युग में इन्हीं तीन साधनों से हुआ। सरकार ने इस शिक्षा में नेतृत्व न किया, केवल सहायता दी।

लोक शिक्षा समिति—१८२३ ई० में सरकार ने एक लाख के अनुदान के उचित व्यय तथा शिक्षा सम्बन्धी समस्त सरकारी योजनाओं को बनाने तथा कार्यान्वित करने के लिये लोक शिक्षा समिति (General Committee of Public Instruction) मद्रास के समान बना दी। इस कमेटी के दस सदस्य थे तथा संस्कृत के पंडित विल्सन इसके मंत्री थे। उपर्युक्त कार्यों के सिवा इस समिति को बंगाल प्रांत में जन शिक्षा की पड़ताल भी सौंपी गई। साथ ही समिति का कर्तव्य यह भी था कि वह जनशिक्षा तथा लोगों के चरित्र-सुधार के लिये यूरोपीय विज्ञान तथा कलाओं के साथ ही अन्य उपयोगी शिक्षा के प्रसार की योजनायें बनाये। बनारस कालेज, कलकत्ता मदरसा, और चिनसुरा तथा अन्य स्थानों के स्कूल भी इसी समिति को सौंप दिये गये। इस प्रकार मद्रास, बंगाल तथा बम्बई सभी जगह सरकारी शिक्षा संगठन का काम १८१३ के आज्ञापत्र के प्रायः दस वर्ष बाद चला।

१८२४ ई० में सरकार ने एक प्रेस भी स्थापित किया जिससे पुस्तकें छपाने के कार्य में सुविधा हो।

समिति का कार्य १८३३ ई० तक—समिति आरंभ से ही संस्कृत तथा अरबी शिक्षा के पक्ष में थी। उन्हीं के माध्यम से वह यूरोपीय विज्ञान तथा अँग्रेज़ी का प्रचार ठीक समझती थी। अस्तु १८२४ ई० में उसने कलकत्ते में एक संस्कृत कालेज की स्थापना की यद्यपि राजा राम मोहन राय ने इसका लिखित विरोध किया और जनता की अँग्रेज़ी भाषा तथा यूरोपीय साहित्य की मांग पर ज़ोर दिया। उन्होंने कहा कि सरकार को ऐसे कालेज की स्थापना करना चाहिये,

जिसमें यूरोपियन अध्यापक गणित, दर्शन, रसायन, शरीर विज्ञान और अन्य उपयोगी विषय पढ़ावें। उन्होंने कहा कि संस्कृत भाषा इतनी कठिन है कि सदियों तक ज्ञान प्रसार के मार्ग में उसने रोड़े अटकाये हैं, एक नये संस्कृत कालेज का उद्देश्य तो विभिन्न भागों में पढ़ाने वाले पंडितों को कुछ सहायता देने से भी चल सकता है। उन्होंने कहा कि संस्कृत द्वारा शिक्षा से बहुत कम लाभ है क्योंकि जीवन के सबसे महत्वपूर्ण भाग में छः सात वर्ष व्याकरण से माथा पच्ची करने अथवा वेदांतियों के समान बाल की खाल निकालने से कोई लाभ नहीं। संस्कृत भाषा केवल हज़ारों वर्ष पुराना ज्ञान ही सिखा सकती है। संस्कृत माध्यम की शिक्षा से अंधकार ही बना रहेगा।

दिल्ली तथा आगरा कालेज—फिर भी समिति अपने निर्णय पर दृढ़ रही क्योंकि उसके मत में जनता के विचार उसी शिक्षा पद्धति के समर्थक थे। इसी समय आगरे में एक दान के रुपये से समिति ने एक संस्कृत कालेज खोला। दिल्ली में एक कालेज खुला तथा मुर्शिदाबाद में एक मदरसा स्थापित हुआ। अंग्रेज़ी शिक्षा के लिये समिति ने कलकत्ता मदरसा, संस्कृत कालेज तथा आगरा कालेज में अंग्रेज़ी कक्षायें जोड़ दीं, तथा बनारस और दिल्ली में एक एक अंग्रेजी स्कूल खोला। इसके सिवा समिति ने कलकत्ते के विद्यालय को भी सहायता दी जहाँ अँग्रेज़ी शिक्षा दी जाती थी। इसके सिवा समिति ने संस्कृत तथा अरबी की बहुतेरी पुस्तकें प्रकाशित की तथा पाश्चात्य अंग्रेज़ी ग्रन्थों का उन भाषाओं में अनुवाद कराया। इस प्रकार इस काल में समिति अपने तीन मुख्य उद्देश्यों के लिये कुछ भी न कर सकी, (१) भारतीय शिक्षा की पड़ताल (२) जनशिक्षा * (३) यूरोपीय विज्ञान तथा कलाओं का प्रसार।

*** जनशिक्षा के प्रति समिति के रुख का पता १८२३ में ही चल गया था। सितम्बर १८२३ ई० में दिल्ली के श्री फ्रेज़र ने सरकार के**

समिति में मतभेद—इधर अंग्रेज़ी का प्रचार बढ़ाने के लिये भी उस पर दबाव पड़ा था जिसके तथा अन्य कारणों के वश समिति में मतभेद हो गया और उसने १८३५ ई० में सरकार से नीति निर्धारित करने की याचना की। समिति की नीति विफल सी हो रही था। क्योंकि कलकत्ता पुस्तक समाज अंग्रेज़ी पुस्तकों से धन कमा रहा था, जब कि समिति की अरबी तथा संस्कृत की पुस्तकें सड़ रही थीं। इनका प्रचार कम था। संस्कृत विद्यालय के विद्यार्थियों ने अपने पैरों पर खड़े होने अथवा समाज द्वारा सहायता से निराशा प्रकट करते हुये आजन्म सरकारी सहायता की मांग की थी जब कि अंग्रेज़ी स्कूलों के विद्यार्थी

चीफ सेक्रेटरी को लिखा कि जनता के अज्ञान तथा अनैतिक व्यवहार को देखते हुये उन्होंने १८१४ ई० से २००) मासिक व्यय करके जमींदारों तथा किसानों के प्राय: अस्सी बच्चों की फारसी शिक्षा के लिये शिक्षालय स्थापित किये थे। अब उन शिक्षालयों को वह सरकार को सौंपना चाहते थे कि वह उन्हें बढ़ाकर ८४००) वार्षिक व्यय करके ४०० बालकों को अंग्रेज़ी, फारसी तथा हिन्दू भाषायें पढ़ाने का प्रबंध करे। लोक-शिक्षा समिति ने, जिसे उक्त प्रस्ताव भेजा गया, सैद्धान्तिक रूप से शिक्षा अनुदान से ऐसे व्यय का विरोध किया.... उनका मत था कि उक्त अनुदान उच्च वर्गों की उदार शिक्षा पर व्यय होना चाहिये। श्री फ्रेज़ी को यह सूचना दे दी गई। १८२७ ई० में डाइरेक्टरों ने भी इसी मत की पुष्टि करते हुये लिखा था—"सीमित साधनों के कारण तुम सीमित कार्यों में ही लग सकते हो। और जहां चयन करना ही हो तो सर्वोच्च प्रसिद्धि के स्थानों और उच्च तथा मध्यम वर्ग की शिक्षा से आरंभ करने की उपादेयता में कोई सन्देह नहीं है। इसी वर्ग से शासन कार्यों के लिये देशी सहायक बिल्कुल ठीक ही लिये जाते हैं, और इनका प्रभाव अपने देशवासियों पर भी बहुत अधिक है।

Major Basu. History of Education under The E. I. Co.

स्वयं उन्नति कर रहे थे। इन प्राच्य विद्यालयों की अंग्रेज़ी कक्षायें वैकल्पिक होने के कारण बेकार सी रहीं। अस्तु समिति के एक भाग ने अरबी तथा संस्कृत माध्यम से यूरोपीय विज्ञान-प्रसार के स्थान पर अंग्रेज़ी माध्यम को अपनाना चाहा। अंत में बेंटिंग ने मैकाले के कथनों के प्रभाव में अथवा स्वयं स्वतंत्र निर्णय द्वारा इसी दल का पक्ष लिया और १८३५ ई० से बंगाल में अंग्रेज़ी माध्यम द्वारा ही शिक्षा सरकारी नीति बन गई।

अंग्रेज़ी माध्यम की ओर—बंगाल अथवा भारत में इस निर्णय की ओर सरकार का झुकाव बहुत धीरे-धीरे हुआ। जैसे प्रारंभिक शिक्षा में वैसे ही इस ओर भी सरकार ने कोई महत्वपूर्ण कदम उठाने से तब तक इन्कार किया जब तक अन्य लोगों ने अंग्रेज़ी शिक्षा की लोकप्रियता तथा उपादेयता सिद्ध न कर दी।

विद्यालय का अंग्रेज़ी प्रचार—शुल्ज़ के तंजौर तथा अन्य स्थानों के अंग्रेज़ी शिक्षालयों का वर्णन हो चुका है। बम्बई में भी अंग्रेज़ी शिक्षा लोकप्रिय सिद्ध हुई थी। १८१७ ई० में अंग्रेज़ी माध्यम के द्वारा यूरोपीय विषय पढ़ाने के लिये कलकत्ता विद्यालय खुला था। इसके आरंभ का इतिहास भारतीयों की अंग्रेज़ी शिक्षा के प्रति रुचि का द्योतक है। राजा राम मोहन राय ने सुप्रीम कोर्ट के चीफ़ जस्टिस सर एडवर्ड हाइड ईस्ट से प्रार्थना की कि वे कुछ गण्यमान्य हिन्दुओं की एक सभा करें जो एक शिक्षालय यूरोपीय उदार शिक्षा के हेतु खोलना चाहते हैं। इस सभा में पचास से भी अधिक धनी मानी हिन्दुओं तथा पंडितों ने भाग लिया और ५००००) चंदा एकत्र हो गया। इस सभा ने बंगाली, अंग्रेज़ी तथा बाद में हिन्दुस्तानी और फारसी भाषाओं के पढ़ाने का निर्णय किया। आरंभ में अंग्रेज़ी नीति शास्त्र, ईश्वर के प्रति कर्तव्य, अंग्रेज़ी तथा बंगाली व्याकरण और लेख, गणित, इतिहास, भूगोल, ज्योतिष, तथा रुपया होने पर

अंग्रेज़ी साहित्य भी पढ़ाने का निश्चय हुआ। ब्राह्म राममोहन राय ने इस निर्णय में ओट से ही काम किया क्योंकि हिन्दू उनसे घृणा करते थे। इस प्रकार हिन्दुओं का अंग्रेज़ी पर अनुराग स्पष्ट था। विद्यालय को विद्यार्थियों की भी कमी नहीं रही। इसकी सफलता के बारे में लोक शिक्षा समिति ने १८३१ में लिखा था "फल आशातीत हुआ है।" अंग्रेज़ी भाषा का ज्ञान तथा उसके साहित्य तथा विज्ञानों की जानकारी ऐसी सीमा तक पहुंची हैं, जहां तक यूरोपीय विद्यालय कम ही पहुंचते हैं।" अंग्रेज़ी भाषा में रुचि व्यापक हो रही है। और विद्यालय के शिक्षित लोगों द्वारा संगठित विद्यालय चारों ओर उत्पन्न हो रहे हैं। *

विशप कालेज कलकत्ता तथा जयनारायण स्कूल बनारस—१८१८ ई० कलकत्ते में विशप कालेज खुला जिसमें प्रचारक तथा शिक्षकों की दीक्षा के सिवा अंग्रेज़ी पढ़ाने की भी व्यवस्था थी। इसी वर्ष बनारस में श्री जयनारायण घोषाल ने जयनारायण स्कूल के लिये संपत्ति दान दी इसमें भी फारसी, बंगाली तथा हिन्दुस्तानी के साथ ही अंग्रेजी भी पढ़ाई जाती थी।

डफ के निशुल्क अंग्रेज़ी स्कूल—१८३० ई० में स्काच पादरी डफ ने अंग्रेज़ी शिक्षालयों द्वारा ईसाई धर्म प्रचार करने के लिये कलकत्ते में निःशुल्क अंग्रेज़ी शिक्षालय स्थापित किया। यह भी लोक प्रिय सिद्ध हुआ, यद्यपि इसका उद्देश्य भारतीयों का धर्म-अपहरण था।

डाइरेक्टरों ने भी धीरे-धीरे विशुद्ध प्राच्य शिक्षा को बुरा भला कहना आरंभ किया और कंपनी के लिये भावी नौकरों की शिक्षा की ओर संकेत करते हुये अंग्रेज़ी शिक्षा के पक्षपातियों को बल दिया

---

* Travelyan. on the Edueation of People of India qudted in Vakil Education in India.

क्योंकि १८३० ई० तक उन्होंने अंग्रेज़ी राजभाषा बनाने की नीति मान ली थी।

डाइरेक्टर—१८२४ ई० में डाइरेक्टरों ने लिखा था "हम भारतीयों की शिक्षा प्रसार तथा उन्नति के लिये अपने उत्साह से तुम्हें पूर्णतया अवगत कराना चाहते हैं, और अगर इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये हमें उचित साधन बताये जावें तो हम बहुत व्यय करने को भी तत्पर हैं।"

साथ ही उन्होंने सरकारी प्राच्य विद्यालयों के लिये लिखा था, "इन कालेजों के दो उद्देश्य थे, एक भारतीयों पर उनके साहित्य को प्रोत्साहित करके अपने (अंग्रेज़ों के) पक्ष में प्रभाव डालना, तथा दूसरे उपयोगी शिक्षा का विकास। तुमने मान लिया है कि यदि सगठन का प्रथम फल हुआ भी है तो दूसरा बिल्कुल नहीं·······। प्राच्य विज्ञानों को पढ़ना पढ़ाना समय व्यर्थ करने से भी बुरा है········ एतिहासिक साधनों का अंग्रेज़ी अनुवाद होना चाहिये, और यह कार्य यूरोपीय सब से ठीक कर सकते हैं। इसके बाद काव्य बचता है, पर काव्य की प्रगति के लिये कालेज स्थापित करना तो कभी आवश्यक नहीं माना गया" "हमें लगता है कि इन संस्थाओं (कलकत्ता मदरसा तथा संस्कृत कालेज) का आरंभिक संगठन ही गलत था। उद्देश्य संस्कृत शिक्षा नहीं वरन् उपयोगी शिक्षा होना चाहिये था। हिन्दू मुसलमानों की उपयोगी शिक्षा के लिये हिन्दू मुस्लिम माध्यम और उनके विचारों को संतुष्ट रखने के लिये उनके साहित्यों का सुयोग्यतम भाग बनाये रखना बहुत सफल होता। इन दशाओं में ऐसी शिक्षा-पद्धति (पश्चिमी शिक्षा) प्रचलित करने में भी कठिनाई न होती जिससे बड़ा लाभ होता।" *

समिति का उत्तर—इन आक्षेपों तथा राजा राममोहन के विचारों

---

* Nurullah and Naik. History of Education in India.

विरुद्ध लोक शिक्षा समिति ने तर्क दिये कि यूरोपीय विज्ञानों के प्रसार के लिये उनकी पद्धति के सिवा कोई ढंग न था, क्योंकि माध्यम, पुस्तकों तथा अध्यापकों की कमी पड़ जाती। दूसरे उनके मत में यूरोपीय ज्ञान के जनता उस समय भी विरुद्ध थी। भारतीय विज्ञानों की निरर्थकता के बारे में उन्होंने कहा कि इस बात को और विशिष्ट होना चाहिये था क्योंकि भारतीय दर्शन सभी भाषाओं में अध्ययन योग्य हैं, हिन्दू गणित यूरोपीय पद्धति पर है। धर्मशास्त्र तथा कानूनों के अध्ययन की शासन के लिये आवश्यकता है। भावी सुधारों का आधार भाषा ही होगी। अस्तु भाषा तथा धर्मशास्त्रों की शिक्षा व्यर्थ नहीं स्वीकार की जा सकती। ये तर्क ठीक है किन्तु समिति को जनता की असली भाषा को माध्यम बनाना चाहिये था।

इसके बाद १८२७ ई० में बंगाल तथा १८३० ई० में सभी प्रेसीडेंसियों में डाइरेक्टरों ने ऐसी शिक्षा योजना बनाने को कहीं जो मध्यम तथा उच्च वर्ग को शिक्षित बना कर उन्हें नैतिकता तथा योग्यता द्वारा कम्पनी की नौकरियों के उपयुक्त बना दे, जिन्हें विश्वास तथा अधिकार के पदों पर नियुक्त किया जा सके। इसे उन्होंने शिक्षा का उच्चतम उद्देश्य माना था। उनके अनुसार प्रभावशाली तथा रिक्त अवसर वाले उच्च वर्ग का चरित्र ही जनता का चरित्र होता है यूरोपीय नैतिकता, राजनियम साहित्य, विज्ञान तथा विचारों और भावनाओं से ओत प्रोत करना उनकी धारणा में उस शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिये था जो भारतीय शासन के उच्च पदों के लिये भारतीय उच्च वर्गों को तैयार करने के लिये आवश्यक थी।"

अंग्रेज़ी राजभाषा के पथ पर—इसी समय लार्ड बेंटिंग ने सरकारी भाषा अंग्रेज़ी बनाने के उद्देश्य से १८२९ में समिति को लिखा था कि सरकार की इच्छा अपनी भाषा को धीरे-धीरे राजभाषा बनाने की है, अस्तु इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये समिति को व्यवहार्य

तथा विचार संगत साधन जुटाना चाहिये। बेंटिंग के इसमें दो उद्देश्य थे एक तो ब्रिटिश अफ़सरों को सुविधा होगी, जिससे वे अपने भारतीय सहायकों के प्रभाव से मुक्त प्रतीत होंगे तो इन सहायकों को घूसखोरी का कम अवसर रहेगा, दूसरे इस प्रकार अंग्रेज़ी भाषा तथा शिक्षा का प्रचार बढ़ने से भारतीयों में ब्रिटिश नीति तथा सत्ता का सहायक एक दल तैयार हो जावेगा। इसी राजनीतिक अपेक्षा ने बेंटिंग के १८३५ ई० के निर्णय को भी संभवतः प्रभावित किया था।

इन सभी बातों से अंग्रेज़ी माध्यम का पल्ला भारी होता जा रहा था किन्तु समिति के बहुसंख्यक सदस्य प्राच्य शिक्षा ही के अनुयायी थे पर इसी समय १८३४ ई० में मैकाले इस समिति का प्रधान नियुक्त हुआ तो समिति के दोनों दलों की संख्या ऐसी समान हो गई कि गतिरोध को दूर करने के लिये सरकार से स्पष्ट नीति की घोषणा की प्रार्थना जनवरी सन् १८३५ ई० में हुई। शिक्षा के माध्यम तथा पाठ्य-क्रम को लेकर मैकाले तथा प्रिंसेप ने अपने विचार भी बेंटिंग के समक्ष रखे। यदि मैकाले के शब्दों में ओज तथा तर्कों में प्रभाव था, तो प्रिंसेप के पास भी अकाट्य शास्त्रार्थ निपुणता थी। इस समय इन्हीं दो व्यक्तियों ने अंग्रेज़ी तथा अरबी, संस्कृत माध्यम पर विशेष रूप से लिखा था, जिसके बाद बेंटिग ने अपना मत दिया था।

मैकाले का मत—मैकाले एक प्रभावशाली अंग्रेज़ी लेखक था जिसने अन्य लोगों की भांति संपत्ति एकत्र करने के लिये कम्पनी की नौकरी स्वीकार की थी। १८३३ ई० में कम्पनी का आज्ञा पत्र बदला था और गवर्नर जनरल की समिति में एक कानूनी सदस्य बढ़ा था। इसी पद पर मैकाले नियुक्त हुआ था। बेंटिंग ने उसे लोक शिक्षा समिति का प्रधान भी नियत किया था, जहां वह उच्च तथा मध्यम वर्ग की शिक्षा के लिये अंग्रेज़ी माध्यम अपनाने का प्रचार करने लगा। इसी हेतु उसने अपने विचारों को लेखबद्ध करके १८३५ ई०

में सरकार के पास भेजा था। मैकाले का मत सभी शिक्षित युवकों को मालूम है, फिर भी उसके मुख्य तर्कों को यहां लिखना अनुचित न होगा।

"लोक शिक्षा समिति के कुछ सदस्यों का मत है कि उनकी अभी तक की नीति ब्रिटिश पार्लियामेंट के १८१३ ई० के नियम द्वारा निर्धारित हुई है।...मेरी समझ में पार्लियामेंट के कानून का किसी भी प्रकार वह अर्थ नहीं लग सकता जो लगाया गया है। उसमें विशेष भाषाओं तथा विज्ञानों का नाम नहीं है। अनुदान साहित्य के पुनरुद्धार तथा उन्नति और भारतीय विद्वानों के प्रोत्साहन, तथा भारतीयों में विज्ञानों के प्रसारित करने के लिये है। तर्क दिया जाता है साहित्य से पार्लियामेंट का अर्थ अरबी तथा संस्कृत साहित्य ही हो सकता है और भारतीय विद्वान' से उनका तात्पर्य न्यूटन के भौतिक शास्त्र और मिल्टन के काव्य ज्ञाताओं से नहीं हो सकता।...यह संतोषप्रद अर्थ नहीं है।...अगर मिश्र का पाशा अपने देश में साहित्य के पुनरुद्धार तथा उन्नति और विद्वानों के प्रोत्साहन के लिये रुपया सुरक्षित करे, तो उसका अर्थ ओसिरिस की कथाओं...में वर्ष बिताने का नहीं हो सकता।...क्या उस पर असंगति का आरोप लगाया जा सकता है, यदि वह अंग्रेज़ी तथा फ्रांसीसी भाषाओं और विज्ञानों के अध्ययन की आज्ञा दे जिनके लिये ये भाषायें ही कुंजी हैं।

"पुरानी प्रणाली के पोषक जिन शब्दों पर विश्वास करते हैं, उनका वह अर्थ नहीं है और बाद के शब्द दूसरे पक्ष की ओर बिल्कुल निश्चित हैं। यह एक लाख रुपया 'साहित्य के पुनरुद्धार' ही के लिये नहीं है वरन् 'भारतीयों में विज्ञानों के प्रचार' के लिये भी है—ये शब्द, जो अकेले ही मेरे चाहे परिवर्तनों के लिये यथेष्ट हैं।

"अगर कौंसिल (वाइसराय की कौंसिल) मेरा अर्थ स्वीकार करे तो किसी कानून की आवश्यकता नहीं है अन्यथा मैं एक छोटे कानून द्वारा १८१३ के उस वाक्यांश को समाप्त करने का प्रस्ताव करूंगा।

"प्राच्य प्रणाली के प्रशंसकों का एक और तर्क है जो यदि ठीक है, तो वह सभी परिवर्तनों के विरुद्ध निर्णायक होगा। उनका मत है कि वर्तमान प्रणाली के लिये सरकार प्रतिज्ञाबद्ध है, अस्तु अरबी-संस्कृत पर होने वाले व्यय में परिवर्तन खुली डकैती है।....साहित्य के प्रोत्साहन पर व्यय और मदों पर व्यय से भिन्न नहीं है।....यदि सरकारने किसी व्यक्ति को विश्वास दिलाया हो—नहीं केवल आशा भी जाग्रत की हो कि उसे संस्कृत तथा अरबी पढ़ने पढ़ाने को नियमित वेतन मिलेगा, तो उस व्यक्ति के आर्थिक हितों की रक्षा का मैं पक्षपाती हूँ। किंतु सरकार का किन्हीं भाषाओं और विज्ञानों को पढ़ाने के लिये प्रतिज्ञा बद्ध होना जब कि वे व्यर्थ सिद्ध हो चुके हों, मेरी समझ में निरर्थक है।....किसी सरकारी पत्र में एक शब्द भी नहीं है कि सरकार इस व्यय को अपरिवर्तनीय रूप से नियत करना चाहती थी।....मैं इस तर्क को केवल शब्द जाल मानता हूँ, जो कोई तर्क न रहने पर कुरीतियों के पक्ष में यहां और इंगलैंड में भी दिया जाता है।"

"मेरे मत में वाइसराय को इस रुपये को अरबी संस्कृत शिक्षा पर व्यय होने से रोकने का उतना ही अधिकार है, जितना मैसूर में चीते मारने वालों के पारितोषिक को कम करने का।"

"अब हम मुख्य प्रश्न पर आते हैं। इस देश की जनता के बौद्धिक सुधार के लिये सरकार द्वारा निर्दिष्ट ढंग से व्यय करने को एक रक़म है। प्रश्न है कि उसे व्यय करने की सब से उपयोगी विधि क्या है!

"इस बात पर तो सभी दल एकमत हैं कि भारत के इस भाग में प्रचलित भाषाओं में न तो साहित्यक और न वैज्ञानिक ज्ञान है, साथ ही वे इतनी कम विकसित हैं कि बिना किसी ओर से उन्हें सम्पन्न किये (शब्दभंडार बढ़ाये) उनमें कोई महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ अनूदित करना भी सम्भव नहीं है। यह सर्वमान्य प्रतीत होता है कि उच्च-

स्तर की शिक्षा द्वारा उस वर्ग का बौद्धिक सुधार, जिसके पास इसके लिये साधन हैं, किसी ऐसी भाषा से सम्भव है जो उनके बोलचाल की भाषा नहीं है।....समिति का एक भाग चाहता है कि यह भाषा अंग्रेजी हो और दूसरा अरबी, संस्कृत की हिमायत करता है। मेरी समझ में प्रश्न यह है कि कौन भाषा सबसे अधिक सीखने योग्य है।

"मुझे अरबी संस्कृत का ज्ञान नहीं है पर मैंने उन भाषाओं से अनुवाद पढ़े हैं, और उन भाषाओं के विद्वानों से बात की है। प्राच्य भाषाओं के विद्वानों द्वारा आंके हुये प्राच्य साहित्य के मूल्य को मैं मानने को तैयार हू। उनमें से एक भी अस्वीकार नहीं कर सकता कि अच्छे यूरोपीय पुस्तकालय की एक अलमारी अरब तथा भारत के संपूर्ण साहित्य के कम महत्वपूर्ण है।

"मेरी समझ में यह निर्विवाद है कि साहित्य का वह भाग जिसमें पूर्वी लेखक सर्वोच्च हैं, काव्य है। मैं किसी प्राच्य भाषाविद से नहीं मिला जो यूरोपीय काव्यों की तुलना में अरबी तथा संस्कृत काव्यों को स्वीकार करता हो। कल्पनात्मक ग्रन्थों से निकलकर जब हम नियमों और यथार्थताओं पर आते हैं तो यूरोपीय साहित्य की महानता अपरिमय है........भौतिक तथा नैतिक दर्शनों में भी दोनों राष्ट्रों की यही तुलनात्मक स्थिति है।....अस्तु हमें विदेशी भाषा के माध्यम से पढ़ाना है। अपनी भाषा के गुणों को बखान करना हमारे लिये अनावश्यक है.... यह निडर हो कर कहा जा सकता है कि उस भाषा का वर्तमान साहित्य तीन सौ वर्ष पहिले तक संसार की सभी भाषाओं के साहित्य से अधिक महत्वपूर्ण है। भारतवर्ष में अंग्रेजी शासकों की भाषा है। राजधानियों के उच्च वर्ग के भारतीय भी इसे बोलते हैं। इसके पूर्वीय व्यापार की भाषा बनने की संभावना है। आस्ट्रेलिया तथा अफ्रीका में उन्नतिशील यूरपीयों की यही भाषा है, जिनका संबंध दिन दिन भारतवर्ष से बढ़ रहा है। चाहे हम भाषा के महत्व पर विचार

करें अथवा देश की स्थिति पर अंग्रेजी ही भारतीयो के लिये सबसे हितकर होगी।

"अब प्रश्न यह है कि जब हम इस भाषा को पढ़ा सकते हैं तो क्या हम उन भाषाओं को पढ़ायेंगे जिनमें सर्वसम्मति से किसी विषय पर भी ऐसी पुस्तकें नहीं हैं जिनकी तुलना हमारे ग्रन्थों से हो सके, जब हम युरोपीय विज्ञान पढ़ा सकते हैं तो क्या हम ऐसे विज्ञान पढ़ायेंगे, जो जहां कहीं यूरोपीय विज्ञानों से भिन्न हैं वे ख़राब हैं, जब हम यथार्थ इतिहास तथा ठीक दर्शन पढ़ा सकते हैं तो क्या हम सरकारी व्यय से ऐसे चिकित्सा सिद्धान्त पढ़ायेंगे जो ब्रिटिश नीमहकीमो के लिये भी अपमान जनक होंगे, अथवा ज्योतिष जिस पर अंग्रेज लड़कियां हंस पड़ेंगी; इतिहास जिनमें तीस फ़ीट ऊँचे और ३०००० वर्ष लम्बे राज्यवाले राजाओं का वर्णन है, और भूगोल जिनमें शीरे और मक्खन के समुद्रों का वर्णन है, पढ़ायेंगे।"

इसके आगे मैकाले ने इंगलैंड और रूस की प्रगति का कारण क्रमशः ग्रीक-लैटिन तथा पश्चिमी यूरोपीय साहित्यों को बताते हुये कहा कि यदि ये राष्ट्र अपने ही प्राचीन साहित्य में रत रहते तो कदापि उन्नत न होते। अस्तु अंग्रेज़ी साहित्य भारतीयों को भी उन्नत कर देगा। वे अरबी संस्कृत शिक्षा को नहीं चाहते क्योंकि उस साम्राज्य में हमें एक भी ऐसा विद्यार्थी न मिलेगा जो बिना आर्थिक सहायता पाये उन भाषाओं को पढ़े। कलकत्ता मदरसे के ७१ विद्यार्थियों को ६०००) वार्षिक छात्रवृत्ति देना पड़ती है, किन्तु वहीं पर अङ्गरेजी कक्षा के लिये बाहरी विद्यार्थी १०३) मासिक फ़ीस देते हैं। "विश्व के किसी भी भाग में आदमियों को लाभदायक तथा रुचिकारक कार्यों के लिये वेतन नहीं देना पड़ता।" इसके बाद मैकाले ने संस्कृत कालेज के विद्यार्थियों के प्रार्थना पत्र की ओर संकेत किया जिसमें उन्होंने किसी भी प्रकार के सरकारी पदों द्वारा निर्धनता से बचने की भीख

मांगी थी। "इन्होंने अपनी शिक्षा द्वारा की हुई हानि का मुआवजा मांगा है, और वे सही हैं।" "अरबी तथा संस्कृत पुस्तकों पर तीन वर्ष में ६००००) व्यय हुये और १०००) भी वसूल न हुआ इसके विपरीत कलकत्ता पुस्तक समाज सात आठ हज़ार अङ्गरेजो पुस्तकें बेच कर बीस प्रतिशत लाभ उठा रहा है।"

उसका मत था कि कानून सम्बन्धी कठिनाई हिन्दू कोड तथा मुस्लिम कोड बन जाने पर समाप्त हो जायगी और इन विद्यार्थियों को जजों के सहायक के रूप में भी स्थान न मिलेगा। उसने धार्मिक साहित्य की रक्षा के तर्क के विरुद्ध धार्मिक निष्पक्षता और इस प्रकार अंध विश्वास बढ़ने का तर्क दिया।

प्रिंसेप के विचार तथा मैकाले के विचारों की आलोचना— बेंटिंग ने इन विचारों से सहमति प्रकट की थी किन्तु ये अकाट्य तर्क न थे। प्रिंसेप के लेख में बहुतेरे तर्कों का यथेष्ट उत्तर था। किन्तु अधिकांश उसने कलकत्ता मदरसा और प्राच्य शिक्षालयों में परिवर्तन को रोकने ही का प्रयास किया था और उसमें वह सफल भी हुआ उसके मुख्य तर्क ये थे कि "भारतीय विद्वानों" और साहित्य के पुनरुद्धार का अर्थ उस समय के ठीक पहिले प्रचलित साहित्य ही हो सकता है। मिश्र का पाशा भी यदि ऐसी आज्ञा निकाले तो उसका तात्पर्य भी उसके पहिले प्रचलित अरबी शिक्षा से होगा। इसके बाद उसने कलकत्ता मदरसे के दान का अक्षय सिद्ध किया क्योंकि वारेन हेस्टिंगज का यही विचार था और वह १८१३ से पहले से चला आ रहा था।

उसने लिखा था कि इंगलैंड की उन्नति के लिये जिस प्रकार लैटिन व ग्रीक साहित्य था वैसे ही भारतीयों के लिये संस्कृत, अरबी तथा फारसी हैं। कलकत्ता मदरसा में छात्रवृत्तियां भी दो तीन सौ विद्यार्थियों में अस्सी दी हैं और वे प्रतियोगिता के लिये हैं। इंगलैंड में भी छात्रवृत्तियां दी जाती हैं।

फीस के संबंध में प्रिंसेप ने लिखा कि कलकत्ते मदरसे का अंग्रेज़ी मास्टर जो हिन्दुओं को भी पढ़ाता है, तीस रुपये ही वसूल कर पाया, जिसे ३००) प्रतिमास वेतन मिलता है। और यदि लोगों में अंग्रेज़ी के प्रति स्नेह है तो इसे अनिवार्य करने की क्या आवश्यकता और क्यों मदरसा के विद्यार्थियों ने प्रगति नहीं की। अंग्रेज़ी के प्रति रुचि केवल कुछ हिन्दुओं में ही है, जब कि मुसलमानों में बिल्कुल नहीं।

उसने आगे चल कर कहा कि अरबी तथा संस्कृत दर्शनों से ही बेकन न्यूटन, तथा लाक के दर्शन निकले थे अस्तु पश्चिमी विज्ञानों को अरबी तथा संस्कृत में लाने में क्या कठिनाई हो सकती है।

पुस्तकें न बिकने का कारण उनका ऊंचा दाम है, जिससे पुस्तकों की प्रतिलिपि करना सस्ता पड़ता है, और उन्हीं को लोग पढ़ते हैं। कलकत्ता पुस्तक समाज की पुस्तकें मिशनरी और शिक्षा समिति ही ख़रीदती रहती है।

इन तर्कों के सिवा मेकाले ने भारतीय साहित्य का महत्व स्थिर करने में अपना अज्ञान ही दिखाया था। उदाहरण स्वरूप १८१४ ई० में डाइरेक्टरों ने जिन चिकित्साग्रन्थों को यूरोपियनों के लिये हितकारी बताया था, उन्हीं को मैकाले ने तुच्छ समझा।

दूसरे मैकाले ने प्रांतीय भाषाओं को बढ़ने का अवसर ही न दिया। राष्ट्रीय भाषा बनने ही पर राष्ट्रीय साहित्य संभव है।* अंग्रेजी में भारतीय साहित्य बनने से जनता को कोई लाभ न हो सकता था। अंग्रेजी शिक्षा से उस समय प्रगति तो हुई, किन्तु ट्रेवेलियन का विचार

---

* मेकाले ने स्वयं १८३६ की रिपोर्ट में कहा था कि वर्नाक्यूलर भाषाओं की शिक्षा के प्रोत्साहन का महत्व हमें ज्ञात है। ७ मार्च की आज्ञा ऐसा करने से हमें वंचित नहीं करती। हमारे मत में वर्नाक्यूलर साहित्य का बनना ही अंतिम उद्देश्य है जिसके लिये हमें प्रयास करना चाहिये।

भी ठीक उतरा कि आरंभिक दशा (१६वीं शताब्दी) शिक्षित समुदाय तथा जनता में कोई संपर्क न हो सका। इस शिक्षित समुदाय में अधिकतर, नैतिकता और आत्मबल की कमी रही। उसकी दशा पंख लगा कर मोर बनने वाले कौवे की सी हुई। मैकाले की नीति से एक राष्ट्र बनने में भारत को सुविधा हुई यद्यपि यह कहना कि उसके बिना भारतीय कभी स्वराज्य न मांगते, ग़लत है। जापान अथवा चीन में बिना विदेशी माध्यम के भी राष्ट्रीयता और प्रगति आई तथा जापान में अपनी भाषा माध्यम होने से यह बहुत शीघ्र हुआ।

बेंटिंग का निर्णय—७ मार्च १८३५ ई० को लार्ड बेंटिंग ने सरकारी नीति स्थिर करते हुये घोषणा की—"ब्रिटिश सरकार का महान उद्देश्य इस देश में यूरोपीय साहित्य तथा विज्ञानों की उन्नति होना चाहिये, और शिक्षा पर होनेवाला समस्त व्यय अंग्रेजी शिक्षा पर ही सबसे अच्छी प्रकार लगेगा।

इसके बाद प्राच्य शिक्षा केन्द्र तो बने रहे पर उनकी छात्रवृतियां बन्द कर दी गई। लोगों के धार्मिक संदेहों को दूर करने के लिये बेंटिंग ने सरकारी शिक्षालयों में ईसाई धर्म की सीधी अथवा गौण शिक्षा की मनाही कर दी।

१८३५ के बाद—उच्च शिक्षा का माध्यम अंग्रेज़ी नियत करने के साथ ही बेंटिंग ने पहिले के सभी कालेजो को रहने दिया था क़िन्तु सरकारी व्यय द्वारा छपने वाले अरबी तथा संस्कृत प्रकाशन बन्द कर दिये। एक वर्ष के भीतर १२ अंग्रेजी स्कूल खुले। १८५३ तक प्रायः प्रत्येक ज़िले में एक अग्रेजी स्कूल खुल गया। आगरा प्रान्त १८४२ ई० तक बंगाल का ही भाग था। अस्तु वहां भी थोड़े जिला अंग्रेजी स्कूल खुल गये। इनके सिवा पांच अंग्रेजी कालेज भी थे। इनमें विद्यार्थियों की कमी न थी। १८३६ ई० में हुगली कालेज खुलते ही उसमें १२००

रुड़की इंजीनियरिंग कालेज सरकारी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये खुले।

१८३६—आकलैंण्ड—माध्यम का प्रश्न १८३५ ई० तक भी हल न हो सका। लार्ड आकलैंड के समय तक अरबी, संस्कृत तथा अंग्रेजी शिक्षालयों के समर्थकों में कशमकश चल रही थी क्योंकि शिक्षा व्यय प्रर्याप्त न था। अस्तु आकलैण्ड ने अरबी तथा संस्कृत कालेजों को काफी साधन दे दिये ताकि वे अध्यापकों का वेतन तथा छात्रवृत्तियां दे सकें। उसी धन से संस्कृत तथा अरबी ग्रन्थों का प्रकाशन भी हो सकता था, और उन कालेजों में आवश्यकतानुसार अंग्रेज़ी कक्षायें भी खुल सकती थीं। इस सबके लिये ३१०००) वार्षिक अतिरिक्त देना डाइरेक्टरों ने स्वीकार कर लिया।

वर्नाक्युलर माध्यम का प्रश्न—इसी समय प्रांतीय भाषाओं के समर्थकों ने उच्चतर शिक्षा में उनके माध्यम को अपनाने की प्रार्थना की। उन्होंने बताया कि अनुवादों पर होने वाला अतिरिक्त व्यय भारतीय तथा सस्ते अध्यापकों से कुछ पूरा हो जायगा। ये अध्यापक अंग्रेजी स्कूलों से निकलकर प्रांतीय भाषाओं द्वारा यूरोपीय विज्ञान जन साधारण तक पहुँचाने में समर्थ होंगे। साथ ही वे इच्छुक विद्यार्थियों को अंग्रेजी भी पढ़ा सकेंगे। लार्ड आकलैण्ड ने १८३५ के बाद की नीति तथा जिला स्कूलों में परिवर्तन करना स्वीकार न किया।

पाश्चात्य विद्या के समर्थकों को एक लाख से अधिक वार्षिक व्यय करने को मिल गया। साथ ही आकलैण्ड ने लिखा कि अरबी तथा संस्कृत के द्वारा यूरोपीय विज्ञानों की शिक्षा से सफलता की कम आशा है। अस्तु शिक्षा-नीति का मुख्य उद्देश्य अंग्रेज़ी माध्यम द्वारा यूरोपीय साहित्य, दर्शन और विज्ञानों की शिक्षा होनी चाहिये। धन की कमी के कारण सरकार को उच्च शिक्षा समाज के उच्च वर्ग को ही देना चाहिये जिनके पास शिक्षा के लिये समय है और जिनसे सभ्यता छन कर जनता में पहुँचेगी।

शिक्षा छनने का सिद्धांत—इस प्रकार आकलैण्ड ने अंत में शिक्षा छनने के सिद्धांत को सरकारी नीति बनाकर जन शिक्षा से सरकार का हाथ खींच लिया। १८२७ से डाइरेक्टरों ने और १८३५ में मैकाले ने भी इसी सिद्धान्त को स्वीकार किया—"वर्तमान समय में हमें ऐसे वर्ग को प्रस्तुत करना चाहिये, जो हमारे तथा जनता के बीच में विचारवाहक बने, ऐसा वर्ग, जो रक्त और वर्ण में भारतीय होते हुये भी रुचि, विचार, नैतिकता तथा बुद्धि में अंग्रेज़ हो। इन्हीं लोगों का कार्य होगा कि वे प्रांतीय भाषाओं को परिष्कृत तथा सम्पन्न करके जनता तक ज्ञान पहुंचाने के योग्य बनावें।"

बंगाल लोक शिक्षा समिति ने भी १८३९ ई० में श्री एडम के सुझाओं को अस्वीकार करते हुये इसी सिद्धांत का प्रतिपादन इन शब्दों में किया था "प्रथमतः हमारे प्रयास उच्च तथा मध्यम वर्ग की शिक्षा पर केन्द्रित रहना चाहिये; इन्हीं विद्वानों के द्वारा ग्रामीण शिक्षालयों में शिक्षासुधार होगा और शिक्षा के लाभ उन सभी को मिल जावेंगे जो निर्धनता के कारण अभी वंचित हैं।"

इस सिद्धांत की आलोचना—श्री एडम को शिक्षा नीचे की ओर छनने के सिद्धांत पर विश्वास न था। उन्होंने अपनी रिपोर्ट में लिखा था, "जनता के निम्न स्तर के लिये शिक्षालय स्थापित करने के स्थान पर सरकारी शिक्षालयों की ऐसी पद्धति भी संभव है जिसमें इस सिद्धांत पर कि शिक्षा नीचे को बढ़ती है, ऊपर को नहीं। उच्च वर्गों के लिये ही शिक्षालय स्थापित किये जावें, और इसके लिये अभी जिलों में, फिर परगनों में तथा तत्पश्चात् गाँवों में शिक्षालय खुलें और इस प्रकार धीरे-धीरे शिक्षाप्रसार के लिये अधिक योग्य अध्यापक मिलते जावें। इस पद्धति का मुख्य दोष यह है कि देशी शिक्षालयों का बिल्कुल ध्यान नहीं रखा जाता, जो हमारे शासन के पहिले ही से चले आ रहे हैं। ....इसके अनुसार ज़िला स्कूलों के पहिले कालेजं,

कालेजों से पहिले राष्ट्रीय विश्व विद्यालय तथा उनसे भी पहिले सार्वदेशिक विश्व विद्यालय होने चाहिये। पर यह तो सिद्धान्त की भावना के विपरीत है। सुधार व्यक्तियों से समाज में फैलते हैं, और जो व्यक्ति समूह को प्रेरणा देते हैं वे उच्च वर्ग अथवा विचारक वर्ग के ही अधिकतर होते हैं, किन्तु यह विचारक वर्ग, विशेषकर इस देश में, पूर्णतया अथवा मुख्यतया भी उन लोगों का नहीं होता जो मान और संपत्ति में महान् हों। प्रत्येक उच्चतर शिक्षालय की सफलता के लिये उससे निम्न कोटि के शिक्षालयों से शिक्षित विद्यार्थी मिलना चाहिये, अस्तु इन्हीं (निम्न कोटि के शिक्षालय) का संगठन पहले होना चाहिये। बच्चों को लिपि सीखने कालेज नहीं जाना है। ऊपरी भाग ऊंचा तथा मजबूत बनाने के लिये आधार गहरा और चौड़ा होना चाहिये, इस प्रकार आधार से आरंभ करके सभी कोटि के शिक्षालय बिना पारस्परिक विरोध के सफल बनाये जा सकते हैं।"

श्री एडम ने १८३७ ई० में अपनी पड़ताल के बाद देशी शिक्षा के सुधार तथा प्रोत्साहन और प्रसार की योजना पेश की थी। उसके मत में देशी शिक्षालयों को सुधारने के लिये ज़िला अफ़सर (१) उनके अध्यापकों से संपर्क स्थापित करें, (२) बालकों तथा अध्यापकों के उपयुक्त पुस्तकें दें, (३) अध्यापकों की परीक्षायें लें तथा सफलता को पुरस्कृत करें, (४) इसी हेतु नार्मल स्कूल भी स्थापित किये जावें। (५) इन अध्यापकों को अपने नये ज्ञान के अनुसार पढ़ाने को उकसाया जावे (६) इनकी आय लड़कों की फ़ीस के बजाय स्कूलों को भूमि दान देकर स्थिर कर दी जावे।

अंग्रेज़ी शिक्षा प्रसार के कारण—लोक शिक्षा समिति तथा सरकार ने इसे अस्वीकार किया क्योंकि वे शिक्षा छनने के सिद्धान्त को मान चुके थे। लार्ड हार्डिञ्ज ने प्रारंभिक अथवा वर्नाक्युलर शिक्षा के लिये १०१ स्कूल खुलवाये किन्तु इनमें से अधिकांश १८५७

तक बन्द हो गये क्योंकि शिष्य न मिले। इसका मुख्य कारण हार्डिञ्ज की नीति की घोषणा थी जो १८४४ ई० में हुई। इनके अनुसार सरकार ने सभी अंग्रेज़ी शिक्षालयों के विद्यार्थियों की सूची योग्यतानुसार बनवा कर सभी विभागों को उन्हीं में से नियुक्तियां करने का आदेश दिया। इसके बाहर से नियुक्तियों का कारण लेखबद्ध करना पड़ता था। इस प्रकार सरकारी पदों द्वारा प्रोत्साहन अंग्रेज़ी शिक्षा के ही लिये सुरक्षित हो गया। बाद में उसके लिये एक प्रतियोगात्मक परीक्षा भी होने लगी।

अंग्रेज़ी शिक्षा की प्रगति का एक कारण था। भारतीय विशेषतया हिन्दू विद्यार्थियों की विदेशी भाषा में भी शीघ्र गति। १८३६ में कलकत्ता मेडिकल कालेज के विद्यार्थियों की परीक्षा के बारे में कहा गया था कि उनके उत्तर तथा ज्ञान यूरोपीय विद्यार्थियों से भी अच्छे थे।

इसके सिवा इस काल में पदरियों ने धर्मपरिवर्तन की आशा से कई अंग्रेज़ी स्कूल प्रांत के भीतर खोले जिनमें निःशुल्क शिक्षा दी जाती थी। अंग्रेज़ी स्कूलों के विद्यार्थियों के अपने धर्म के प्रति वैराग्य ने जो १८३६ में मैकाले ने भी लक्ष्य किया था, इन पादरियों के दिया प्रयासों को और भी प्रोत्साहन दे रहा होगा।

शिक्षा-कौंसिल १८४२—शिक्षा के बदले हुये कार्य को सँभालने के लिये १८४२ में लोक शिक्षासमिति का स्थान शिक्षा कौंसिल (Councial of Education) ने ले लिया। कैमरन के नेतृत्व में कौंसिल ने १८४५ ई० में कलकत्ता विश्वविद्यालय का प्रस्ताव किया किन्तु डाइरेक्टरों ने उसे समय से पूर्व होने के बहाने टाल दिया।

इसके बाद बंगाल में केवल दो बातें महत्वपूर्ण हुईं, एक १८५० में कौंसिल को स्त्री शिक्षा के समर्थकों तथा शिक्षालयों को प्रोत्साहन देने का सरकार द्वारा आदेश, और १८५३ ई० में आगरे के जन शिक्षा

सिद्धान्तों का बंगाल, बिहार और पंजाब में प्रयोग करने का सरकारी आदेश।

इस काल के अन्त में बंगाल में १५१ सरकारी शिक्षालयों में १३००० विद्यार्थी प्रायः ६ लाख वार्षिक व्यय पर शिक्षा पाते थे। इनमें पाँच कालेज थे। किन्तु प्रारंभिक जन शिक्षा की उन्नति न हुई थी। १८५४ ई० में हार्डिञ्ज के बचे ३३ प्रारंभिक स्कूलों में १४०० विद्यार्थी ही थे। अंग्रेज़ी शिक्षा ने और प्रान्तों से अधिक उन्नति की थी।

आगरा—१८४३ ई० में यह प्रान्त बंगाल से अलग हुआ अस्तु उस समय तक यहां अंग्रेज़ी शिक्षा के थोड़े ज़िला स्कूल स्थापित हो चुके थे। उसके बाद में ही रुड़की कालेज की स्थापना हुई। १८४५ ई० में श्री टामसन गवर्नर ने शिक्षा की पड़ताल का आदेश दिया और उसके साथ ही श्री एडम के सिद्धान्तों पर जन शिक्षा सुधार की योजना बनाई। देशी शिक्षालयों को सुधारने के लिये पुस्तकें तैयार कराना, अध्यापकों तथा विद्यार्थियों को रुपया, वस्त्र तथा पुस्तकों के उपहार देना, तथा अध्यापकों को परामर्श देना इस योजना में था। साथ ही नये स्कूलों की स्थापना करने में शिक्षक के लिये जागीरें लगा देने का भी विचार था। डाइरेक्टरों ने दूसरी बात का विरोध किया अस्तु उसने दूसरी योजना में देशी स्कूलों का सुधार और आदर्श सरकारी तहसीली स्कूलों की योजना बनाई। १८५० ई० में इसके लिये डाइरेक्टरों ने ५००००) वार्षिक देना स्वीकार किया।

निरीक्षण—आठ जिलों के लिये एक विज़िटर जनरल, उसके नीचे ज़िला विज़िटर और परगना विजिटरों की नियुक्ति हुई। परगना विजिटर २०)—४०) मासिक वेतन पर देशी शिक्षालयों का निरीक्षण और सुधार करता था, लोगों को और स्कूल स्थापित करने के लिये उकसाता था तथा अध्यापकों और बालकों के पुरस्कार के लिये जिला

विजिटर से सिफ़ारिस करता था, और अपने परगने की शिक्षा संबंधी रिपोर्ट तैयारा करता था। वह शिक्षा प्रचारक था।

जिला विजिटर परगना विजिटरों के कार्य की देख भाल के साथ ही ५००) वार्षिक पुरस्कारों में वितरित करता था। पुस्तकों की बिक्री का प्रबंध करता था जिसके लिये उसे १०१) कमीशन मिलता था। वह तहसीली स्कूलों का निरीक्षण करता था और शिक्षा सम्बन्धी आँकड़ों की रिपोर्ट तैयार करके विजिटर जनरल को भेजता था। उसे १००) से २००) मासिक वेतन मिलता था।

विजिटर जनरल सभी जिलों की रिपोर्ट और नयी योजनायें सरकार को भेजता था।

तहसीली स्कूल—आठ जिलों * में यह योजना चलाई गई। तहसीली स्कूलों का पाठ्यक्रम ग्राम्य स्कूलों से ऊंचा रक्खा गया जिससे वे विद्यार्थी ही उनमें भर्ती हो सकें जो ग्राम्य स्कूलों के पढ़े हों। कुछ विद्यार्थियों की फ़ीस भी माफ़ हो जाती थी यदि उनके पिछले स्कूल के अध्यापक ने सिफारिश की हो, और उसने स्वयं सरकारी नियंत्रण में रहना स्वीकार कर लिया हो। इन नियंत्रित स्कूलों में विज़िटर जाकर अध्यापकों के कार्य की आलोचना करके परामर्श देते थे। इसे ग्राम्य अध्यापकों ने पसन्द न किया। आठों जिलों के विजिटर जनरल श्री स्टुअर्ट रीड थे, जो मैनपुरी के कलक्टर थे।

तहसीली स्कूल के अध्यापकों को १५—२० रुपये वेतन मिलता था। इनमें हिन्दी, उर्दू भाषा, गणित, आय व्यय का हिसाब रखना, पैमाइश, भूगोल, इतिहास, भूमिति आदि विषय पढ़ाये जाते थे। इस प्रकार ये मिडिल स्कूलों के समान थे। १८५३ में इनके विद्यार्थियों की संख्या ५००० थी। इनका व्यय प्रांतीय सरकार देती थी।

---

* बरेली, शाहजहांपुर, आगरा, मथुरा, मैनपुरी, अलीगढ़ फर्रुखाबाद, इटावा।

हलक़ाबन्दी स्कूल—मथुरा के कलक्टर श्री एलेक्जेन्डर ने एक नई योजना सोची। उन्होंने एक परगने को लेकर उसकी मालगुजारी तथा जनसंख्या से शिक्षा योग्य बच्चों की संख्या तथा शिक्षा पर व्यय करने की क्षमता आंक ली। इस प्रकार शिक्षालयों की संख्या निश्चित करके चार पांच गांवों के बीच एक स्कूल प्रारंभिक शिक्षा के लिये खोलवाया जिसमें जाने के लिये किसी भी विद्यार्थी को एक मील से अधिक न चलना पड़ता था। जमीदारों से इनका व्यय वसूल किया गया। बाद पाठ्यक्रम में लिखना, पढ़ना, पैमाइश, भूगोल तथा गणित रखे गये। अध्यापकों को ५—७ रुपये मासिक मिलता था।

और ज़िलों में भी यह योजना फैल गई और १८५५ ई० तक १७००० लड़के इन स्कूलों में थे। उच्च वर्ग वाले अपने बच्चों को ग्रामीण स्कूलों में ही भेजना अधिक पसन्द करते थे अस्तु ग़दर के बाद भी इन स्कूलों में १६०००० विद्यार्थियों की तुलना में ग्रामीण विद्यालयों में २६५००० विद्यार्थी थे।

पंजाब—पंजाब प्रांत १८४६ ई० में अंग्रेज़ों के हाथ आया। उसी वर्ष अमृतसर में एक अंग्रेज़ी स्कूल खोला गया। उसमें हिन्दी, अरबी, फारसी, संस्कृत तथा गुरुमुखी की भी शिक्षा दी जाती थी। बड़े-बड़े जमींदारों ने अपने बच्चों के लिये अंग्रेज़ी भाषा के लिये ट्यूटर रखे थे

शिक्षा पड़ताल होने पर यहां हिन्दी, अरबी, फारसी तथा गुरुमुखी पढ़ाने की प्रारंभिक शालायें मिलीं, जिनका संगठन भारत के अन्य भागों जैसा था केवल यहां कुछ स्त्री शिक्षा भी थी। सभी धर्मों की अध्यापिकायें भी थीं।

बम्बई—१७१८ ई० के निःशुल्क शिक्षालयों की आर्थिक दशा खराब होने पर कम्पनी ने १८०७ ई० में उनको अपने नियंत्रण में ले लिया और ३००) मासिक सहायता देना शुरू किया।

बम्बई शिक्षा समाज १८१५—१८१५ ई० में बम्बई शिक्षा

समाज (Bombay Education Society) की स्थापना मिशनरियों ने गवर्नर के सभापतित्व में की। इसका उद्देश्य गरीबों को शिक्षित करना था। इसने १८१८ ई० में तीन केन्द्रीय शिक्षालय बम्बई में खोले जिनमें देशी शिक्षालयों से कुछ भिन्नता थी। इनमें अंग्रेजी और धर्म की शिक्षा भी वर्नाक्युलर तथा गणित के साथ दी जाती थी। धर्म की शिक्षा ग़ैर ईसाइयों के लिये अनिवार्य न थी। शिक्षालय का संगठन मानीटरों के नेतृत्व में कक्षा पद्धति द्वारा था। सस्ती पुस्तकों का प्रयोग होता था। प्रत्येक कक्षा में होने वाले कार्य का रजिस्टर में उल्लेख रहता था। इनके मास्टरों की शिक्षा का भी प्रबन्ध था। इस समाज को सरकारी सहायता मिली।

देशी शिक्षा समाज १८२० (Native Education Society)—१८२० ई० में इस समाज ने देशी शिक्षा के लिये एक नयी समिति को जन्म दिया और स्वयं केवल अंग्रेज़ी शिक्षा पर ध्यान दिया। सन् १८२२ ई० से दोनों समितियां अलग-अलग हो गईं। इस समिति का नाम देशी शिक्षालय तथा पुस्तक समाज (Native School book and School Society) था। उसका उद्देश्य वर्तमान देशी स्कूलों द्वारा उपयोगी शिक्षा का प्रसार और प्रान्तीय तथा अंग्रेज़ी भाषाओं में पुस्तकें तैयार कराना था। १८२३ ई० में इस समिति ने शिक्षा संबंधी पड़ताल के बाद अपनी योजना के लिये सरकारी सहायता की प्रार्थना की। इसके मत में देशी शिक्षा को सुधारने के लिये धन, पुस्तकें, अध्यापकों की दीक्षा तथा शिक्षण विधि में सुधार आवश्यक थे। अस्तु इसने आर्थिक सहायता मांगी जिससे वह सेन्ट्रल स्कूलों में अध्यापकों को दीक्षित करके उन्हें प्रारंभिक शिक्षालयों का प्रधान पद तथा निरीक्षण सौंप सके।

पूना संस्कृत कालेज—१८१८ ई० में पेशवा का राज्य बम्बई प्रेसीडेन्सी में मिला लिया गया। शवा ५ लाख रुपया दक्षिणा में

व्यय करता था। अस्तु उन ब्राह्मणों के सहायतार्थ पूना संस्कृत कालेज की नींव पड़ी। इन ब्राह्मणों का जनता पर बड़ा प्रभाव था। अस्तु उन्हें संतुष्ट करना आवश्यक था। इस कालेज का मुख्य उद्देश्य हिन्दू साहित्य का प्रोत्साहन और इच्छुक विद्यार्थियों को यथा संभव यूरोपीय शिक्षा देना था। इसके पाठ्यक्रम में वेद, धर्मशास्त्र, व्याकरण, न्याय, ज्योतिष, अलंकार, वेदान्त तथा आयुर्वेद थे। इसी वर्ष थाना तथा पनवल में अंग्रेजी स्कूल भी खोले गये।

एलफिंस्टन और शिक्षा—गवर्नर एलफिंस्टन एक प्रमुख शिक्षा विशारद था। उसके मत में निर्धनों की शिक्षा पर सरकार को ही व्यय करना चाहिये। धार्मिक शिक्षा का वह विरोधी था क्योंकि उससे ब्राह्मण भड़क जाते। ईसाई मत के प्रसार के लिये वह शिक्षा के नैतिक प्रभावों पर ही विश्वास करता था। वह उच्च वर्ग को अधिक शिक्षा देने के साथ ही जनता को भी साधारण शिक्षा देने के पक्ष में था, क्योंकि इसके बिना उच्च शिक्षा की प्रगति संभव न थी। अंग्रेजी स्कूलों को वह आवश्यकतानुसार प्रोत्साहित करना चाहता था, क्योंकि इनमें पढ़े विद्यार्थी सरकारी पदों के अधिक योग्य होते और वे अधिक सुविधा में जनता को पाश्चात्य विज्ञान पढ़ा सकते थे। परन्तु इनको सीमित रख कर वह जनता की उच्च शिक्षा भी प्रान्तीय भाषाओं के माध्यम से चाहता था। उसकी राय में अंग्रेज़ी, देशी भाषाओं का स्थान कभी नहीं ले सकती थी। पूना संस्कृत कालेज के संस्कृत विभाग के लोकप्रिय न होने पर भी वह उसे बन्द करने के पक्ष में न था क्योंकि किसी राष्ट्र के बौद्धिक भंडार को बढ़ाने के लिये उसके साहित्य का नाश करना मूर्खता है। इसी शिक्षा पर वह यूरोपीय विज्ञान की शिक्षा जोड़ देना चाहता था, जिससे वह कालेज लोक प्रिय बन जावे। इसी उद्देश्य से पूना कालेज में मराठी विभाग

१८२३ ई० में देशी शिक्षा समाज की प्रार्थना पर एलफिंस्टन ने अपनी सरकार तथा डाइरेक्टरों के सम्मुख एक योजना पेश की जिसके निम्न लिखित आधार थे (१) देशी शिक्षालयों की संख्या तथा शिक्षण में सुधार, और उनके लिये पुस्तकें तैयार कराना। इनके प्रोत्साहन के लिये कुछ सरकारी पदों पर इनके विद्यार्थियों को रखना। (२) प्रांतीय भाषाओं के माध्यम द्वारा उच्चतर शिक्षा का प्रबन्ध। इस हेतु प्रांतीय भाषाओं में भौतिक तथा नैतिक शास्त्रों पर पुस्तकें प्रस्तुत कराना। (३) यूरोपीय साहित्य तथा विज्ञानों की शिक्षा के लिये अंग्रेज़ी स्कूल स्थापित करना, जिनके विद्यार्थियों को भी सरकारी पदों द्वारा प्रोत्साहित करना। इस सब पर होने वाले व्यय को गवर्नर ने अवश्यक तथा सरकार का कर्तव्य बताया।

गवर्नर की कौंसिल में वार्डन ने इस योजना का विरोध किया। उसने अंग्रेज़ी माध्यम द्वारा सीमित वर्ग की शिक्षा और शिक्षा छनने के सिद्धांत का प्रतिपादन किया। अस्तु डाइरेक्टरों ने भी इस योजना को पूर्णतया न माना। उन्होंने देशी शिक्षा समाज पर देशी शिक्षा का भार छोड़ दिया तथा उसे ७२००) वार्षिक सहायता देना स्वीकार किया। इसके सिवा सरकार ने पुस्तकों का व्यय भी देना स्वीकार कर लिया।

अंग्रेज़ी स्कूल १८८५—एलफिन्स्टन ने फिर भी १८२४ में बम्बई में अंग्रेज़ी स्कूल खोल ही दिया। यही स्कूल आगे चल कर एलफिन्स्टन कालेज में मिला दिया गया। १८२५ ई० में डाइरेक्टरों ने स्कूल को भी स्वीकार किया तथा प्रारंभिक वर्नाक्युलर शिक्षा को सहायता देना स्वीकार कर लिया।

अध्यापकों की दीक्षा १८८५—इस प्रकार मिलने वाली सहायता से देशी शिक्षा समाज ने अपने बम्बई के स्कूलों में २४ अध्यापक प्रति वर्ष शिक्षित करके प्रांत में स्कूल खोलना आरंभ किया। ये नये स्कूल गुजरात तथा कोनकन में कलेक्टरों के नियंत्रण में थे।

इस प्रकार बम्बई ने सर्व प्रथम अध्यापकों की दीक्षा का प्रबन्ध किया। ये अध्यापक लिखने-पढ़ने गणित भूगोल तथा नैतिक आचरण की शिक्षा देते थे।

मेडिकल तथा इंजीनियरिंग कक्षायें—१८२६ ई० में एलफिन्सटन ने बम्बई में मेडिकल तथा इंजीनियरिंग कक्षायें खोल दीं जिनमें वर्नाक्युलर माध्यम से शिक्षा दी जाती थी। १८३३ ई० में पूना का अंग्रेज़ी स्कूल खुला जहां अंग्रेज़ी भाषा के साथ इतिहास, भूगोल, ज्योतिष, और प्रायोगिक दर्शनों की शिक्षा दी जाती थी। एलफिन्सटन के अवकाश ग्रहण करने पर बम्बई में उसके नाम से शिक्षालय स्थापित करने के लिये रुपया एकत्र हुआ।

एलफिंस्टन कालेज १८३४—इस रुपये से एलफिन्सटन कालेज १८३४ में एलफिन्सटन कालेज की स्थापना हुई। उसमें केवल उच्च शिक्षा का प्रबंध था। पाठ्य-क्रम में चार विभाग थे अंग्रेज़ी, मराठी गुजराती तथा हिन्दुस्तानी। अंग्रेजी विभाग में गणित, साहित्य, दर्शन रसायन तथा वनस्पति शास्त्र थे। इससे संबंधित चार स्कूलों में वर्नाक्युलर, अंग्रेजी साहित्य, विज्ञान, भूगोल तथा इंगलैंड का इतिहास पढ़ाया जाता था।

पूना कालेज १८५१—पूना कालेज को ठीक करने के लिये १८३७ ई० में वेद हटा कर सभी जातियों के विद्यार्थियों की भर्ती आरंभ हुई। साथ ही मराठी विभाग भी खुला। १८४२ में इन विद्यार्थियों को पूना अंग्रेजी स्कूल में अंग्रेजी पढ़ाने का सुभीता हुआ फिर भी इसका प्रबंध ठीक होते न देखकर १८५१ में इन दोनों शिक्षालयों को मिलाकर पूना कालेज अथवा दक्षिण कालेज की स्थापना हुई। उसमें नार्मल कक्षा भी जोड़ दी गई। साथ में पूना में एक मराठी कालेज भी खुला।

शिक्षा बोर्ड—१८४० ई० में शिक्षा का कार्य शिक्षा समाज से

लेकर नये शिक्षा बोर्ड को सौंपा गया जो अन्य प्रांतों के समान था। इसके प्रबंध में पूना संस्कृत कालेज, एलफिन्सटन कालेज पूना, बम्बई, थाना और पनवल के अंग्रेजी स्कूल तथा ६२ प्रारंभिक स्कूल थे। १८४२ में इसने बम्बई का अंग्रेजी स्कूल एलफिन्सटन कालेज में मिला कर उसका नाम एलफिसटन इंस्टीट्यूट कर दिया। उसने प्रारंभिक शिक्षालय की १२० कर दिये। इसी वर्ष प्रांत को चार भागों में बांट कर निरीक्षण के लिये एक अंग्रेजी इंस्पेक्टर तथा एक भारतीय सहायक इंस्पेक्टर प्रत्येक भाग में रक्खा। स्कूलों के संगठन सम्बन्धी नियम भी छपवा दिये।

नार्मल कक्षा—बाद में १८४५ में इसने एलफिंस्टन इंस्टीट्यूट में नार्मल कक्षा खोली। ऐसी ही कक्षायें पूना कालेज (१८५१) तथा सूरत अंग्रेजी स्कूल (१८५१) में भी खोली गई। इन नार्मल कक्षाओं के पाठ्यक्रम में अंग्रेजी, एक प्रांतीय भाषा, इतिहास, दर्शन, भूमिति और शिक्षणकला थे। इस प्रकार बम्बई ने निरीक्षण, अध्यापकों की दीक्षा तथा शिक्षा-नियमों (भावी एजुकेशन कोड) में नयी प्रगति करके अन्य प्रांतों का नेतृत्व किया। बम्बई में देशी स्कूलों को, जो केवल लिपि तथा गणित ही मुख्यतया पढ़ाते थे सुधार कर सरकारी शिक्षालयों के समान बनाने का प्रयास हुआ। सरकारी शिक्षालयों का उद्देश्य उपयोगी शिक्षा और यूरोपीय शिक्षा तक देना था।

माध्यम का प्रश्न—शिक्षा बोर्ड की स्थापना होते ही बम्बई में भी माध्यम का प्रश्न उठा। इसके प्रमुख श्री पेरी बंगाल के समान शिक्षा छनने के सिद्धांत तथा अंग्रेज़ी माध्यम के पक्षपाती थे। उन्होंने कहा कि भारतीयों की अंग्रेज़ी शिक्षा पर रुचि है और वे सुगमता से उसे सीख लेते हैं। अनुवाद कराना कठिन और खर्चीला है। तथा अंग्रेज़ी शिक्षा से शासन में लाभ होगा क्योंकि शासन

कुशलता के लिये शासकों तथा शासितों की एक भाषा होना चाहिये और अंग्रेज़ अफसरों को भारतीय भाषायें सीखने में कठिनाई होती है, अस्तु भारतीयों के उच्च तथा प्रभावशाली और शासन से संबंधित वर्ग को अंग्रेज़ी पढ़ाना आवश्यक है।

श्री जर्विस तथा जगन्नाथ शंकर सेठ ने इसका प्रतिवाद किया। उन्होंने ठीक ही कहा कि भारतीयों का अंग्रेज़ी भाषा सीखने में कठिनता है, भारतीयों की शिक्षा उन्हीं की प्रचलित भाषाओं में अधिक सुगम है, इन भाषाओं का शब्द भंडार संस्कृत से बढ़ सकता है, भारतीय भाषाओं द्वारा शिक्षा सस्ती पड़ती है, अंग्रेज़ी भाषा द्वारा शिक्षित समुदाय अपने समाज से अलग हो जायगा, अस्तु शिक्षा छननेवाली बात भी न हो पायेगी, और जन शिक्षा का कोई दूसरा उपाय नहीं है।

बम्बई सरकार ने १८४८ ई० में प्रश्न को निश्चित रूप से तै न किया किन्तु उन्होंने दोनों ही मतों को मान लिया। अस्तु श्री पेरी ने १८५२ ई० तक अंग्रेज़ी ज़िला स्कूल ही खोले। इस प्रकार ऐसे स्कूल अहमदाबाद (१८४६) धारवाड़ (१८४८) भड़ौंच (१८४६) कोल्हापुर (१८५१ सूरत व सतारा (१८५२) राजकोट तथा धूलिया (१८५३) और शोलापुर (१८५४) में खुले। बंगाल सरकार ने शिक्षा-थैली की डोरियां कड़ी करके यही निर्देश दिया की शिक्षा बोर्ड उच्च अंग्रेज़ी शिक्षा ही पर अधिक ध्यान दे। फिर भी १८५२ में श्री पेरी के अवकाश लेने पर बोर्ड ने प्रारंभिक शिक्षा के लिये गावों को उकसाया और अध्यापक के आधे वेतन, स्थान तथा पुस्तकों का प्रबन्ध करने वाले गांवों में स्कूल स्थापित किये। इस प्रकार बम्बई ने सरकारी सहायता द्वारा स्कूल चलाने के सिद्धान्त को प्रचलित किया।

अन्य प्रगति—१८४६ ई० में मेडिकल कक्षा के स्थान पर मेडिकल कालेज बन गया तथा पूना में इंजीनियरिंग कक्षा और एक मेकैनिकल स्कूल की स्थापना हुई। इसी काल में मिशनरियों ने कुछ

प्रारम्भिक स्कूल तथा दो अंग्रेज़ी स्कूल—राबर्ट मनी हाई स्कूल—और विल्सन हाई स्कूल-स्थापित किये।

उपसंहार—इस प्रकार इन चालीस वर्षों में भारतवर्ष के विभिन्न भागों में शिक्षा के विभिन्न प्रयोग हुये। अंग्रेज़ी माध्यम और शिक्षा छनने के सिद्धांत की विजय तो पूर्ण थी, किन्तु बम्बई तथा आगरा में वर्नाक्युलर शिक्षा का भाग्य भी कुछ चमका था। किन्तु अनेक कारणों से अंग्रेज़ी के समर्थकों का बोलाबाला होना निश्चित था। इन लोगों ने आगे चलकर वर्नाक्युलर जन शिक्षा को बड़ी हानि पहुँचाई जिससे शिक्षा प्रसार बहुत संकुचित रहा। व्यावसायिक शिक्षा सरकारी आवश्यकताओं पर ही सीमित थी और उसका विकास नहीं हो पा रहा था। अरबी तथा संस्कृत की शिक्षा का फ़ातिहा पढ़ जा चुका था। किन्तु शिक्षा क्षेत्र की सीमा में अभी बड़ी कमी थी। विश्व विद्यालयों, व्यावसायिक तथा स्त्री शिक्षा, अध्यापकों की दीक्षा तथा शिक्षा प्रसार की निश्चित योजना की बड़ी आवश्यकता थी। शिक्षा नीति का न केन्द्रित होना विकास में सहायक हुआ था, किन्तु शीघ्र शिक्षा प्रसार के लिये उसका केन्द्री करण आवश्यक था। सर चार्ल्स वुड ने १८५४ में इनमें से अधिकांश दोषों का निकाकरण करने का प्रयास किया। इस समय सरकारी शिक्षालयों के विद्यार्थियों की संख्या बंगाल में १३८२२, बम्बई में १४००० मद्रास में ३३८० और पश्चिमोत्तर प्रांत (आगरा) में ८५०८ थी। किन्तु इनसे कहीं अधिक बालक मिशनरी तथा अन्य शिक्षालयों में पढ़ रहे थे। कुल शिक्षा पर ६८७२१ पौंड, प्रायः दस लाख रुपया वार्षिक व्यय होता था।

सारांश

इस काल में शिक्षा के समर्थकों के तीन गुट थे, संस्कृत तथा अरबी शिक्षा के समर्थक, वर्नाक्युलर शिक्षा के समर्थक तथा अंग्रेज़ी शिक्षा

के समर्थक। डाइरेक्टरों ने सभी के विचारों को प्रयोग करने का अवसर दिया।

मद्रास में मुनरो ने शिक्षा पड़ताल कराई तथा वर्नाक्युलर शिक्षा को प्रोत्साहित किया। इसी हेतु १८२२ ई० में लोक शिक्षा समिति बनी। १८३० ई० तक प्रत्येक ज़िले और ७० तहसीलों में स्कूल खुले। उसी समय डाइरेक्टरों ने सरकारी विभागों के लिये उच्च शिक्षा द्वारा नौकर प्रस्तुत करने की आज्ञा दी। साथ ही १८३५ ई० में बंगाल में अंग्रेज़ी माध्यम निश्चित होने से इस जनशिक्षा का विकास रुक गया। १८४१ में यूनीवर्सिटी के खोलने के उद्देश्य से एक हाई स्कूल खुला जो बाद में कालेज हो गया।

सरकार के नगण्य प्रयास की तुलना में पादरियों तथा अन्य लोगों ने मद्रास में शिक्षा को अधिक उन्नत किया। उन्होंने अंग्रेज़ी और प्रारंभिक दोनों ही दिशाओं में प्रगति की। १८५३ में यहां के ३०००० विद्यार्थियों में ३००० अंग्रेज़ी शिक्षा पा रहे थे, जो अन्य प्रांतों से अधिक थे।

बंगाल में १८२३ ई० तक प्रारंभिक शिक्षा को ही प्रोत्साहन मिला और चिनसुरा के पादरियों तथा कलकत्ता पुस्तक समाज और कलकत्ता शिक्षालय समाज को सरकारी सहायता मिली। इस वर्ष लोकशिक्षा समिति ने एक लाख के अनुदान का कार्य संभाला। उसने १८३३ ई० तक अरबी तथा संस्कृत शिक्षा को ही प्रोत्साहित किया।

बंगाल में अंग्रेज़ी शिक्षा की मांग बढ़ रही थी और कलकत्ता विद्यालय की स्थापना १८१७ ई० में हुई। इस विचार धारा को संबल १८३४ में मिला। जब मैकाले लोक शिक्षा समिति का अध्यक्ष हुआ। १८३५ ई० में बंगाल ने अंग्रेज़ी माध्यम द्वारा उच्च प्रभावशाली वर्ग की शिक्षा का सिद्धांत मान लिया और ज़िला अंग्रेज़ी स्कूल दिल्ली से कलकत्ते तक फैला दिये।

अंग्रेज़ी शिक्षा के प्रसार के मुख्य कारण ये हैं: भारतीयों की रुचि तथा योग्यता, हार्डिञ्ज द्वारा उन्हें सरकारी पदों पर नियुक्त करने की आज्ञा (१८४४) और धर्म परिवर्तन की आशा पर खुले पादरियों के निःशुल्क शिक्षालय। इस काल के अंत में बंगाल में १३००० विद्यार्थी सरकारी शिक्षालयों में थे।

१८४२ में आगरा प्रान्त पश्चिमोत्तर प्रांत के नाम से अलग हुआ। यहां कुछ ज़िला स्कूल तथा कालेज थे ही, टामसन ने यहां तहसील स्कूलों तथा हलका बन्दी स्कूलों का सफल प्रयोग किया। उसने निरीक्षण की प्रथा भी निकाली। तहसीली स्कूल मिडिल स्कूलों के समान थे।

बम्बई ने इस काल में वर्नाक्युलर माध्यम द्वारा उच्च तथा यूरोपीय विज्ञान की शिक्षा की सफलता प्रदर्शित की। मेडिकल तथा इंजीनियरिंग का माध्यम भी प्रान्तीय भाषायें ही थी। बम्बई ने एलफिस्टन कालेज की स्थापना १८३४ में की जो उच्च शिक्षा का केन्द्र बना। बम्बई में अध्यापकों की दीक्षा द्वारा जनता तक यूरोपीय विचार पहुँचाने का उपक्रम हुआ। इस काल के अन्त तक वहां भी अंग्रेजी माध्यम तथा शिक्षा छनने का सिद्धान्त मान सा लिया गया। १८५४ में वहां १४००० विद्यार्थी सरकारी शिक्षालयों में थे।

प्रश्न

१—बंगाल में अंग्रेजी माध्यम की सफलता क्यों हुई? इससे क्या फल हुये?

२—मुनरो और एलफिस्टन के विचारों की आलोचना करते हुये सिद्ध कीजिये कि यदि वह विचार धारा चलती रहती तो शिक्षा में उन्नति अधिक तथा शीघ्र होती।

३—१८१३—५३ ई० के मुख्य शिक्षा संबंधी प्रयोगों का वर्णन कीजिये। शिक्षा क्षेत्र में क्या प्रगति हुई?

अध्याय ५

१८५४ का सरकारी शिक्षा पत्र और कम्पनी का अंत

१८५३ ई० में कम्पनी का आज्ञा पत्र बदलने के समय पार्लिया-मेंट ने भारतीय मामलों पर बहुत से लोगों से परामर्श किया। इनसे शिक्षा-विकास के प्रभावों पर भी पूछा गया था। अधिकांश ने यही परामर्श दिया कि शिक्षा के विकास से अंग्रेजी राज्य की नींव दृढ़तर होगी और जब भारतीय साम्राज्य टूटेगा तो दोनों ओर सद्भावना रहेगी। इन लोगों में कुछ का मत था कि शिक्षितों का शासन अशिक्षितों के शासन से कम कठिन है। कुछ ने कहा था कि शिक्षित वर्गों को सैनिक वर्गों से रक्षा के लिये अंग्रेजी संरक्षण की आवश्य-कता होगी, अस्तु शिक्षा तथा विशेषतया अङ्गरेजी शिक्षा प्रसार से अङ्गरेजी शासन की नींव दृढ़ होगी, यदि शिक्षितवर्ग को सरकारी पदों द्वारा संतुष्ट भी रखा जावे। अस्तु आज्ञापत्र बदलने पर बोर्ड आफ़ कन्ट्रोल के सभापति सर चार्ल्स वुड ने सरकारी शिक्षा प्रयासों को संगठित करके शिक्षा बढ़ाने के उद्देश्य से अपनी योजना प्रस्तुत की जो डाइरेक्टरों ने १६ जुलाई १८५४ को गवर्नर जनरल के पास भेजी। इस सरकारी शिक्षा पत्र में १०० पैराग्राफ हैं।

उद्देश्य—इसके आरंभ में ही डाइरेक्टरों ने भारतीयों की दशा सुधारने की इच्छा प्रकट करते हुये लिखा था, बहुतेरे महत्वपूर्ण मामलों में शिक्षा के बराबर कोई विषय हमारे ध्यान का अधिकारी नहीं है। इस प्रकार शिक्षा का महत्व स्वीकृत होगया। शिक्षा का मुख्य उद्देश्य उन्होंने लोगों की भौतिक तथा आत्मिक उन्नति माना

जो उपयोगी शिक्षा के प्रसार से ही सम्भव है। दूसरा उद्देश्य सामाजिक कुरीतियों के सुधार में भारतीयों की सहानुभूति प्राप्त करना था। शासन का उद्देश्य जनता की हितसाधना मानली गई। इसके लिये आवश्यक था कि शिक्षा द्वारा जनता की नैतिक तथा मानसिक उन्नति करके उन्हें विश्वास्य पदों पर रखा जा सके, क्योंकि जनहित सरकारी पदाधिकारियों की ईमानदारी और योग्यता पर निर्भर है। भारतीयों की शिक्षा से इंगलैंड को भी आर्थिक लाभ की आशा थी क्योंकि भारतीय अपने व्यावसायिक संगठन के द्वारा देश के आर्थिक साधनों की उन्नति करेंगे जिससे भारतीयों के आर्थिक लाभ के सिवा "हमें ऐसे सामान मिलेंगे जिनकी हमारी जनता और उत्पादकों को आवश्यकता है, और हमारे मज़दूरों के बनाये सामानों की (भारत में) अनवरत मांग होगी।" इस प्रकार भारतीय शिक्षा प्रसार ब्रिटेन की आर्थिक नीति का साधन भी था।

शिक्षाका स्वरूप—"हम घोषणा करते हैं कि जिस शिक्षा को हम भारत में विकसित देखना चाहते हैं, उसका उद्देश्य उन्नत कलाओं, विज्ञानों, दर्शन, तथा यूरोपीय साहित्य का प्रसार है।........ पूर्वीय दर्शन तथा विज्ञानों में बड़ी अशुद्धियां हैं। पूर्वीय साहित्य में आधुनिक अनुसन्धानों की कमी है, अस्तु उससे हमारा उद्देश्य न सिद्ध होगा। हम विशेष विद्यालयों में संस्कृत, अरबी तथा फारसी साहित्य को पढ़ने की सुविधायें कम नहीं करना चाहते।"

"हमें कुछ भारतीयों द्वारा अंग्रेज़ी साहित्य तथा यूरोपीय विज्ञानों में उच्च ज्ञान प्राप्त करने के प्रमाण मिले हैं। किन्तु यह सफलता बहुत ही थोड़े लोगों तक सीमित है। हम इससे निम्नतर स्तर का यूरोपीय ज्ञान अधिकधिक लोगों में प्रसारित करने के इच्छुक हैं, जो भारतीयों के लिये विभिन्न क्षेत्रों में उपयोगी हो।"

माध्यम—"इसके बाद हमें माध्यम पर विचार करना है।

""""प्रांतीय भाषाओं में यूरोपीय ज्ञान की पुस्तकों की कमी के कारण उच्च ज्ञान के इच्छुक अंग्रेज़ी भाषा से आरंभ करते हैं, जो उस ज्ञान की कुंजी है। जो भारतीय उच्च कोटि की शिक्षा चाहेंगे उनके लिये अंग्रेज़ी का ज्ञान सदा अनिवार्य रहेगा।"

"प्रांतीय भाषाओं के स्थान पर अंग्रेज़ी को स्थान देना न तो हमारा उद्देश्य है और न हमारी इच्छा।........यह अत्यावश्यक है कि किसी भी लोक शिक्षा की योजना में इनका अध्ययन तत्परता से होना चाहिये, इन्हीं वर्नाक्युलर भाषाओं के द्वारा ही जन साधारण तक यूरोपीय ज्ञान पहुँच सकता है। "जन साधारण की शिक्षा योजना में अंग्रेज़ी वहां पढ़ाई जावे जहां उसकी मांग हो, किन्तु इसके साथ ही प्रांतीय भाषा और प्रांतीय भाषा के द्वारा साधारण ज्ञान भी पढ़ाया जावे। अंग्रेज़ी भाषा उन लोगों की शिक्षा का सर्वोत्तम माध्यम बनी रहे जो इसके द्वारा शिक्षा पाने भर को इसे जानते हैं, किन्तु अंग्रेज़ी कम अथवा न जानने वाले अधिकांश लोगों की शिक्षा में प्रांतीय भाषाओं का प्रयोग होना चाहिये। इस कार्य का सफल सम्पादन अंग्रेज़ी पढ़े (भारतीय) मास्टरों और प्रोफेसरों के द्वारा हो सकता है, जिनकी पहुँच अंग्रेजी के द्वारा यूरोपीय विज्ञानों तक हो, और जो अपने देशवासियों को मातृभाषा के माध्यम से वह ज्ञान पढ़ा सकें। धीरे-धीरे यूरोपीय प्रगतियों से अवगत लोगों की पुस्तकों तथा अनुवादों से वर्नाक्युलर साहित्य भर जावेगा और इस प्रकार यूरोपीय ज्ञान जन साधारण की पहुँच में आ जावेगा। अस्तु हम यूरोपीय ज्ञान के प्रसार के लिये वर्नाक्युलर तथा अंग्रेजी, भाषाओं को एक साथ माध्यम बनाने, और भारत के प्रत्येक शिक्षालय में साथ-साथ पढ़ाने के इच्छुक हैं।"

शिक्षा-विभाग तथा निरीक्षण—"अब हम शिक्षा के निरीक्षण और निर्देश के प्रबंध पर आते हैं।" "हमने अपने प्रत्येक प्रेसीडेन्सी

और लेफ्टिनेन्ट गवर्नर के प्रांतों की शासन प्रणाली में शिक्षा विभाग बनाने का संकल्प किया है," इसके लिये डाइरेक्टरों ने सरकार के प्रति एक उत्तरदायी शिक्षा अफसर और उसके सहायक इंस्पेक्टरों तथा दफ्तर के लिये भी अनुमति दी।

"भविष्य में यथेष्ट निरीक्षण का प्रबन्ध हमारी शिक्षा पद्धति का अभिन्न अंग होगा।"

विश्वविद्यालय—"भारतवर्ष में विश्व विद्यालयों की स्थापना का समय आ गया है जो नियमित तथा उदार शिक्षा को प्रोत्साहित करें। ....शिक्षा कौंसिल ने लन्दन विश्वविद्यालय को आदर्श मानने का प्रस्ताव किया था और हम उससे सहमत हैं।

"इस हेतु विश्वविद्यालयों में चांसलर, वाइस चांसलर तथा फेलो होंगे, जिनको मिला कर सेनेट बनेगा। सेनेट नियम बनायेगा जो तुम स्वीकृत करोगे, विश्वविद्यालय के आय व्यय का प्रबन्ध भी सेनेट करेगा। वही विज्ञानों और कलाओं के विभिन्न भागों में परीक्षाओं को नियत करके परीक्षाओं का आयोजन करेगा। विश्व-विद्यालय का काम अपने अंतर्गत रहने वाले कालेजों के विद्यार्थियों को परीक्षाओं के बाद डिग्रियां प्रदान करना होगा।....डिग्री परीक्षाओं में धार्मिक विषय न होंगे।....जिन विषयों के पढ़ाने का प्रबन्ध कालेजों में न होगा उनके लिये विश्वविद्यालय प्रोफेसर नियत करेंगे, यथा कानून। ....सिविल इंजीनियरिंग के प्रोफेसर भी विश्व-विद्यालयों में नियत किये जा सकते हैं और सिविल इंजीनियरिंग की डिग्रियां भी योजना में शामिल की जा सकती हैं।"

जन साधारण की शिक्षा—"इस प्रकार भारतीयों के उच्च वर्गों के समक्ष शिक्षा जनित लाभों को स्पष्ट तथा व्यवहारिक रूप से लाने का जितना भी कार्य सरकार कर सकती है वह हो चुकेगा। इसके बाद हमारा ध्यान उस विषय पर जाना चाहिये, जिस पर अभी तक

अधिकतर ध्यान नहीं दिया है गया अर्थात् जीवन के सभी अंगों के लिये उपयोगी और व्यावहारिक शिक्षा जन साधारण को कैसे दी जावे जो स्वयं अपने अकेले प्रयासों में यथार्थ शिक्षा पाने में अशक्त हैं। हमारी इच्छा है कि सरकार की अधिक सक्रिय योजनायें भविष्य में इस ओर हों, जिसके लिये हम अधिक व्यय स्वीकार करने को तैयार हैं।"

सहायक अनुदान प्रथा—(System of Grants in Aid) "भारतीयों की शिक्षा के लिये यथेष्ट साधन जुटाने में सरकार की असमर्थता तथा उन प्रयासों से मिल सकने वाली सहायता, जिसको सरकार ने अभी तक प्रोत्साहित नहीं किया है, पर विचार करने से यह निष्कर्ष निकला है कि इस दिशा में भारतीय जनता की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये (शिक्षा के साधन जुटाने के लिये) सरकारी प्रयासों के साथ शिक्षित और धनी वर्गों की उदारता तथा प्रयासों को मिला देना चाहिये। अस्तु हमने भारतवर्ष में सहायक अनुदान प्रथा (Grants-in-Aid) अपनाने का निश्चय किया है। सहायक-अनुदान प्रथा, सहायता प्राप्त शिक्षालयों में धार्मिक शिक्षा में बिलकुल हस्तक्षेप न करने के आधार पर होगी। उन सभी शिक्षालयों को सहायता मिलेगी, जो अच्छी सांसारिक शिक्षा देते हों जो यथेष्ट स्थानीय प्रबंध में चलते हों, (स्थानीय प्रबंध (Local Management) से तात्पर्य एक या अधिक व्यक्तियों से है, जो शिक्षालय की देखरेख करें और उसके स्थायित्व के लिये उत्तरदायी हों।) और जिनके मैनेजर स्कूलों के सरकारी निरीक्षण, तथा सहायक अनुदान संबंधी नियमों को स्वीकार करलें।.......हमारी इच्छा है कि सहायता उन्हीं शिक्षालयों को मिले जो विद्यार्थियों से थोड़ी फीस अवश्य लेते हों।

"अंग्रेजी माध्यम वाले उच्चतर शिक्षालयों में इस सहायक-अनुदान प्रथा को लागू करने में कठिनाई न पड़ेगी। सहायक-अनुदान

प्रथा से उन सभी वर्नाक्युलर तथा ऐंग्लो वर्नाक्युलर शिक्षालयों को भी सहायता मिलेगी जो अच्छी प्रारंभिक शिक्षा देते हों।

"जिन ज़िलों में यथेष्ट संख्या में ऐसे शिक्षालय हों, जो सरकारी सहायता से स्थानीय शिक्षा संबंधी आवश्यकताओं को पूरा कर सकते हों, वहां सरकारी स्कूलों और कालेजों की स्थापना न की जावे।.... हम उस समय की प्रतीक्षा में हैं जब पूर्णतया सरकारी लोक शिक्षा का संगठन सहायक अनुदान प्रथा के क्रमिक विकास के द्वारा समाप्त हो जावे, और सरकारी शिक्षालय बिना भय (शिक्षा कम होने का भय) बन्द किये जा सकें अथवा सरकारी सहायता पाने वाली स्थानीय संस्थाओं को हस्तांतरित किये जा सकें।"

अध्यापकों की दीक्षा—"हमारी इच्छा है कि प्रत्येक प्रेसीडेंसी में शीघ्राति शीघ्र दीक्षांत कक्षायें तथा विद्यालय स्थापित हों।"

वर्नाक्युलर साहित्य—"यूरोपीय ज्ञान की वर्नाक्युलर पुस्तकों को प्रस्तुत करना शिक्षकों की दीक्षा के समान ही महत्वपूर्ण है।"

व्यावसायिक शिक्षा—इसके बाद सरकारी पत्र ने रुड़की इंजीनियरिंग कालेज और मेडिकल कालेज जैसी व्यावसायिक शिक्षा-संस्थाओं की स्थापना का आदेश दिया। टेक्निकल शिक्षालयों को सहायक अनुदान प्रथा द्वारा सहायता का भी वचन दिया। आगे चल कर उसमें लिखा था—

स्त्री-शिक्षा—"भारतवर्ष में स्त्री-शिक्षा का महत्व अत्यधिक है। गवर्नर जनरल की घोषणा से हम पूर्णतया सहमत हैं कि भारतीय स्त्री-शिक्षा को सरकार की स्पष्ट तथा मैत्रीपूर्ण सहायता मिलना चाहिये।"

शिक्षा की दशा—बंगाल—इन सिफारिशों के बाद सरकारी पत्र में विभिन्न प्रांतों की शिक्षा की दशा का वर्णन था। बंगाल में अंग्रेज़ी माध्यम द्वारा उच्च शिक्षा अन्य प्रांतों से अधिक थी। प्रायः प्रत्येक

ज़िले में अंग्रेज़ी स्कूल और पांच कालेज थे। "किन्तु बंगाल में जन साधारण की शिक्षा के लिये, विशेषतया वर्नाक्युलर माध्यम द्वारा, बहुत कम प्रयास हुआ है। बंगाल सरकार का ध्यान देशी स्कूलों और निम्न वर्गों की शिक्षा की ओर आकर्षित होना चाहिये।"

पश्चिमोत्तर प्रांत—"पश्चिमोत्तर प्रान्तों में शिक्षा की मांग इतनी सीमित है कि वहां सरकारी उच्च शिक्षालयों का स्थान स्थानीय प्रयास (Private effort) एक लम्बे अर्से तक न ले सकेगा।" श्री टामसन की शिक्षा प्रणाली को अन्य ज़िलों में बढ़ाने के लिये डाइरेक्टरों ने अनुमति दे दी।

बम्बई—"बम्बई प्रेसीडेन्सी के ऐंग्लो वर्नाक्युलर कालेजों की शिक्षा प्रायः बंगाल के समान है। बम्बई में वर्नाक्युलर माध्यम से शिक्षा पर काफी ध्यान दिया गया है और वहां शिक्षा बोर्ड के २१६ वर्नाक्युलर स्कूल हैं जिनमें १२००० विद्यार्थी हैं। ज़िला स्कूलों के लिये तीन इंस्पेक्टर हैं, जिनमें एक (महादेव गोविन्द शास्त्री) भारतीय है। सरकारी कालेजों में अध्यापकों की दीक्षा का प्रबंध है।"

मद्रास—"मद्रास में जन साधारण की शिक्षा के लिये सरकार ने कुछ नहीं किया है। ईसाई पादरियों का शिक्षा-प्रयास तामिल जनता में भारत के अन्य भागों से अधिक सफल हुआ है। टामसन की योजना यहां भी लागू की जा सकती है।"

आलोचना—इस प्रकार इस सरकारी पत्र ने अंग्रेज़ी भारतवर्ष भर के लिये एक शिक्षा योजना की रूपरेखा प्रस्तुत की। सरकार ने शिक्षा द्वारा धार्मिक हस्तक्षेप न करने की नीति के अंतर्गत धार्मिक शिक्षा विद्यार्थियों और अध्यापकों की स्वेच्छा पर तथा स्कूलों के कार्यक्रम से अलग कर दी। धार्मिक शिक्षा कार्यक्रम का अंग होने पर सरकारी सहायता न मिल सकती थी। इस प्रकार धर्महीन शिक्षा को इसी सरकारी पत्र ने जन्म दिया जिसका प्रभाव अच्छा न हुआ।

भारतीय विद्यार्थियों की उद्दंडता, अनैतिकता और अनुशासन हीनता का यह प्रमुख कारण बना।

इस योजना में सभी विषयों का समावेश था। यदि उन सभी के आधार पर सरकारें काम करतीं तो जन शिक्षा का ह्रास न होने पाता और उच्चशिक्षा में प्रगति तो होती ही। इस योजना ने स्त्री शिक्षा अध्यापकों की दीक्षा, व्यावसायिक शिक्षा, विश्वविद्यालय आदि सभी विषयों पर महत्वपूर्ण सिफारिशें की थीं। इसने पिछले शिक्षा संगठन की कमियों को दूर करके एक सुसंगठित शिक्षा योजना बनाने की ओर भारत सरकार का ध्यान आकर्षित किया था। इसी सरकारी पत्र को आधार स्तम्भ बना कर ब्रिटिश भारतीय शिक्षा का महल खड़ा हुआ, जिसमें इधर उधर खिड़की दरवाज़े बने किन्तु आधारस्तंभ वही रहा। इससे अधिक इस सरकारी पत्र का महत्व नहीं है, उसमें राष्ट्रीय शिक्षा योजना का रूप न था यद्यपि उसकी सिफ़ारिशों पर ठीक से काम करने और सुधार करने से राष्ट्रीय शिक्षा योजना बनाई जा सकती थी। उसमें प्रथम बार जन साधारण की उदार और व्यावसायिक तथा उपयोगी शिक्षा ब्रिटिश सरकार का कर्तव्य मान लिया गया।

इस सरकारी पत्र ने शिक्षा योजनाओं में जान फूँक दी। १८५५ ई० में बंगाल, मद्रास, बम्बई, पंजाब तथा पश्चिमोत्तर प्रांत (संयुक्त प्रांत) में—लोक शिक्षा विभाग (Departments of Public Instruction) खुल गये, जिनका कार्यभार डाइरेक्टरों को सौंपा गया। उनकी सहायता के लिये इंस्पेक्टर (निरीक्षक) नियत हुये। उनके अलग दफ्तर भी खुल गये।

१८५७ ई० तक बम्बई, मद्रास और कलकत्ता विश्वविद्यालय स्थापित हो गये। इनका उद्देश्य इंजीनियरिंग, चिकित्सा, क़ानून तथा कलाओं में परीक्षायें लेना था।

सहायक अनुदान प्रथा के द्वारा उच्चतर शिक्षालयों को सहायता भी मिलने लगी, यद्यपि सरकारी ज़िला स्कूलों को स्थानीय प्रबंध में न दिया गया।

अध्यापकों की दीक्षा के लिये चार नार्मल स्कूल बंगाल में खुल गये थे, जिसमें २३८ शिक्षकों की दीक्षा का प्रबंध था। बम्बई में कोई अलग नार्मल स्कूल न खुला, वरन् पुरानी नार्मल कक्षायें ही बनी रहीं। पश्चिमोत्तर प्रांत में बनारस नार्मल स्कूल के सिवा आगरा तथा अन्य दो और नार्मल स्कूलों की स्वीकृति स्वतंत्रता युद्ध के पहिले ही मिल चुकी थी। यहां पर श्री टामसन की योजना प्रांत भर में लागू करने की अनुमति भी १८५६ में मिल गई थी। मद्रास में एक वर्नाक्युलर और ऐंग्लोवर्नाक्युलर दोनों ही प्रकार के शिक्षकों की दीक्षा का नार्मल स्कूल स्थापित हुआ।

इसके सिवा अन्य दिशाओं में कोई प्रगति न हो पाई थी कि भारतीय स्वतंत्रता का प्रथम युद्ध आरम्भ हो गया। उसके बाद १८५८ ई० में महारानी विक्टोरिया ने कम्पनी को हटा कर स्वयं शासन संभाला तो १८५९ ई० में प्रथम भारत मंत्री लार्ड स्टैनली ने शासन के सभी अङ्गों के साथ शिक्षा नीति की भी आलोचना की। उन्होंने १८५४ ई० की सिफारिशों को उचित ठहराया। उन्होंने साथ ही सरकार का ध्यान आकर्षित किया कि जनता की उपयोगी शिक्षा, स्त्री-शिक्षा, अध्यापकों की दीक्षा आदि पर भारतीय सरकारों ने यथेष्ट ध्यान नहीं दिया था। उन्होंने कृषि, हस्तकला (Art) इंजीनियरिंग, चिकित्सा, क़ानून आदि की शिक्षा को प्रोत्साहन देने के लिये लिखा। उन्होंने शिक्षा विभागों पर अधिक व्यय को घटाने के लिये भी आदेश दिया। इस प्रकार लार्ड स्टैनली ने भी १८५४ ई० की नीति को सरकारी नीति स्वीकार कर लिया।

सारांश

१८५४ के सरकारी पत्र ने समूचे ब्रिटिश भारत के लिये एक शिक्षा नीति अपना कर शिक्षा बढ़ाने की योजना प्रस्तुत की। उसमें पिछले नीति संबंधी विवादों को समाप्त करके शिक्षा को सरकारी कर्त्तव्य तथा उपयोगी कर्त्तव्य मान लिया गया।

उस सरकारी पत्र का सारांश लार्ड स्टैनली ने इस प्रकार लिखा था, "१८५४ के सरकारी पत्र का उद्देश्य अंग्रेज़ी और वर्नाक्युलर दोनों ही प्रकार की शिक्षा का सुधार और अधिक विकास था। इसकी प्राप्ति के लिये इन साधनों की सिफारिश थी :—शिक्षा सम्बन्धी शासन कार्यों के लिये अलग विभाग का सङ्गठन प्रेसीडेन्सी नगरों में विश्व-विद्यालयों की स्थापना, दीक्षांत विद्यालयों की स्थापना, वर्तमान सरकारी उच्चतर स्कूलों और कालेजों को बनाये रखना, और ज़िला तथा मिडिल स्कूलों की आवश्यकतानुसार स्थापना, वर्नाक्युलर तथा प्रारंभिक शिक्षा पर अधिक ध्यान, और सहायक "अनुदान प्रथा लागू करना।"

प्रथम स्वतंत्रता-युद्ध के पश्चात् भारत मंत्री लार्ड स्टैनली ने इन सिफ़ारिशों को उचित ठहराया और भारतीय ब्रिटिश सरकारों को आदेश दिया कि उन सभी पर उचित ध्यान दें।

प्रश्न

१. १८५४ के सरकारी शिक्षा पत्र के कारणों और महत्व का वर्णन कीजिये।

२. १८५४ के सरकारी पत्र की मुख्य-मुख्य सिफ़ारिशों का वर्णन करिये और दर्शाइये कि राष्ट्रीय शिक्षा योजना होने के लिये उनमें क्या कमी थी।

३. "यदि १८५४ की सभी सिफ़ारियों पर उचित ध्यान दिया जाता तो भारतीय शिक्षा इतनी पिछड़ी हुई न रहती" आलोचना कीजिये।

अध्याय ६

सरकारी पत्र के अनुसार प्रगति

(अ) १८५४ से १८८२ तक

१८५४ के सरकारी पत्र में आदेश था कि भारत सरकार शिक्षा प्रसार के कार्य में सहायक अनुदान प्रथा को अपनावे, और सरकारी स्कूल तथा कालेजों की संख्या कम करे। केवल प्रारंभिक शिक्षा के संबंध में श्री टामसन की सरकारी स्कूलों की योजना को भी उस पत्र में उचित माना था। अस्तु आशा यह थी कि सरकारी स्कूलों और कालेजों की संख्या घटेगी, अथवा जितनी हैं उतनी ही रहेगी। फिर भी १८८२ तक इनकी संख्या बढ़ गई थी। १८५५ में २८ उच्च शिक्षा के शिक्षालय सरकारी थे, किन्तु १८८२ में इनकी संख्या १३४ थी। मिडिल स्कूल भी १६६ से बढ़ कर १३६३ हो गये थे। सरकारी नार्मल स्कूलों में और प्रारंभिक शिक्षालयों का बढ़ना तो ठीक था ही। इसका मुख्य कारण १८५७ का स्वतंत्रता युद्ध था। उस समय ग़ैर सरकारी शिक्षालय, यदि देशी शिक्षालयों को छोड़ दिया जावे, पादरियों के ही हाथ में थे। इनका धार्मिक जोश अशांति का कारण बन चुका था। अस्तु ब्रिटिश सरकार इन्हें प्रोत्साहन देना नीति विरुद्ध समझने लगी। भारतीय अभी शिक्षा क्षेत्र में आये न थे। इसके सिवा सरकारी शिक्षा विभागों के मत में स्थानीय प्रबंध वाले शिक्षालयों की प्रवणता सरकारी स्कूलों से कम थी। किन्तु धीरे-धीरे भारतीय भी शिक्षा क्षेत्र में आये और शिक्षा के सभी भागों में प्रगति हुई। प्रारंभिक शिक्षा में तुलनात्मक दृष्टि से कम वृद्धि हुई।

विश्वविद्यालय तथा उच्च शिक्षा—१८५७ ई० के पहिले भारतीयों ने उच्चतर शिक्षालयों में केवल कलकत्ता विद्यालय ही स्थापित किया था किन्तु वह भी १८५५ से सरकारी प्रबन्ध में चला गया था। अस्तु ग़ैर सरकारी कालेज पादरियों के ही थे जिनमें सात बंगाल तथा दो मद्रास में थे। ये कालेज साधारण उदार शिक्षा के लिये थे। सरकारी कालेजों में तीन मेडिकल कालेज प्रेसीडेन्सियों में, रुड़की इंजीनियरिंग कालेज पश्चिमोत्तर प्रांत में, और चौदह साधारण विज्ञानों और कलाओं के लिये थे। इनमें कुछ प्राच्य शिक्षा के लिये थे, किन्तु अधिकांश अंग्रेज़ी शिक्षा के लिये थे। इनमें से सात बंगाल में दो बम्बई में एक मद्रास में तथा चार पश्चिमोत्तर प्रांत में थे। इस प्रकार बंगाल में उच्च शिक्षा बहुत बढ़ी थी। अस्तु वहां का विश्व-विद्यालय १८५७ से ही परीक्षायें लेने लगा पर और विश्व विद्यालयों को कुछ समय लगा।

स्वरूप—तीनों विश्वविद्यालय एक ही ढंग के थे और लन्दन विश्वविद्यालय के आधार पर केवल परीक्षक विश्वविद्यालय थे। इनमें १८५४ के सरकारी पत्र के आदेश के विपरीत व्यावसायिक शिक्षा, प्रांतीय तथा प्राच्य भाषाओं की शिक्षा का भी प्रबंध न किया गया था। इनका काम तो केवल कालेजों को स्वीकृति देना तथा उनके विद्यार्थियों से फ़ीस लेकर परीक्षायें लेना था। परीक्षाओं के आधार पर डिग्रियां और प्रमाण पत्र दिये जाते थे। प्रारंभ में ये चार विद्या-विभागों (Faculty) में डिग्रियां देते थे, कला, विज्ञान, चिकित्सा और क़ानून। इंजीनियरिंग विभाग भी बाद में जोड़ दिया गया था। विश्वविद्यालय प्रवेशिका परीक्षा (Matriculation) में सफल होने वाले विद्यार्थियों को ही कालेजों में पढ़ने की अनुमति देते थे। यही प्रवेशिका परीक्षा निम्नकोटि के सरकारी पदों के लिये भी उपयुक्त मान ली गई। इसके बाद दो वर्ष में एफ० ए० की परीक्षा होती थी।

उसमें उत्तीर्ण विद्यार्थी दो वर्ष बाद बी० ए० परीक्षा में बैठते थे। उसमें उत्तीर्ण विद्यार्थी एम० ए० की परीक्षा देते थे। इसी प्रकार अन्य विभागों में भी परीक्षायें थीं। इन परीक्षाओं में बैठने के लिये विश्वविद्यालय द्वारा स्वीकृत कालेज का विद्यार्थी होना अधिकतर अनिवार्य था।

संगठन—विश्वविद्यलयों को जन्म देने वाले कानूनों में उनके संगठन की भी रूपरेखा थी। उसके दो मुख्य पदाधिकारी थे: कुलपति (Chancellor) जो प्रेसीडेन्सी का गवर्नर अथवा गवर्नर जनरल होता था। और उपकुलपति (Vice Chancellor)। यथार्थ कार्यकारी अफ़सर उपकुलपति होता था। विश्वविद्यालय को स्वतंत्र संस्था बनाने के लिये एक सेनेट का विधान था। उसमें कुलपति तथा उपकुलपति के सिवा फेलो होते थे, जिनकी निम्नतम संख्या ही निर्धारित थी। इनमें कुछ तो अपने पदों के कारण फेलो होते थे, यथा प्रेसीडेन्सी सरकार की कौंसिल के सदस्य, चीफ जस्टिस, शिक्षाविभाग का डाइरेक्टर, राजधानी का शिक्षा इंस्पेक्टर, और सरकारी कालेजों के प्रिंसिपल। शेष सरकार द्वारा मनोनीत होते थे जो आजीवन फेलो रहते थे, यदि वे देश छोड़ कर चले न जावें, अथवा सरकार उन्हें हटा न दे। इनकी संख्या कम थी। अस्तु प्रारंभिक अवस्था में विश्वविद्यालयों का प्रबन्ध मुख्यतया ब्रिटिश लोगों के हाथ में था।

सेनेट का कार्य परीक्षाओं का प्रबंध, विश्वविद्यालय की संपत्ति तथा आय व्यय की देख रेख और उपनियम बनाना था। उपनियमों को सरकार स्वीकार अथवा अस्वीकार करती थी।

इन्हीं उपनियमों के द्वारा सेनेटों ने उपकुलपति तथा कुछ फेलो मिला कर एक कार्यकारिणी समिति बना दी थी जो साधारणतया विश्वविद्यालय की देख रेखा करती थी। परीक्षाओं के लिये सेनेट विभिन्न विभागों (Faculty) के सदस्य नियत कर देता था और वे

अपने विभाग के परीक्षक नियत करते थे। उपरोक्त कार्यकारिणी समिति का नाम सिंडीकेट था।

आलोचना—इन नवीन विश्वविद्यालयों में कई दोष थे, एक तो उनमें पढ़ाने का कोई भी प्रबन्ध न था यद्यपि इस देश में तथा अन्य देशों में भी विश्वविद्यालय शिक्षा के केन्द्र ही हुआ करते थे। सैडलर कमीशन (१६१६) ने भी यही मत प्रकट करते हुये लिखा था—"विश्वविद्यालय को एक शिक्षा-संस्थान होना चाहिये जहां विद्वानों के समाज (कारपोरेशन) व्यक्तियों की शिक्षा और ज्ञान की उन्नति तथा प्रसार में लगे हों।" यदि इस दृष्टि से देखें तो ये विश्वविद्यालय एक दम व्यर्थ थे, क्योंकि उनके खुलने से इन दोनों दिशाओं में कोई लाभ न हुआ। दूसरे, उच्च व्यावसायिक शिक्षा में विशेषतया और सम्पूर्ण उच्च शिक्षा में सामान्यतया सरकार का दायित्व बहुत हलका हो गया क्योंकि ये विश्वविद्यालय स्वतत्र संस्थायें बना दिये गये थे, और उच्च शिक्षा उन्हीं का विशेष दायित्व था। तीसरा दोष यह था कि कालेजों की पढ़ाई के निरीक्षण का भार विश्वविद्यालयों पर न होकर, जैसा होना चाहिये था, सरकारी इंस्पेक्टरों पर था, एवं उन्हीं की रिपोर्टों के आधार पर कालेजों को स्वीकृति (affiliation) और सरकारी सहायता मिलती थी। इन कालेजों पर विश्वविद्यालयों का कोई सीधा नियंत्रण न था। विश्वविद्यालय तो केवल परीक्षायें ही लेता था, अतः अधिक से अधिक वह उनके पाठ्यक्रम को ही प्रभावित कर सकता था। फलतः इन कालेजों के संगठन और शिक्षण में कुछ ऐसी शिथिलता आ गई कि वे व्यक्तियों को शिक्षित करने के स्थान पर केवल परीक्षायें पास कराने वाले केंन्द्र बन गये। चौथे, सेनेट में यूरपीयों का बहुमत भी भारतीय शिक्षा-प्रसार के लिये बहुत अनुकूल न था। पाँचवें, कालेज के अध्यापकों को सेनेट में कोई प्रतिनिधित्व नहीं मिला था यद्यपि शिक्षा

विशेषज्ञ होने के कारण सेनेट में उनका होना निहायत ज़रूरी था।

उच्च शिक्षा में वृद्धि १८५४-१८८२—फिर भी, विश्वविद्यालयों की स्थापना के बाद उच्च शिक्षा बढ़ती रही। कलकत्ता विश्वविद्यालय में ही प्रवेशिका के परीक्षार्थियों की संख्या कई गुनी हो गई थी। १८५७ ई० में कुल १६२ छात्र 'प्रवेशिका' में उत्तीर्ण हुये थे। १८८२ में सफल परीक्षार्थियों की संख्या बढ़ कर प्रायः तीन हज़ार हो गई थी। अन्य परीक्षाओं और विश्वविद्यालयों का भी यही हाल था। १८८२ तक कालेजों की संख्या भी ७२ हो गई थी जिनमें ३४ गैर सरकारी थे। गैर सरकारी कालेजों में से पाँच भारतीयों के हाथ में भी थे। इनमें दो हमारे प्रान्त में थे, एक कैनिंग कालेज लखनऊ (१८६४) और दूसरा ऐंग्लो-ओरियंटल कालेज अलीगढ़, शेष तीनों मद्रास प्रान्त में थे। ग्यारह प्राच्य शिक्षा के कालेज थे जिनमें सबसे महत्वपूर्ण लाहौर का कालेज (१८७०) था। पंजाब विश्वविद्यालय के अधीन यह कालेज हिन्दी तथा उर्दू माध्यम द्वारा प्राच्य विषयों तथा पाश्चात्य विज्ञानों के पढ़ाने में अग्रणी हुआ। इसी से प्रोत्साहित होकर कैनिंग कालेज लखनऊ में भी अंग्रेज़ी के साथ ही प्राच्य विभाग खुला। कैनिंग कालेज के दोनों विभाग क्रमशः पंजाब तथा कलकत्ता विश्वविद्यालयों से संबंधित थे। अलीगढ़ का ऐंग्लो-ओरियंटल कालेज (१८७५) भी महत्वपूर्ण है, क्योंकि उसकी नींव इस्लामी और पाश्चात्य शिक्षा के लिये पड़ी थी। अजमेर तथा कई रियासतों में भी कालेजों की स्थापना हुई।

इस काल में व्यावसायिक शिक्षा के लिये एक इंजीनियरिंग कालेज कलकत्ते में खुला। इस ओर भी प्रगति होना चाहिये थी जो नहीं हो रही थी। कलाओं की शिक्षा देने वाले कालेज ही बराबर बढ़ते जा रहे थे।

१८८२ के कमीशन की सिफारिशें—१८८२ ई० के भारतीय

शिक्षा कमीशन ने कालेज-शिक्षा पर भी कुछ सिफारिशें की थीं, यद्यपि विश्वविद्यालय उसके अधिकार क्षेत्र के बाहर थे। उसकी रिपोर्ट से हमें उच्चशिक्षा की उस समय की दशा और आवश्यकताओं का पता चलता है।

इस कमीशन ने सिंध, गुजरात, दिल्ली, बिहार और मध्यप्रदेश में नये कालेज स्थापित करने के लिये सिफारिश की।

दूसरे, उसने परीक्षाफलों के आधार पर मिलने वाले सहायक अनुदान को कालेजों के लिये अनुचित ठहराया। उसका मत था कि कालेजों को उनके व्यय, अध्यापकों की संख्या, एवं योग्यता और स्थानीय आवश्यकता के अनुसार ही सहायता मिलना चाहिये। इसके अनुसार पिछड़े हुए क्षेत्रों के कालेज अथवा वे कालेज जिनमें कई विषयों की पढ़ाई का प्रबंध किया जाता था, अधिक सहायता के अधिकारी थे। इस सिफारिश का एक उद्देश्य यह भी था कि बड़ी-बड़ी कक्षाओं को तोड़कर छोटी कक्षाओं को प्रोत्साहित किया जाय जिससे अध्यापकों का व्यक्तिगत प्रभाव विद्यार्थियों पर पड़े और उनका ज्ञान ठोस हो। शिक्षा को सुधारने के लिये ही कमीशन ने इमारत, सामान, पुस्तकालय तथा शिक्षा संबंधी उपकरणों में सुधार तथा वृद्धि के लिये भी सहायता देने की राय दी थी।

इसके साथ ही कमीशन का यह भी विचार था कि सरकारी और गैर सरकारी सभी कालेजों को अधिकाधिक विभाग खोलने के लिये प्रोत्साहित किया जावे, जिससे सांस्कृतिक और साहित्यिक सभ्यता के साथ ही छात्रों में व्यावहारिकता भी बढ़े। अध्यापकों की योग्यता तथा संख्या बढ़ाने के लिये उनके वेतन तथा पेंशन संबंधी नियमों में उदारता दिखाने और भारतीयों को अध्यापकों के पदों पर रखने की भी सिफारिश कमीशन ने की। ये सब बातें उचित थीं।

भारतीयों की विदेशों में शिक्षा के लिये विशेषतया टेक्निकल शिक्षा

के हेतु कमीशन ने सरकारी छात्र वृत्तियों की सिफारिश की। कमीशन ने यह भी सिफारिस की कि भारतवर्ष में शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों को मिलने वाली छात्रवृत्तियों की संख्या भी बढ़ा दी जाय और सरकारी तथा ग़ैर सरकारी सब कालेजों में शक्ति देने का प्रबन्ध किया जाय।

कालेजों के आंतरिक संगठन के बारे में कमीशन की राय थी कि उनमें निःशुल्क विद्यार्थियों का अनुपात शिक्षा-विभाग और मैनेजर मिलकर निश्चित कर दें। फ़ीस के सम्बन्ध में कमीशन का मत था कि अच्छा तो यही होगा कि सभी कालेज सरकारी दरों के अनुसार फ़ीस लें परन्तु सहायता-प्राप्त कालेजों को इसके लिये बाध्य नहीं करना चाहिये। उपस्थिति ठीक करने के लिये कमीशन ने सिफारिश की कि वर्ष के बीच में कालेज छोड़ने वाले विद्यार्थियों से भी वर्ष के अंत तक की फ़ीस ली जावे। इन सिफारिशों का प्रभाव शिक्षा-विकास के अनुकूल न था।

विद्यार्थियों की नैतिक शिक्षा के लिये कमीशन ने दो सिफ़ारिशें कीं। (१) धर्म के आधारभूत सिद्धान्तों पर एक पाठ्य पुस्तक सभी कालेजों में पढ़ाई जावे, (२) प्रिंसिपलों अथवा प्रोफेसरों के द्वारा मानव एवं नागरिक कर्तव्यों पर भाषण दिलाये जाँय। ये सिफारिशें ठीक नहीं थीं, श्री तैलंग ने उसी समय इनकी अनुपयुक्तता को स्पष्ट कर दिया था। उनका कथन था कि धर्म के आधारभूत सिद्धान्तों पर पुस्तक तैयार करना संभव नहीं है, अतएव 'धर्मों की' भिन्न भिन्न धर्म की शिक्षा ही धार्मिक शिक्षा के रूप में दी जा सकती है, परन्तु इस देश के असंख्य मतमतान्तरों के कारण यह संभव नहीं है। मानव कर्तव्यों की शिक्षा देने के नियम में भी उनका मत ठीक ही था कि सोच समझ सकने वाले लोगों को कर्त्तव्य शिक्षा सिद्धान्त बता कर नहीं दी जा सकती। वरन् उन्हें तो व्यावहारिक रूप से उन नियमों पर चलाना

आवश्यक है। इसके लिये भाषण नहीं प्रत्युत शिक्षालय और शिक्षकों का प्रभाव ही उचित मार्ग है। नागरिक के कर्तव्यों पर भाषण देने में यह भय भी है कि या तो लोग उन्हें सरकारी प्रचार कहेंगे और या विद्रोह भड़काना। अतः इस प्रकार शिक्षालयों को राजनैतिक मंच बना देना भी ठीक न होगा। सरकार ने भी इनके अतिरिक्त अन्य सभी सिफारिशें मान लीं।

माध्यमिक शिक्षा (१८५४-८२)—१८५४ के सरकारी पत्र ने उपयोगी और वैज्ञानिक शिक्षा को अधिकाधिक लोगों तक पहुँचाने की इच्छा प्रगट की थी। अतः माध्यमिक शिक्षालयों का खुलना ठीक ही था। १८५७ के विद्रोह के बाद सरकारी स्कूलों की स्थापना को ही उचित ठहराया गया, सहायक अनुदान प्रथा से केवल मिशनरियों के स्कूलों को ही सहायता मिल सकती थी, क्योंकि भारतीय अभी तक शिक्षा-संगठन में उतरे ही न थे और पादरियों की धार्मिक शिक्षा विद्रोह का कारण बन चुकी थी। अतएव १८५४ से १८७० तक सरकारी मिडिल और हाई स्कूल ही खुले। पश्चिमोत्तर प्रांत के तहसीली स्कूल भी इसी के अंतर्गत थे। प्रत्येक ज़िले में एक ज़िला हाई स्कूल खोलने का प्रयास किया गया। साथ ही पादरियों ने भी अपना कार्य जारी रखा और कुछ भारतीय भी इधर झुके। १८७० के विकेन्द्रीकरण के समय प्रारंभिक शिक्षा पर प्रांतीय सरकारों का अधिक ध्यान देने के लिये कहा गया। उनका ध्यान कुछ उधर आकृष्ट तो हुआ किन्तु फिर भी सहायक अनुदान प्रथा के कारण माध्यमिक शिक्षालयों की वृद्धि होती ही रही। १८५४ ई० में सरकारी माध्यमिक शिक्षालय १६६ थे जिनमें अठारह हज़ार से कुछ ही अधिक विद्यार्थी शिक्षा पा रहे थे। १८८२ में इनकी संख्या १३६३ हो गई और प्रायः पैंतालिस हज़ार विद्यार्थी उनमें शिक्षा पाते थे। इसके अतिरिक्त भारतीयों के प्रबंध में १३४१ एवं पादरियों के प्रबन्ध में ७५० माध्यमिक शिक्षालय थे।

इनमें सरकारी स्कूलों से कहीं अधिक विद्यार्थी शिक्षा पा रहे थे। बंगाल और मद्रास में भारतीय प्रबंध के माध्यमिक शिक्षालयों की ही संख्या अधिक थी। परन्तु अन्य प्रांतों में अभी तक सरकारी और पादरियों के स्कूल ही अधिक थे।

दोष—इस काल की माध्यमिक शिक्षा में कई दोष थे। पहली खटकने वाली बात तो यह थी कि अध्यापकों की दीक्षा का समुचित प्रबंध नहीं था। हिन्दुस्तानी मिडिल स्कूलों के अध्यापकों की शिक्षा तो नार्मल स्कूलों में हो जाती थी। १८८२ तक इन नार्मल स्कूलों और कक्षाओं की संख्या ८३ हो गई थी। कुछ ऐंग्लो-हिन्दुस्तानी शिक्षक भी वहीं दीक्षित होते थे। किन्तु उनके लिये अलग से दो ही विद्यालय थे, एक मद्रास में और दूसरा लाहौर में।

दूसरी शोचनीय बात यह थी कि सरकारी पत्र की शिफारिश प्रान्तीय भाषाओं के पक्ष में होने पर भी अंग्रेज़ी उन्हें माध्यम पद से हटा रही थी। १८५८ में कलकत्ता विश्व विद्यालय ने अपनी परीक्षाओं में इतिहास, भूगोल तथा गणित के लिये हिन्दुस्तानी माध्यम की अनुमति दी थी किन्तु १८६२ तक अधिकांश विषयों की परीक्षा अंग्रेज़ी में होने लगी। हाई स्कूल में तो अंग्रेज़ी माध्यम हो ही गया। इसका प्रभाव मिडिल स्कूलों पर भी पड़ा। अधिकाधिक हिन्दुस्तानी मिडिल स्कूल ऐंग्लो हिन्दुस्तानी होने लगे, अन्यथा उन्हें काफ़ी तादाद में विद्यार्थी ही न मिलते थे। इन ऐंग्लो हिन्दुस्तानी स्कूलों में प्रायमरी कक्षाओं से ही अंग्रेज़ी पढ़ायी जाती थी। तीन चार वर्ष बाद, मिडिल कक्षाओं से, सभी विषय अंग्रेज़ी में पढ़ाये जाने लगते थे जिससे विद्यार्थियों को हाई स्कूल परीक्षाओं में सफलता मिले। इसका प्रभाव प्रांतीय भाषाओं के अध्ययन और साहित्य पर बड़ा बुरा पड़ा।

विश्वविद्यालयों का एक और बुरा प्रभाव यह पड़ा कि अधिकांश स्कूल प्रवेशिका परीक्षा की ही तैयारी कराने में जुट गये जिससे बालक

कालेजों में दाखिल हो सकें अथवा सरकारी दफ्तरों में उच्च एवं सम्मानित बाबू पद को अधिकृत कर सकें। व्यावसायिक और उपयोगी शिक्षा, जो जीवन के सभी क्षेत्रों के उपयुक्त हो, न दी जा सकी। केवल बम्बई में कुछ कृषि कक्षायें थीं। इसके दो कारण और भी थे: (१) सरकार ने अपने स्कूलों में व्यावसायिक शिक्षा का प्रबन्ध नहीं किया था और वे सरकारी स्कूल ही आदर्श स्कूल माने जाते थे; (२) सहायक अनुदान प्रथा के अनुसार चलने वाले स्कूलों की सहायता का आधार सफल विद्यार्थियों की संख्या थी। उनके व्यय अथवा आवश्यकताओं के अनुसार सरकारी सहायता न मिलती थी। फलतः वे अधिकतर सस्ती और आकर्षक उदार साहित्यिक शिक्षा का ही प्रबन्ध करते थे।

इस काल में पादरियों को धार्मिक शिक्षा देने में कठिनता पड़ने लगी। यदि वे सरकारी सहायता लेते थे तो सरकारी निरीक्षक उनकी पाठ्य पुस्तकों, कार्यक्रम आदि में हस्तक्षेप करके धार्मिक शिक्षा देने में बाधा डालते थे। और यदि वे सरकारी सहायता न लेते थे तो उन्हें सरकारी स्कूलों की प्रतियोगिता का सामना करना पड़ता था जिसमें वे टिक न पाते थे। अस्तु उन्होंने ईश्वर हीन सरकारी शिक्षालयों और ईसा विरुद्ध सरकारी नीति की तीव्र आलोचना आरंभ कर दी। इसी के परिणाम स्वरूप १८८२ में एक कमीशन यह देखने के लिये नियत हुआ कि १८५४ की सिफारिशें कहां तक कार्यान्वित हुई हैं?

प्रारंभिक शिक्षा (१८५४-१८८२)—१८५४ के बाद प्रारंभिक शिक्षा में शीघ्र ही उन्नति नहीं हुई। डाइरेक्टरों ने सहायक अनुदान प्रथा तथा श्री टामसन की योजना को—आदर्श तहसीली स्कूल और निरक्षण तथा सहायता द्वारा देशी स्कूलों के सुधार को प्रारंभिक शिक्षा के विकास का आधार स्वीकार किया था।

पश्चिमोत्तर प्रान्त (संयुक्त प्रान्त)—व्यय के लिये टामसन ने मालगुजारी नियत करने के पहिले १% शिक्षा कर सुरक्षित रखने

की योजना बनाई थी। यह शिक्षाकर पहिले लोगों की स्वेच्छा पर था। इस कर का आधा भाग सरकारी आय से ही दिया जाता था क्योंकि मालगुज़ारी नियत करने से पहिले ही उसे निकाल लिया जाता था और उस समय आमदनी का ५०% मालगुज़ारी के रूप में सरकार को यों भी दे देना पड़ता था। किन्तु शीघ्र ही टामसन के सम्मुख दो कठिनाइयां आईं। एक तो ग्राम्य देशी स्कूल निरीक्षण नहीं पसंद करते थे, दूसरे, शिक्षा कर लोगों की इच्छा पर छोड़ना संभव न था। अस्तु सरकारी हलका बन्दी स्कूलों की योजना १८५६ तक स्वीकृत हो गई और १८६६ तक शिक्षा कर मालगुज़ारी का भाग बन गया। १८६१ में भारत सरकार ने तै किया कि स्थानीय सुरक्षा (पुलिस), सड़कों और शिक्षा के लिये जमींदारों को ही धन जुटाना चाहिये फलतः मालगुज़ारी ५५% कर दी गई। यह बढ़ा हुआ ५% इन स्थानीय व्ययों के लिये था।

पश्चिमोत्तर प्रांत में निरीक्षण द्वारा सुधार करने की सरकारी नीति असफल रही अतः सरकार ने अपने स्कूलों द्वारा ही प्रारंभिक शिक्षा देने का निश्चय किया। देशी स्कूलों की इतनी अपेक्षा की गई कि उन्हें सुधारना और सहायता देना तो दूर सन् १८७८ ई० से उन्हें सरकारी आंकड़ों में भी शामिल नहीं किया गया। अस्तु १८८२ ई० में पश्चिमोत्तर प्रांत में चार नार्मल स्कूल, ५३२६ हलका बन्दी स्कूल और ४५५ तहसीली स्कूल सरकारी थे। सहायता पाने वाले सात तहसीली और ५६ प्रारंभिक स्कूल थे। स्वतंत्र देशी शिक्षालय कम हो गये थे पर उनकी संख्या १८८२ में भी ६१७२ थी।

इस प्रान्त में शिक्षा कर के संबंध में एक बात और महत्वपूर्ण है। इसका सूत्रपात लोगों की स्वेच्छा द्वारा हुआ था अस्तु अलीगढ़ के ज़मीदारों ने १८६५ ई० में यह मांग की कि प्रत्येक ज़िले के स्थानीय करों को उसी ज़िले में लगाया जाय और उनका प्रबन्ध ज़मींदारों के हाथ में दे दिया जाय। सरकार ने इस अधिकार को मानना ठीक

नहीं समझा। उँगली पकड़ कर पहुँचा जा पकड़ने की मसल तो लोक प्रसिद्ध ही है। सरकार को भय हुआ कि सिद्धान्त रूप से लोगों के इस अधिकार को स्वीकार कर लेने का परिणाम यह भी हो सकता है कि कर दाता शासन के अन्य क्षेत्रों में भी अधिकार मांगने लगें। अतः इस प्रकार की सम्पूर्ण जनता के लाभ के ही लिये उपयोग करने का निश्चय सरकार ने किया। फिर भी १८६६ में प्रत्येक ज़िले में कलक्टर के सभापतित्व में शिक्षा समितियाँ बनीं जो सरकारी स्कूलों का प्रबंध तथा अन्य स्कूलों के निरीक्षण की देख-रेख करती थीं। जमींदारों ने इन थोथी अधिकार हीन समितियों का बहिष्कार ही किया।

१८७१ ई० में विकेन्द्रीकरण के पश्चात् प्रान्तों को कुछ रुपया व्यय करने के लिये मिलने लगा। इस प्रकार स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति के साधन जुटाने में सरगर्मी आ गई। प्रत्येक ज़िले में ज़िला समितियां बनीं जो स्थानीय व्यय की देख रेख करती थीं। व्यय प्रांतीय सरकार स्थिर करती थी, और वही यह भी तै कर देती थी कि किस मद पर कितना व्यय होगा। ज़िला-समिति प्रत्येक कार्य के लिये एक-एक समिति बनाने लगी। अतः एक शिक्षा समिति भी बनी। शिक्षा समिति के सदस्य नामज़द सदस्य जमींदार होते थे। यह समिति सरकारी अध्यापकों की नियुक्ति, दंड तथा निकालने आदि के लिये उत्तरदायी थी। स्कूली इमारतों की देख रेख तथा बजट बनाना भी उसी का कार्य था। पर व्यय पहिले ही से निर्धारित होने के कारण समिति का कार्यक्षेत्र बहुत संकुचित हो गया था। अस्तु, जमींदारों ने इसका भी बहिष्कार किया।

सहायक अनुदान प्रथा और प्रारंभिक शिक्षा—टामसन की योजना का जब अपने ही प्रांत में यह हाल हुआ तो अन्य प्रांतों में उसके अपनाये जाने की कोई आशा न थी। सहायक अनुदान प्रथा

के भी सफल होने में सन्देह था। एक तो सरकारी विभाग देशी शिक्षालयों के सुधार में बहुत कम विश्वास करते थे। दूसरे सहायता देने की शर्तों के अनुसार स्कूल में मासिक फ़ीस लेना तथा फ़ीस के अतिरिक्त स्कूल के व्यय का कुछ और भाग भी देना लोगों के लिये लाजिमी था। लोग "गुरु" को सहायता तो दिया करते थे किन्तु मासिक फ़ीस एक नई बात थी। बाकी व्यय का वहन तो वह निर्धनता और सरकारी शिक्षा से उदासीनता के कारण करना ही न चाहते थे। फलतः सरकारी अफ़सरों को मालूम पड़ने लगा कि सहायक अनुदान प्रथा को प्रारंभिक शिक्षा के लिये उपयोग करना भीख मांगना है। लोग यदि एक बार वादा कर देते थे तो भी अगले वर्षों में चंदा देते नहीं थे। इन्हीं सब कारणों से भारत मंत्री लार्ड स्टैनली ने १८५६ में तै कर दिया कि सहायक अनुदान प्रथा द्वारा प्रारंभिक शिक्षा कठिन है अतः प्रान्तीय भाषाओं की शिक्षा का प्रबन्ध सरकार द्वारा होना चाहिये।

बंगाल वृत्तप्रथा १८५६ (Circle System) व नार्मल स्कूल प्रथा १८६२—इसका फल यह हुआ कि अधिकांश शिक्षा-विभागों ने देशी स्कूलों का सुधार करना छोड़ कर सरकारी स्कूल खोलना आरम्भ किया। सहायता पादरियों के ही स्कूलों को अधिकतर मिलती थी क्योंकि उनका पाठ्यक्रम और संगठन सरकारी नियमों के अनुकूल था। केवल बंगाल ने देशी शिक्षालयों के सुधार और सहायता का प्रबंध किया अतः वहां अन्य प्रांतों से शिक्षा अधिक और सस्ती रही। वहां स्थानीय शिक्षाकर लगाने की आवश्यकता भी १८८२ तक न पड़ी थी। यहां पहिले तो थोड़े-थोड़े स्कूलों को एक वृत्त में संगठित करके एक दीक्षित गुरु के निरीक्षण में रखा गया किन्तु इससे सुधार न हुआ। अतएव बाद में नार्मल स्कूल प्रथा अपनाई गई। इसके अनुसार नार्मल स्कूलों में उन्हीं छात्राध्यापकों को प्रवेश मिलता था

जिन्हें गांव वाले भेजें और उनका व्यय ५) मासिक दें। इन अध्यापकों को उसी गांव में ५) मासिक पर नौकरी करने का वादा करना पड़ता था। नार्मल स्कूलों में उन्हें पाठन विधि, लिखना, पढ़ना, गणित, पैमाइश, बहीखाता, भूगोल तथा इतिहास की शिक्षा मिलती थी। इस प्रथा ने भी शीघ्र उन्नति न की। १८७१ में केवल २४३० स्कूल इस योजना के अंतर्गत आये थे। अस्तु १८७२ में सरकारी निरीक्षण में आने वाले अध्यापकों को सरकार २) से ५) मासिक सहायता देने लगी जिससे वे अपने व्यवसाय को न छोड़ें। बाद में यह सहायता परीक्षा फलों के आधार पर हो गई जिससे अध्यापक विद्यार्थियों की संख्या तथा शिक्षा को बढ़ाने में रत रहें। फलतः १८८२ में बंगाल में केवल २८ सरकारी स्कूल और ३२६५ सहायता न पाने वाले स्कूल थे। सहायता पाने वाले स्कूलों की संख्या ४७३७४ थी। प्रांत के प्रारंभिक शिक्षालयों के ६०% विद्यार्थी इन्हीं में थे।

बम्बई—बम्बई ने १८५२ में योजना बनाई थी कि उन्हीं ग्रामों में स्कूल स्थापित किये जावेंगे जो अध्यापकों के आधे वेतन, इमारत, फ़ीस तथा बच्चों की पुस्तकों का प्रबंध करेंगे। १८५४ के बाद वहां शिक्षा-विभाग ने इसे सहायक अनुदान प्रथा मान लिया पर भारत सरकार ने १८५८ में इसे अस्वीकार कर दिया। विकेंद्रीकरण के समय तक बम्बई में प्रारंभिक शिक्षा के लिये और कुछ न हुआ। उस वर्ष देशी शिक्षालयों की सहायता के नियम बने पर १८८२ तक केवल ७३ स्कूलों को सहायता मिली, ५३५० सरकारी स्कूल थे। स्पष्टतया बम्बई सरकार अपने स्कूलों की योजना पर विश्वास करती थी, पर रुपये की कमी थी। इसके लिये वहां भी स्थानीय कर लगे। १८७१ ई० में भारत सरकार ने भी प्रारंभिक शिक्षा के लिये सहायता देना शुरु किया और स्थानीय करों का $\frac{1}{3}$ भाग शिक्षा के लिये सुरक्षित हो गया। म्युनिसिपल कर भी इसी में मिला दिये गये। इस प्रकार यहां स्वतंत्र

स्थानीय शिक्षाकोष की नींव पड़ी जिससे इस कोष का रुपया स्थानीय शिक्षा के सिवा अन्य विषयों पर व्यय न हो सकता था। बचा हुआ रुपया अगले वर्ष शिक्षा कोष में मिला दिया जाता था। उत्तरी भारत में, हम देख चुके हैं, ऐसा न था। वहां प्रांतीय सकार ही प्रति वर्ष स्थानीय शिक्षा के लिये रक़म निश्चित करती थी।

मद्रास—मद्रास ने अत्यंत उचित इस योजना को अपनाया था कि सरकारी स्कूल वहीं स्थापित होंगे जहां सहायता द्वारा शिक्षालय स्थापित करना संभव न होगा। १८६८ में प्रारंभिक शिक्षालयों की सहायता के नियम बने और १८८२ में १२६३ सरकारी स्कूलों के साथ तेरह हज़ार से अधिक सहायता पाने वाले स्कूल भी थे जिनमें प्रायः साठ हजार विद्यार्थी शिक्षा पा रहे थे। सहायता न पाने वाले शिक्षालयों की संख्या केवल २८०० के करीब थी। स्थानीय कर यहां १८७१ के विकेंद्रीकरण के बाद ही लगा और उसका एक भाग शिक्षा के लिये सुरक्षित कर दिया गया।

मध्यप्रांत ने देशी शिक्षालयों को प्रोत्साहन देना तथा सरकारी स्कूल खोलना इन दोनों ही प्रथाओं को अपनाया था। उसने शिक्षा-कर भी लगाया था। शिक्षा कर धीरे-धीरे बिहार, आसाम, कुर्ग, पंजाब आदि में भी लग गया। आसाम में बंगाल की प्रथा का ही अनुकरण किया गया। अन्य प्रांतों में सरकारी स्कूलों की योजना ही शिक्षा विभागों की नीति रही।

इस प्रकार इस काल के अंत तक विभिन्न प्रांतों में एक नीति न अपनाई जा सकी। शिक्षा संबन्धी व्यय का भी समुचित प्रबन्ध न हो सका। १८७१ में विकेंद्रीकरण के समय भारत सरकार ने यह नियम मान लिया था कि निर्धनों की शिक्षा का प्रबन्ध करना सरकार का कर्त्तव्य है, अस्तु जन साधारण की शिक्षा पर सरकार व्यय अधिक करेग। इसी कारण शिक्षा व्यय सरकार ने बढ़ाया पर १८८२ तक वह

सरकारी आय के १% से थोड़ा ही अधिक था। सरकारी स्कूलों की महंगी योजना के मारे विकास कम हो रहा था और देशी शिक्षालय मिटते जा रहे थे। सरकारी योजनाओं के अंतर्गत जो स्कूल थे उनमें १% से अधिक बच्चे न थे। जन-संख्या बढ़ रही थी पर शिक्षा प्रसार उसी गति से नहीं हो रहा था। फलतः निरक्षरता का अनुपात बढ़ता जा रहा था। इसी समय १८८२ के कमीशन ने अपनी सिफारिशें प्रस्तुत कीं।

(आ) १८८२ का शिक्षा कमीशन

नियुक्ति—सर चार्ल्स वुड का उद्देश्य था कि सरकार जन-साधारण की शिक्षा पर व्यय करे, और उच्च वर्गों को अपनी शिक्षा का प्रबन्ध खुद करने को छोड़ दे। १८५४ में शिक्षा पर साढ़े सात लाख रुपया व्यय होता था किन्तु १८८२ ई० में सरकारी कालेजों और हाई स्कूलों पर तेरह लाख व्यय होने लगा था। ग़ैर सरकारी कालेजों और हाई स्कूलों को तीन लाख सहायता दी जाती थी। सरकारी हाई स्कूल बहुत बढ़ गये थे। सरकारी कालेज भी इस बीच चौदह से ३८ हो गये थे। प्रारंभिक और मिडिल शिक्षा पर प्रायः पचास लाख व्यय होता था जिसमें सरकार का भाग आधा ही था शेष स्थानीय करों द्वारा एकत्र होता था। निरक्षरता बढ़ ही रही थी अस्तु कुछ लोगों का मत था कि सर चार्ल्स के विचारों का पूर्णतया पालन नहीं हो रहा है। साथ ही ग़ैर सरकारी कालेजों की अपेक्षा सरकारी शिक्षालयों पर प्रति विद्यार्थी व्यय भी बहुत अधिक था और कुशलता उसी अनुपात में अधिक न थी। यह भी कहा जा रहा था, विशेषतया पादरियों को यह बड़ी शिकायत थी कि सरकार ने उनकी शिक्षा में रोड़े अटकाये हैं और उन्हें उचित रूप से सहायता नहीं दी है। जहां ग़ैर सरकारी हाई स्कूलों से काम चल सकता था वहां भी सरकार ने सरकारी महंगे हाई स्कूल स्थापित किये थे। बंगाल और मद्रास को

छोड़कर अन्यत्र सब कहीं सरकारी हाई स्कूल ही अधिक थे। पादरियों ने यह भी शिकायत की कि सरकारी सहायता देने में शिक्षालय के संगठन और पाठ्यक्रम में भी हस्तक्षेप किया जाता था और सरकार ने अपने स्कूलों तथा कालेजों को सफल बनाने के लिये अपेक्षा कृत कम फ़ीस और अधिक छात्रवृत्तियां रखी थीं। उनके मत में यह सब धार्मिक शिक्षा को समाप्त करने ही के लिये हुआ था। इन्हीं लोगों को पड़ताल का आश्वासन देकर लार्ड रिपन ने हन्टर कमीशन की नियुक्ति की थी। सर डब्ल्यू० हन्टर उसके प्रधान थे तथा भारतीय और अँग्रेज़ दोनों ही उसके सदस्य थे। कमीशन को आदेश मिला था कि वह पड़ताल कर पता लगावे कि १८५४ के नियम किस प्रकार कार्यान्वित हो रहे थे। उन्हें कालेजों के सम्बन्ध में भी मत देना था; पर विश्व विद्यालयों पर नहीं। उनको प्रारंभिक शिक्षा पर विशेष ध्यान देने के लिये आदेश दिया गया था। उन्हें इस बात का भी पता लगाना था कि शिक्षा-विभागों ने प्रारंभिक तथा माध्यमिक शिक्षा की तुलना में उच्च शिक्षा को तो अधिक प्रोत्साहित नहीं किया था। सरकारी हाई स्कूलों और कालेजों पर जो यह दोषारोपण किया गया था कि वे सहयता पाने वाले शिक्षालयों से कम फ़ीस लेकर विद्यार्थियों को आकृष्ट करते थे, उसका भी अनुसन्धान उन्हें करना था।

सिफारिशें—कमीशन ने प्रायः एक वर्ष के कार्य के बाद मार्च १८८३ ई० में अपनी लम्बी रिपोर्ट प्रस्तुत की। इसमें ब्रिटिश काल की संपूर्ण शिक्षानीति का इतिहास था और भविष्य के लिये सिफारिशें थीं। कालेज शिक्षा सम्बन्धी सिफारिशों का वर्णन पहिले आ चुका है। अन्य प्रमुख तथा महत्वपूर्ण सिफारिशों का वर्णन यहां होगा।

देशी स्कूल—कमीशन ने सर्व प्रथम देशी स्कूलों की परिभाषा दी कि वे भारतीय पाठन विधियों के आधार पर भारतीयों द्वारा संगठित शिक्षालय हैं। जिन देशी स्कूलों में कुछ भी सांसारिक शिक्षा दी जाती

हो उनको सरकारी सहायता और प्रोत्साहन देने की सिफारिश की गई थी। उनके मत में सरकारी सहायता परीक्षा फलों पर निर्भर होना-चाहिये एवं उन स्कूलों के वर्तमान तथा भावी अध्यापकों को दीक्षा लेने के लिये प्रोत्साहित करना चाहिये। स्थानीय तथा म्युनिसिपल-बोर्डों को भी चाहिये कि इन्हें सहायता दें ये और इनके रहते हुये उन्हें नये स्कूल न खोलना चाहिये।

प्रारंभिक शिक्षा—प्रारभिक शिक्षा का तात्पर्य उस शिक्षा से है जो जन साधारण को भावी जीवन के योग्य बनावे, जो केवल अथवा मुख्यतः विश्वविद्यालयों की शिक्षा का अंग न हो।

यद्यपि शिक्षा का प्रत्येक भाग सरकारी सहायता का अधिकारी है, फिर भी यह वांछनीय है कि जनता की प्रारंभिक शिक्षा को उसके प्रबंध, प्रसार और प्रोत्साहन को— देश की वर्तमान परिस्थिति में शिक्षा-योजना का वह भाग घोषित कर दिया जावे, जिसके लिये पहिले से अधिक सरकारी प्रयास हो उसको लोक शिक्षा का वह भाग घोषित कर दिया जावे जिसका स्थानीय शिक्षा-कोष पर प्रायः पूर्ण तथा प्रांतीय आय पर बहुत बड़ा अधिकार हो।

प्रारंभिक शिक्षालयों को परीक्षा फलों के आधार पर ही सहायता दी जावे, हाँ पिछड़े हुये ज़िलों में अवश्य विशेष सहायता दी जा सकती है।

परीक्षाओं को प्रत्येक प्रांत के अनुसार सुगम बनाकर उसमें कृषि, व्यवसाय, स्वास्थ्य, विज्ञान, पैमाइश, बहीखाता, गणित आदि का भी समावेश कर लिया जावे। सहायता पाने वाले शिक्षालयों के प्रबन्धकों द्वारा मनोनीत पाठ्य पुस्तकों में किसी प्रकार का संक्षेप न हो।

स्वास्थ्य वर्द्धन के उद्देश्य से ड्रिल और खेलों को भी स्कूली शिक्षा का ही अंग बना दिया जाय एवं संगठन द्वारा बच्चों के चरित्र तथा आचरण को वांछनीय दिशा में प्रभावित करने का उद्योग किया जाय।

लार्ड हार्डिञ्ज के प्रस्ताव के अनुसार सरकारी निम्नपदों में भी पढ़े लिखे लोगों को स्थान दिया जावे।

प्रारंभिक शिक्षा का संगठन स्थानीय तथा म्युनिसिपल बोर्डों को सौंप दिया जावे, जो इसके लिये अलग से कोष स्थापित करें।

कमीशन ने यह आशा प्रकट की थी कि इस प्रकार कार्य करने से लोक शिक्षा में आवश्यक सुधार हो सकेगा।

माध्यमिक शिक्षा—माध्यमिक शिक्षा के लिये कमीशन के मुख्य सुझाव निम्नलिखित हैं:—हाई स्कूल की अंतिम कक्षाओं में पाठ्यक्रम के दो भाग हों, एक विश्वविद्यालयों की प्रवेशिका परीक्षा के लिये, और दूसरा अधिक व्यावहारिक, जो युवकों को व्यापारिक तथा असाहित्यिक पदों के लिये तैयार करे, इन दोनों में से किसी भी पाठ्यक्रम को लेकर परीक्षा उत्तीर्ण करने वाले युवकों को सरकारी नौकरी के योग्य स्वीकार किया जावे।

स्कूलों को पुस्तकालय, शिक्षा सम्बन्धी उपकरण और सामान के लिये भी सहायता दी जाय।

शिक्षण-कला के लिये विशिष्ट परीक्षा स्थापित हो जिसे पास करने पर ही माध्यमिक शिक्षालयों में अध्यापक का पद मिले।

सहायता पाने वाले स्कूलों की फ़ीस की दर डाइरेक्टर, शिक्षा-विभाग और मैनेजर मिलकर तै करें किन्तु उसका सरकारी दरों के बराबर होना अनिवार्य न हो।

सरकारी छात्र वृत्तियां सभी स्वीकृत शिक्षालयों में मिलें और इस दृष्टि से विभिन्न शिक्षालयों को सम्बन्धित समझा जाय अर्थात् निम्नस्तर के शिक्षालयों में सफलता मिलने पर उच्चस्तर के शिक्षालयों में छात्रवृति दी जावे।

शिक्षा विभाग की परीक्षाओं में परीक्षकों को पारिश्रमिक दिया जावे जिससे वे अपना कार्य अधिक सावधानी से करें।

यह स्पष्ट कर दिया जावे कि सरकार का माध्यमिक शिक्षा से उतना ही घनिष्ट सम्बन्ध नहीं है जितना प्राइमरी शिक्षा से अतः यद्यपि प्रारंभिक शिक्षा के लिये स्थानीय सहयोग के बिना भी स्कूल खुल सकते हैं, किन्तु माध्यमिक अंग्रेज़ी स्कूल आगे चलकर सहायक अनुदान प्रथा द्वारा ही स्थापित हों। साथ ही शिक्षा-विभाग के डाइरेक्टर सरकारी अंग्रेज़ी स्कूलों को स्थानीय देशी प्रबंध में हस्तांरित कर दें यदि ऐसा करने से उनके स्थायित्व और कुशलता में अंतर पड़ने का भय न हो। यदि आवश्यक हो तो इसके लिये आरंभ में थोड़े दिन तक विशेष सहायता भी दी जा सकती है।

सरकार ने इन सभी सिफारिशों को मान लिया तथा हाई स्कूलों में व्यापारिक तथा व्यावसायिक शिक्षा का प्रबंध करने पर विशेष ज़ोर दिया।

स्त्री शिक्षा—इसके अतिरिक्त कमीशन ने शिक्षा विभाग के संगठन, विशेष वर्गों की शिक्षा, शिक्षा संबंधी कानून आदि पर भी सिफारिशें की थीं। स्त्री शिक्षा के सम्बन्ध में उसका मत था कि स्थानीय, म्युनिसिपल तथा प्रांतीय कोष से उसे विशेष प्रोत्साहन मिलना चाहिये। स्त्री शिक्षा के लिये अधिक सहायता, सरल परीक्षायें, और अधिक छात्रवृत्तियां हों। छोटे बच्चों के स्कूलों में स्त्री अध्यापिकायें नियुक्त की जावें। अध्यापकों की स्त्रियों तथा विधवाओं को अध्यापिका बनने के लिये विशेष रूप से प्रोत्साहित किया जाय।

स्त्री इंस्पेक्टरों द्वारा स्त्री शिक्षा का निरीक्षण हो।

संक्षेप में, कमीशन ने प्रारंभिक शिक्षा के विकास पर विशेष ध्यान आकर्षित किया। उसने शिक्षा को सस्ती, उपयोगी तथा विस्तृत बनाने पर जोर दिया।

(३) १८८२—१९२१

इस काल में समस्त भारतीय शिक्षा में एकरूपता लाने के लिये १८८५ ई० में भारत मंत्री ने भारत के सभी भागों की शिक्षा पर

वार्षिक रिपोर्ट तैयार कराने की अनुमति दी और १८८७ से ऐसी रिपोर्ट तैयार होने लगी, जिनकी आलोचना करते हुये भारत सरकार प्रांतों को शिक्षा नीति में परिवर्तनों के लिये निर्देश दिया करती थी।

१८८६ में भारत सरकार ने टेक्निकल शिक्षा पर एक स्मृतिपत्र तैयार कराया, और १८८८ की शिक्षा रिपोर्ट में भी इस विषय पर ध्यान दिया गया। १८५४ के सरकारी पत्र ने जनता को उपयोगी और व्यावहारिक शिक्षा देना स्थिर किया था। १८८२ के कमीशन ने भी सरकार का ध्यान इस ओर आकर्षित किया था कि वह माध्यमिक विद्यालयों की अन्तिम कक्षाओं में दो प्रकार के पाठ्यक्रम कर दे, एक साहित्यिक जो विश्वविद्यालयों में भरती के लिये उपयोगी हो, और दूसरा व्यावसायिक लोगों के व्यावसायिक तथा व्यापारिक जीवन में सहायक हो। इसके लिये शिक्षा विभागों को रेल संगठनों तथा व्यापारियों और व्यवसायियों से परामर्श करना चाहिये था। १८८८ ई० में सरकार ने इसी उद्देश्य से माध्यमिक कक्षाओं में ड्राइंग और आरंभिक विज्ञान पढ़ाने की शिफारिश की। संक्षेप में, सरकारी नीति इस समय यह थी कि टेक्निकल शिक्षा माध्यमिक शिक्षा का ही अंग हो, और उसके लिये विशेष शिक्षालयों का प्रबंध उन्हीं क्षेत्रों में हो, जहां उनकी विशिष्ट आवश्यकता हो।

इसी वर्ष सरकार ने यह भी निश्चित कर दिया कि शिक्षा के मामले में, सरकार का उद्देश्य केवल मार्ग-प्रदर्शन करना है, शिक्षा के स्थानीय प्रबंधकों से सरकार प्रतियोगिता नहीं करना चाहती अतएव जहां भी स्थानीय प्रबंध किसी क्षेत्र की शिक्षा विषयक आवश्यकताओं को पूरा करने के योग्य होगा, सरकार उस क्षेत्र से अपने स्कूल हटा लेगी, अर्थात् या तो उन्हें बन्द कर देगी अथवा उन्हें स्थानीय प्रबंधकों को दे देगी। इसके अनुसार माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा के लिये सहायक अनुदान प्रथा में और प्रगति हुई।

प्रारंभिक शिक्षालय तो स्थानीय बोर्डों को सौंप ही दिये गये। इस प्रकार शिक्षा सस्ती होकर बढ़ने लगी।

लार्ड कर्ज़न के समय में शिक्षाविकास के सभी अंगों पर विचार किया गया। प्रारंभिक शिक्षा से लेकर विश्वविद्यालयों तक को नौकरशाही ने अपने दृष्टिकोण से सुधारना चाहा। शिक्षा विकास के स्थान पर शिक्षा-सुधार को ही सरकार ने अपनी नीति बना लिया। इसके लिये कर्ज़न ने १६०१ में प्रांतीय शिक्षा डाइरेक्टरों की सभा की। १६०२ में विश्वविद्यालय कमीशन नियुक्त किया। उसके परिणाम स्वरूप १६०४ का विश्वविद्यालय-क़ानून पास हुआ और इसी वर्ष शिक्षा सबन्धी सरकारी प्रस्ताव सामने आया। इस सम्बन्ध की विशेष चर्चा आगे, उपयुक्त स्थान पर, की जायेगी।

सन् १६१० में "शिक्षा, स्वास्थ्य एवं भूमि कर" विभाग गृह-विभाग से अलग कर दिया गया अतएव शिक्षा पर अधिक ध्यान देने की सुविधा हो गई।

इसके बाद १६११ में दिल्ली दर्बार हुआ जिसमें सम्राट ने अपनी प्रजा को शिक्षित तथा सम्पन्न देखने की कामना प्रकट की। शिक्षा व्यय में ५० लाख वार्षिक तथा प्राय: एक करोड़ सुधार के लिये जोड़ दिया गया।

१६१०-१२ के बीच में श्री गोपाल कृष्ण गोखले ने धारा सभा में निःशुल्क और अनिवार्य प्रारंभिक शिक्षा के प्रस्ताव रखे, जो पास न हो सके। १६१३ में लार्ड हार्डिञ्ज ने एक प्रस्ताव में शिक्षा के विकास तथा सुधार की योजना प्रस्तुत की इस समय ब्रिटिश साम्राज्य के मूलोच्छेद का प्रयास बंगाल से आरंभ होकर देशव्यापी बनता जा रहा था। इसे दूर करने के लिये शिक्षा द्वारा विद्यार्थियों के चरित्र निर्माण पर जोर दिया गया। शिक्षित समुदाय में बेकारी कम करने के लिये शिक्षालयों का पाठ्यक्रम विस्तृत और कठिन करना स्थिर हुआ।

भारतवर्ष में ही उच्चतम शिक्षा और अनुसंधान का प्रबंध करने का निश्चय किया गया। प्रारंभिक तथा माध्यमिक शिक्षालयों में व्यावहारिक शिक्षा बढ़ाने की नीति को और दृढ़ करने की इच्छा भी इस प्रस्ताव में प्रकट की गई थी।

जनता की आत्म चेष्टा के द्वारा ही प्रारंभिक शिक्षा का विकास और व्यावहारिक स्त्री शिक्षा की योजना करना इस प्रस्ताव के मुख्य उद्देश्य थे। स्त्री शिक्षा की आवश्यकता और संगठन पर विशेष जोर देते हुये स्त्री-शिक्षकों की संख्या बढ़ाने की योजना इस प्रस्ताव में थी। माध्यमिक शिक्षा में नयी शिक्षण विधियों को चालू करने और एस-एल-सी. परीक्षा को विश्वविद्यालयों के हाथ से ले लेने का सुझाव भी इस प्रस्ताव में दिया गया था। प्रारंभिक तथा माध्यमिक अध्यापकों की दीक्षा अनिवार्य करने का विचार भी इस प्रस्ताव में प्रकट किया गया। विश्वविद्यालयों को सुधारने के लिये उनका क्षेत्र सीमित करने का निर्देश भी इस प्रस्ताव में था।

इसके बाद १६१७ में "कलकत्ता विश्वविद्यालय कमीशन" की स्थापना हुई जिसका भारतीय शिक्षा विकास में महत्वपूर्ण स्थान है उसने माध्यमिक शिक्षा को विश्वविद्यालयों के प्रभाव से मुक्त करने की योजना प्रस्तुत की विश्वविद्यालयों को शिक्षा और ज्ञान का केन्द्र बनाने की सिफारिश भी इस कमीशन ने की। इन प्रस्तावों का बड़ा प्रभाव पड़ा।

इसके बाद सन् १६२१ में मांटफोर्ट सुधार कार्यान्वित हुये और शिक्षा को प्रांतीय एवं हस्तांतरित- विषय बना दिया गया। भारत सरकार का शिक्षा संबंधी दायित्व कम हो गया। इसके बाद विभिन्न प्रांतों में अलग-अलग योजनायें बनने लगीं, किन्तु सभी का उद्देश्य प्रारंभिक शिक्षा का विकास करना, माध्यमिक शिक्षा को अधिक व्यावहारिक तथा उपयोगी बनाना, व्यावसायिक तथा टेक्निकल

शिक्षा को प्रोत्साहित करना और उच्च शिक्षा तथा अनुसंधान को बल प्रदान करना था। भारत सरकार भी परामर्श और सहायता देती रहती थी।

उच्चशिक्षा (१८८२-१९२१)—अब हम शिक्षा के इन चालीस वर्षों के इतिहास पर अधिक सूक्ष्म विचार करेंगे। उच्च शिक्षा में इस काल के आरंभ में ही दो विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई। १८८२ ई० में पंजाब विश्वविद्यालय स्थापित हुआ। यह भी प्रेसीडेन्सी विश्वविद्यालयों के समान मुख्यतया परीक्षण ही के लिये था किन्तु इसके प्रबन्ध में कालेज भी रह सकते थे; आरंभ से ही लाहौर के ओरियंटल कालेज' एवं 'ला कालेज इसके प्रबन्ध में थे। इस विश्व-विद्यालय में प्राच्यविभाग (Oriental Faculty) भी था जो अन्य विभागों के समान प्राच्य शिक्षा में उपाधियाँ (degrees) देता था। प्राच्य-शिक्षा सम्बन्धी परीक्षा का माध्यम उर्दू या प्रांतीय भाषाओं में 'विशेष-योग्यता' तथा अरबी, फारसी और संस्कृत में 'शास्त्री' आदि परीक्षायें लेना और उपाधियां देना भी इस विश्वविद्यालय का कार्य था इसके बाद १८८७ में प्रयाग विश्वविद्यालय की स्थापना हुई। इसका कार्यक्षेत्र परीक्षण ही तक सीमित न किया गया। फिर भी इसका कार्य अधिकतर प्रेसीडेन्सी विश्वविद्यालयों के ही समान था। इन दोनों के सेनेट में सरकारी पदाधिकारी तथा चांसलर द्वारा मनोनीत सदस्यों के अतिरिक्त सेनेट द्वारा निर्वाचित सदस्य भी थे पर वे मनोनीत सदस्यों से अधिक न हो सकते थे।

१८८२ के बाद देशी प्रबन्धकों के नेतृत्व में उच्च शिक्षा के कालेज खुलने लगे। शताब्दी के अंत तक सौ से अधिक नये कालेज खुल गये। ब्रिटिश भारत में ही १३६ कालेज थे। जिनमें से २६ हमारे ही प्रांत में थे। इनमें से अधिकांश प्रवेशिका और डिग्री सभी परीक्षाओं के लिये परीक्षार्थी भेजते थे। १९०१ में प्रवेशिका परीक्षा में प्रायः

बीस हज़ार परीक्षार्थी सम्मिलित हुये थे जब कि १८८२ में उनकी संख्या सात हज़ार के ही लगभग थी।

१८८६ में लार्ड लैंसडौन ने अपने दीक्षांत भाषण में इस विकास के दोषों की ओर ध्यान आकर्षित करते हुये कहा था कि शिक्षितों में बेकारी का भय बढ़ रहा है अतः हमें व्यावसायिक शिक्षा पर अधिक ज़ोर देना चाहिये।

विश्वविद्यालय कमीशन—१६०२ के विश्वविद्यालय कमीशन की रिपोर्ट के आधार पर ही १६०४ का विश्वविद्यालय क़ानून (Indian Universities Act, 1904) पास हुआ था। कमीशन ने विश्वविद्यालयों के संगठन को आवश्यक तथा उचित मान कर केवल शिक्षण करने वाले विश्वविद्यालयों (Teaching Universities) की स्थापना पर तो विचार भी न किया। उच्च शिक्षा के बाद उसने परीक्षक विश्वविद्यालयों, में कुछ शिक्षण विश्वविद्यालय के नेतृत्व में देने की सलाह दी। इसके लिये आधुनिक दिल्ली अथवा फेडेरल विश्विद्यालय का आदर्श सामने रखा कि जहां कहीं भी संभव हो डिग्री परीक्षाओं के बाद कई कालेजों के विद्यार्थियों को एक केन्द्रीय विद्यालय में एकत्र कर विश्वविद्यालय के अध्यापकों द्वारा शिक्षा दिलाई जावे यद्यपि वे विद्यार्थी अपने अपने कालेजों के ही विद्यार्थी समझे जायें। विश्वविद्यालयों द्वारा कालेजों के निरीक्षण पर भी कमीशन ने ज़ोर दिया।

शिक्षा का आदर्श ऊँचा करने के लिये सरकारी कालेजों में ठीक व्यवस्था की जाये और उनके सामान, पुस्तकालय उपकरण तथा प्रयोगशालाओं में किसी प्रकार की त्रुटि न रहने दी जाय।

अंग्रेज़ी भाषा की शिक्षा ठीक करने के लिये कमीशन ने सिफारिश की कि इसके शिक्षक दीक्षान्त विद्यालयों में अंग्रेज़ों द्वारा दीक्षित हों।

अंग्रेज़ी प्रारंभिक कक्षाओं में आरंभ न की जावे और न उसे शीघ्र ही शिक्षा का माध्यम बनाया जावे।

प्रांतीय भाषाओं का ज्ञान स्नातकों (graduates) में बहुत कम होता है, अस्तु उनमें एम. ए. परीक्षा का प्रबन्ध हो। प्राच्य भाषाओं की शिक्षा में सुधार करने के लिये उन विषयों के अध्यापकों का वेतन बढ़ाने की सिफारिश भी कमीशन ने की थी।

आगे चलकर कमीशन ने कहा कि विश्वविद्यालयों का मुख्य दोष यह है कि शिक्षण पर परीक्षाओं का अत्यधिक प्रभाव है; शिक्षा का स्थान परीक्षाओं के लिये तैयारी ने ले लिया है।

कमीशन ने प्रवेशिका का स्तर ऊँचा करके डिग्री पाठ्यक्रम तीन वर्ष का करने और एफ० ए० की परीक्षा हटाने के विचार को ठुकरा दिया। उसने प्रवेशिका और एस० एल० सी० परीक्षाओं को मिलाकर एक नई परीक्षा संगठित करने की योजना स्वीकार कर ली। परन्तु सरकार ने इसे नहीं माना।

इस प्रकार कमीशन की रिपोर्ट में उच्च शिक्षा के लोक प्रसार के स्थान पर उसको अधिक गम्भीर बनाने का प्रयास किया गया था। सरकारी अफसर तथा पादरी ही इसके पक्ष में थे। भारतीय इस नियंत्रण के विरुद्ध थे। गोखले आदि ने भारतीय दृष्टिकोण को उपस्थित करते हुये यह मत प्रकट किया था कि यदि शिक्षा उच्चतम कोटि की नहीं भी है तो भी वह व्यर्थ अथवा हानिकारक नहीं है। शिक्षा का उद्देश्य भारतीय मस्तिष्क के आवरण को हटा कर उसको पाश्चात्य विचारों की स्वतंत्रता से अवगत कराना है, और यह कार्य निम्न और अकुशल पाश्चात्य शिक्षा द्वारा भी संभव है। जब तक शिक्षा का वांछित, यथेष्ट, प्रसार न हो जाय तब तक यह वर्ग गम्भीरता का प्रश्न उठाकर उसको सीमित करने के विरुद्ध था। इस दल की सरकार ने उपेक्षा की और १६०४ ई० में शिक्षा प्रस्ताव तथा विश्व-

विद्यालय क़ानून सामने आये। अतः उनकी उचित तथा अनुचित कड़ी आलोचना हुई।

१८०४ के प्रस्ताव में सरकार ने स्पष्ट कर दिया कि भारतीय विश्वविद्यालयों की स्थापना लन्दन विश्वविद्यालय को आदर्श मान कर परिक्षायें लेने ही के लिये हुई थी। किन्तु पिछले पचास वर्षों में शिक्षा-संसार में ऐसे विश्वविद्यालयों को अनुपयुक्त घोषित किया जा चुका है, और लन्दन विश्वविद्यालय भी बदल चुका है। साथ ही भारतवर्ष का अनुभव भी इस बात का द्योतक है कि यदि विद्यार्थियों को उनकी अभिरुचि के अनुसार पाठ्यक्रम मिलता है तो उनका यथेष्ट मानसिक विकास न होकर स्मरणशक्ति ही अधिक बढ़ती है। अतः इन विद्यार्थियों को सुयोग्यतम अध्यापन द्वारा दार्शनिक और टेक्निकल अथवा व्यावसायिक विषयों की ओर ले जाना आवश्यक है, जिससे उनके मस्तिष्क का पूर्ण विकास हो और उनमें वैज्ञानिक तथा अन्य विषयों के निगूढ़तम स्तर तक पहुँचने की क्षमता आ जावे। अतः सरकार विश्वविद्यालयों के प्रबन्ध और विधान में परिवर्तन करके उन्हें स्वयं पढ़ाई का प्रबन्ध करने और कालेजों के निरीक्षण करने का अधिकार दे देगी, जिससे उपरिलिखित दोषों का निराकरण हो जाय।

१६०४ का विश्वविद्यालय क़ानून

कार्यक्षेत्र—इस क़ानून ने विश्व विद्यालयों के कार्य क्षेत्र को विस्तृत कर दिया। इसके अनुसार परीक्षाओं के अतिरिक्त विश्वविद्यालय विद्यार्थियों की शिक्षा के लिये लेक्चरर तथा प्रोफेसर नियत कर सकते थे तथा पुस्तकालय, संग्रहालय और प्रयोगशालायें आदि भी स्थापित कर सकते थे। वे विद्यार्थियों के निवास और आचरण संबंधी नियम भी बना सकते थे। साथ ही वे शिक्षा और अनुसंधान के लिये और भी उपनियम बना सकते थे जो सम्बन्धित कालेजों पर लागू हों।

संगठन—विश्वविद्यालयों के संगठन में इस क़ानून ने महत्वपूर्ण परिवर्तन किये। सेनेट की सदस्यता जीवन भर के लिये होती थी तथा वह सम्मान सूचक समझी जाती थी अतएव सेनेटों में ऐसे सदस्यों की संख्या अधिक थी, जिनका शिक्षा पर कोई स्नेह न था और इतने बड़े सेनेट* प्रबंध में उचित हाथ न बँटा पाते थे। ये सदस्य शिक्षा तथा विभाग समितियों में भी पहुँच जाते थे और उसके लिये सर्वथा अयोग्य होते थे। अतः संगठन में अध्यापकों का उचित प्रभाव न हो पाता था। इस कानून ने सेनेटों के सदस्यों की संख्या भी निर्धारित कर दी। अब सेनेट के सदस्यों की संख्या पचास से सौ तक हो हो सकती थी और वे पांच वर्ष के लिये ही मनोनीत किये जाते थे।

सेनेट के लिये निर्वाचन—प्रयाग तथा पंजाब के सेनेट मनोनीत सदस्यों के बराबर सदस्य स्वयं भी निर्वाचित कर सकते थे। अन्य विश्वविद्यालयों में ऐसा क़ानूनी प्रचलन न था पर दो तीन निर्वाचित सदस्य भी चांसलर मनोनीत कर लेता था। १६०४ के क़ानून ने निर्धारित किया कि प्रेसीडेंसी विश्वविद्यालयों के बीस और अन्य विश्वविद्यालयों के सेनेटों के पन्द्रह सदस्य निर्वाचित होंगे। इनमें से दस सदस्य रजिस्टर्ड ग्रैजुएटों द्वारा निर्वाचित होंगे और शेष विभाग समितियां (Faculty) द्वारा। निर्वाचक रजिस्टर्ड ग्रैजुएट कम से कम दस वर्ष के डाक्टर अथवा मास्टर (एम. ए. एम. एस. सी. इत्यादि) उपाधिधारी हों। इसी लिये नये विश्व विद्यालयों—प्रयाग तथा पंजाब में यह प्रथा कुछ समय बाद ही कार्यान्वित हो सकती थी, और तब तक दस सदस्यों का निर्वाचन सेनेट को सौंप दिया गया।

कार्यकारिणी में अध्यापक—एक और प्रमुख परिवर्तन यह

---

* इस क़ानून के बनने के समय सदस्यों की संख्या कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, प्रयाग तथा पंजाब में क्रमशः १८१, २६६, १६८, १३६ तथा ११२ थी।

हुआ कि विश्वविद्यालयों में प्रचलित कार्यकारिणी—सिंडीकेट—को नियमानुगत कर दिया गया। विश्वविद्यालयों का कार्यकारी प्रबंध सिंडीकेट को सौंपा गया। उपकुलपति (Vice chancellor) को उसका प्रधान बनाया गया। उसके सिवा सिंडीकेट में प्रांतों के शिक्षा-डाइरेक्टर तथा सात से पन्द्रह तक सेनेट द्वारा निर्वाचित अन्य सदस्य भी हो सकते थे। इन्हीं निर्वाचित सदस्यों में कालेजों के अध्यापकों को स्थान मिला। इन अध्यापक-सदस्यों की संख्या निर्वाचित सदस्यों की आधी अथवा अधिक से अधिक उससे एक कम होनी आवश्यक थी।

संबंधित कालेजों का निरीक्षण—इस कानून द्वारा विश्वविद्यालयों के सिंडीकेट को संबंधित कालेजों के निरीक्षण का अधिकार भी मिल गया ताकि कालेजों की कुशलता घटने न पावे। इस निरीक्षण के लिये सिंडीकेट एक या अधिक व्यक्ति नियत कर सकता था और उनकी रिपोर्ट के आधर पर सिंडीकेट कालेज को सुधारों के लिये बाध्य कर सकता था, जिससे उनकी कुशलता और संगठन नये कालेजों के समान हो जावे। इसके सिवा प्रत्येक कालेज से सिंडीकेट ऐसी सूचनायें भी मंगा सकता था जिनसे उसकी कुशलता का पता लग सके।

विश्वविद्यालयों से संबंध स्थापित करने के लिये नये कालेज सिंडीकेट को प्रार्थनापत्र भेजते थे। यह सम्बन्ध स्थापित करने के लिये कालेज में निम्नाङ्कित गुणों का होना आवश्यक था। उसकी आर्थिक स्थिति ठीक हो; वह दूसरे समीप स्थित कालेजों से प्रतियोगिता के लिये निर्धारित दर से कम फ़ीस न लेता हो; उसमें अधिकांश विद्यार्थियों के नियंत्रित आवास का प्रबन्ध हो एवं उसके समीप ही कालेज के प्रधान तथा अन्य अध्यापक रहते हों, अध्यापकों की संख्या और योग्यता पर्याप्त हो; कालेज में यथेष्ट और उचित इमारतें, प्रयोगशालायें, छात्रावास, पुस्तकालय एवं अन्य उपकरण हों। सिंडीकेट इन सब बातों का पता लगाकर अपनी रिपोर्ट सेनेट को देता था। तब सेनेट उस पर

अपना मत देता था। सेनेट के मत से युक्त वह प्रार्थनापत्र सरकार के पास भेजा जाता था और तब सरकार उस प्रार्थनापत्र को अथवा उसके किसी भाग को स्वीकार या अस्वीकार कर सकती थी।

सिंडीकेट के सदस्य यह प्रस्ताव भी कर सकते थे कि अयोग्य कालेजों का विश्व-विद्यालय से सम्बन्ध न रखा जाय सिंडीकेट और सेनेट का यह प्रस्ताव भी सरकार के पास भेजा जाता था। इसका भी अंतिम निर्णय सरकार ही करती थी। कालेजो को विश्वविद्यालय की परिक्षाओं में अपने विद्यार्थी भेजने का जो अधिकार अभी तक था अब उस पर भी सरकार का नियंत्रण हो गया।

विश्वविद्यालयों पर सरकार का अधिकार—सेनेट के कार्यों पर पहिले सरकार को केवल स्वीकृति अथवा अस्वीकृति देने का अधिकार था। १९०४ के कानून ने स्वीकृति देते समय नियमों में परिवर्तन करने का अधिकार भी सरकार को दे दिया। इस कानून ने सरकार को यह अधिकार भी दे दिया कि आवश्यक होने पर वह स्वयं भी विश्वविद्यालयों के संबंध में नियम बना सकती है, यदि उक्त विषय पर सेनेट निश्चित समय के भीतर नियम न बनावें। यह बहुत ही व्यापक अधिकार था। इस प्रकार स्वतंत्र संस्थायें सरकारी विभागों के समान ही हो गईं।

प्रत्येक विश्वविद्यालय का क्षेत्र भी निर्दिष्ट कर दिया गया, यह निश्चित कर दिया गया कि कहाँ-कहाँ के कालेज उससे संबंधित हो सकते हैं।

आलोचना—इनमें से बहुतेरी बातों का जनता ने बड़ा विरोध किया। उन्होंने विश्वविद्यालय के संगठन पर सरकार के अधिकार स्थापित करने की कड़ी आलोचना की। कालेजों के नियंत्रण और निरीक्षण को. उन्होंने शिक्षा विकास पर कुठाराघात माना। लोगों ने कहा कि इन सुधारों के फलस्वरूप शिक्षा धनिकों तक ही सीमित

हो जायगी और विश्वविद्यालयों पर यूरोपियनों का नियंत्रण स्थापित हो जावेगा क्योंकि वे समझते थे कि सरकार अधिकांशतया उन्हीं को मनोनीत करेगी। उन्हें विश्वास हो गया कि भारतीयों के प्रबंध में चलने वाले नये कालेजों को बड़ी कठिनाई होगी। लोगों को आशा थी कि सुधार द्वारा सरकार निर्धनों को अधिक छात्रवृत्तियां देने का प्रबंध करेगी और विश्वविद्यालयों में पढ़ाई का प्रबंध करेगी। पर वैसा नहीं हुआ। विश्वविद्यालयों को पढ़ाने का अधिकार देने एवं अधिकार को कानून में न सम्मिलित करने का अर्थ यह था कि सरकारी व्यय द्वारा यह कार्य न होगा। लोगों ने कर्ज़न के विश्वविद्यालय क़ानून को आतंकवादियों के दबाने की नीति का ही एक भाग माना और उसका उसी रूप में स्वागत भी किया। इस क़ानून से शिक्षा के सुधार में लाभ अवश्य हुआ, यद्यपि सरकार ने विश्वविद्यालयों की सहायता का प्रबंध न करके इस सुधार की गति को बढ़ाया नहीं। निर्धन देश में फ़ीस बढ़ाना भी अनुचित था।

इस क़ानून का प्रभाव यह पड़ा कि संबंधित कालेजों की संख्या घटने लगी। १९१२ तक तीस से अधिक कालेज बन्द हो गये। पर कुछ नये कालेज स्थापित भी हुये। इसके बाद से कालेजों की संख्या बढ़ने लगी और १९२१ में दो सौ से भी अधिक हो गई। विद्यार्थियों की संख्या निरंतर बढ़ती ही रही। १९२१ में वह आधे लाख से भी कुछ अधिक थी। इनमें से अधिकांश विद्यार्थी कला और विज्ञान के कालेजों में ही थे, क्योंकि व्यावसायिक शिक्षा के कालेजों में स्थान सीमित थे। एक कारण यह भी था कि देश में व्यावसायिक उन्नति न होने से शिक्षा मुख्यतया सरकारी नौकरी का साधन थी और उच्च शिक्षा के द्वारा ही उच्च वेतन वाले पदों का मिलना संभव था। इससे स्पष्ट ही है कि व्यावसायिक शिक्षा में विकास आवश्यक था। दो सौ से अधिक कला और विज्ञान के कालेजों की तुलना में व्याव-

सायिक शिक्षा के पचास से भी कम कालेज थे, इनमें भी एक-एक दर्जन क़ानून और दीक्षा के कालेज थे। कुछ डाक्टरी और पशु-चिकित्सा के कालेज भी थे जिनका आकार सरकारी आवश्यकतायें निर्धारित करती थीं। इसी हेतु इंजीनियरिंग कालेज भी कुल पांच ही थे। विशुद्ध व्यावसायिक शिक्षा का प्रबंध पांच ही कालेजों में था और टेक्निकल शिक्षा के लिये तो कालेजों का निर्माण अभी हुआ ही न था। कृषि शास्त्र की शिक्षा का प्रबंध भी केवल दो स्थानों पर था।

१६१३ का सरकारी प्रस्ताव—१६१३ के सरकारी शिक्षा प्रस्ताव में सरकार ने यह मत प्रकट किया था कि कालेजों के छात्रावासों, पाठ्यक्रमों और प्रबन्ध के नियंत्रण में दोष हैं और आगे भी रहेंगे। अतएव विश्वविद्यालयों द्वारा शिक्षा प्रबन्ध ही उचित है। इसके लिये अलीगढ़, ढाका, नागपुर, पटना आदि में शिक्षा देने वाले विश्व-विद्यालयों की आवश्यकता सरकार ने स्वीकार की। साथ ही सरकार ने परीक्षक विश्वविद्यालयों में पुस्तकालयों और शिक्षा के प्रबन्ध के लिये सहायता देना भी स्वीकार किया। इस प्रस्ताव में यह विचार भी प्रकट किया गया था कि प्रवेशिका परीक्षा के लिये स्कूलों की स्वीकृति विश्वविद्यालय के अधिकार में दे दी जाय।

सैडलर कमीशन—इस प्रकार जिस समय विश्वविद्यालयों में ही शिक्षा का प्रबन्ध करने का विचार ज़ोर पकड़ रहा था उस समय सन् १६१७ में 'कलकत्ता विश्वविद्यालय कमीशन' की नियुक्ति हुई। इसके प्रधान श्री माइकेल सैडलर थे। भारतीय और ब्रिटिश दोनों ही इस कमीशन के सदस्य थे। विश्वविद्यालयों के सुधार और उनके माध्यमिक शिक्षा के सम्बन्ध पर इस कमीशन ने सन् १६१६ में अपनी रिपोर्ट दी इसके मुख्य सुझाव निम्नलिखित थे।

(१) कमीशन ने उन्हीं विश्व विद्यालयों को उपयुक्त माना

जिनमें शिक्षा देने का प्रबन्ध हो एवं जिनसे सम्बन्धित अन्य कालेज न हों। भारत के लिये यह योजना ठीक न थी। यहाँ तो उन्हीं विश्व-विद्यालयों से अधिक लाभ हो सकता था जो शिक्षा देने तथा परीक्षा लेने के दोनों ही कार्य करते।

(२) विश्वविद्यालयों में डिग्री कक्षा और उसके बाद की ही शिक्षा होनी चाहिये। उनमें 'आनर्स' परीक्षा की योजना होना चाहिए एवं एफ. ए. अथवा इंटरमीजियट कालेजों का विश्वविद्यालयों से सबन्ध तोड़ देना चाहिये।

(३) प्रवेशिका और एफ. ए. अथवा इंटरमीजियट परीक्षाओं के लिये प्रत्येक प्रांत में एक शिक्षा बोर्ड होना चाहिये। यही बोर्ड हाई स्कूलों तथा इंटर मीजियट कालेजों की देख रेख भी करे।

(४) कलकत्ता विश्वविद्यालय का कार्य कम करने के लिये ढाका बिश्वविद्यालय की स्थापना की गई। अन्य स्थानों में भी विश्व-विद्यालय बनाने की योजना कमीशन ने रखी। कमीशन का विचार था कि डिग्री प्राप्त विद्यार्थियों की उच्चतम शिक्षा के लिये कलकत्ता विश्व-विद्यालय में प्रबन्ध हो।

(५) विद्यार्थियों के स्वास्थ्य का अधिक प्रबंध हो। इसके लिये स्वास्थ्य संचालक (Director of Physical Training) नियुक्त होना चाहिये।

(६) पर्दानशीन स्त्रियों को उच्च शिक्षा का प्रबंध हो।

(७) दीक्षित अध्यापकों की संख्या बढ़ाने के लिये विश्वविद्यालयों में शिक्षा विभाग खुलें और बी० ए० तथा इंटरमिजियट में भी शिक्षा विषय खोल दिया जावे। इन कक्षाओं में प्रांतीय भाषायें भी पढ़ाई जावें।

(८) विश्वविद्यालयों को टेक्निकल शिक्षा का प्रबन्ध करना चाहिये। प्राच्य शिक्षा के कालेजों से विश्वविद्यालयों का प्रबंध हो जाना चाहिये।

सिफारिशों का प्रभाव—इस कमीशन की पहिली सिफारिश के अनुसार कई विश्वविद्यालय स्थापित हुये। १९२१ तक बनारस, पटना, ढाका, हैदराबाद, मैसूर, अलीगढ़ और लखनऊ के विश्वविद्यालय स्थापित हो चुके थे, जिनमें शिक्षा का कार्य उसी नगर में केन्द्रित था। कलकत्ता तथा बम्बई में विभिन्न विषयों के प्रोफेसर नियत हुये और डिग्री प्राप्त विद्यार्थियों की शिक्षा का भी प्रबंध हुआ।

दूसरी और तीसरी सिफारिश कुछ ही प्रांतों में कार्यान्वित हुई। हमारे प्रांत में भी माध्यमिक शिक्षा बोर्ड (Board of High School and Intermediate Education) बन गया।

सरकार ने विश्वविद्यालयों को अधिकाधिक सहायता देना भी आवश्यक मानकर स्वीकार कर लिया। १९०४ ई० तक विश्वविद्यालयों का कार्य इतना सीमित था कि फ़ीस से ही उनका ख़र्च चल जाता था। इसके पहिले केवल पंजाब विश्वविद्यालय को प्राच्य कालेज चलाने का व्यय मिलता था। १९०५ से १९१० तक विश्वविद्यालयों को प्रथम बार कालेजों के निरीक्षण, प्रबन्ध तथा भवन-निर्माण के लिये ११$\frac{1}{2}$ लाख रुपया दिया गया। इसके बाद आवश्यकतानुसार विश्वविद्यालयों को रुपया दिया जाने लगा। प्रांतीय सरकारों को भी रुपया दिया गया जिससे वे कालेजों को सुधारने में अधिक धन व्यय कर सकें। १९२१ में सरकारी सहायता सभी विश्वविद्यालयों को मिलने लगी थी।

माध्यमिक शिक्षा (१८८२-१९२१)—माध्यमिक शिक्षा-संबंधी १८८२ के कमीशन की सिफारिशों का वर्णन पहिले हो चुका है। इस काल में प्रांतीय सरकारों ने स्थानीय प्रबन्धकों द्वारा माध्यमिक शिक्षा के विकास पर ज़ोर दिया। लार्ड कर्जन के समय तक एक हज़ार से अधिक नये माध्यमिक शिक्षालय खुल चुके थे। सहायता का आधार विभिन्न

प्रांतों में अलग-अलग था। हमारे प्रांत में निश्चित सहायता के अतिरिक्त उपस्थिति तथा परीक्षाफल के सुधारने पर अतिरिक्त सहायता भी दी जाती थी।

व्यावसायिक और उपयोगी शिक्षा के विकास के लिये विभिन्न प्रांतों में प्रवेशिका के अतिरिक्त एक और परीक्षा का आयोजन हुआ। १८८६ से मद्रास में विद्यालय की प्रवेशिका के समान ही सरकारी परीक्षा कमिशनर एक और परीक्षा का प्रबंध करता था, जिसमें दो वर्ष के अध्ययन के बाद परीक्षार्थी सम्मिलित होते थे। इस परीक्षा में अंग्रेज़ी, एक देशी भाषा, गणित, इतिहास तथा भूगोल अनिवार्य विषय थे। इनके साथ ही किन्हीं दो टेक्निकल अथवा व्यावसायिक वैकल्पिक विषयों में भी परीक्षा देना होती थी। इस परीक्षा एवं प्रवेशिका परीक्षा में से किसी को भी उत्तीर्ण कर लेने पर सरकारी नौकरी मिल सकती थी किन्तु उच्च शिक्षा के लिये विश्वविद्यालय में प्रवेश करने का अधिकार केवल प्रवेशिकोत्तीर्ण छात्रों को ही था फलतः कर्जन के समय तक पचास से भी कम परीक्षार्थी इसमें सफल हुये थे।

बम्बई ने भी स्कूल फाइनल परीक्षा प्रथा निकाली और सरकारी नौकरियों के लिये प्रवेशिका परीक्षा के स्थान पर इसी को पास करना आवश्यक ठहराया। परीक्षार्थियों को दोनों परीक्षाओं में साथ ही साथ बैठने की स्वतंत्रता भी दे दी गई क्योंकि इस परीक्षा में पास होने के बाद भी कालेजो में भरती न हो सकती थी। लार्ड कर्जन के समय इस परीक्षा में प्रति वर्ष एक हज़ार से भी अधिक विद्यार्थी सम्मिलित होने लगे थे।

बंगाल में इंजीनियरिंग परीक्षा द्वारा इंजीनियरिंग कालेज का कुछ पाठ्यक्रम स्कूलों में पढ़ाया जाने लगा और १६०२ में एक व्यावसायिक परीक्षा का प्रबंध भी हुआ जिसमें अंग्रेज़ी, भूगोल, इतिहास, प्रांतीय भाषा और ड्राइंग पाठ्य विषय रक्खे गये।

प्रयाग विश्वविद्यालय ने प्रवेशिका के समान ही स्कूल फाइनल परीक्षा लेना शुरू किया और दोनों ही परीक्षाओं के बाद कालेज प्रवेश का अधिकार दिया गया। केवल स्कूल फाइनल परीक्षा के वैकल्पिक विषय भिन्न रखे गये तथा ड्राइंग, रसायन और नैतिक शास्त्र, कृषि, अर्थशास्त्र इत्यादि। पंजाब ने भी अलग-अलग परीक्षाओं का प्रबन्ध किया। वहाँ भी व्यावसायिक परीक्षा के बाद विश्वविद्यालय की शिक्षा से वंचित होना पड़ता था।

इन सभी प्रथाओं में बम्बई प्रांत और प्रयाग विश्वविद्यालय की पद्धतियां ही सफल हो सकती थीं।

प्रांतीय भाषाओं को माध्यम बनाने की दिशा में इस काल में कोई प्रगति न हुई। माध्यमिक अध्यापकों की दीक्षा के लिये नये कालेज खुल रहे थे। दो कालेज लखनऊ तथा प्रयाग में भी खुले जिनके विद्यार्थी सी० टी० की परीक्षा पास करते थे।

१६०४ का भारत सरकार का शिक्षा संबंधी प्रस्ताव—इसके बाद १६०४ के कर्जन के शिक्षा प्रस्ताव ने माध्यमिक शिक्षा को सुधारने की योजना प्रस्तुत की। इस योजना का उद्देश्य सरकार तथा विश्वविद्यालयों के नियंत्रण को और दृढ़ करके स्कूलों की कुशलता बढ़ाना था।

स्कूलों की कुशलता में वृद्धि—इस प्रस्ताव में १८५४ से हुये शिक्षा सम्बन्धी सरकारी प्रयासों की प्रशंसा के बाद माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा के मुख्य दोषों का वर्णन करते हुये कहा गया था कि शिक्षार्थी अधिकांशतया सरकारी नौकरियों को ही लक्ष्य मानते हैं, अतः परीक्षायें पास करना ज्ञान प्राप्त करने से अधिक महत्वपूर्ण बन गया है। इसी कारण अंग्रेज़ी भाषा का अधिक प्रचार है, प्रांतीय भाषाओं की अवहेलना हो रही है तथा विद्यार्थियों के मानसिक विकास के स्थान पर रटाई द्वारा स्मरणशक्ति ही बढ़ी है। साहित्यिक विषयों की भरमार भी एक दोष है। अतः उच्चतर शिक्षा का आधार और स्वरूप बदलना आवश्यक था।

इस दिशा में कर्ज़न की नीति स्कूलों के संबन्ध में भी वही थी, जो कालेजों के प्रति थी, अर्थात् नियंत्रण, निरीक्षण और आर्थिक सहायता द्वारा शिक्षालयों के स्तर को ऊंचा उठाना, और उनकी संख्या में येन केन प्रकारेण वृद्धि करने की नीति को त्याग देना। १९०४ के सरकारी प्रस्ताव में सरकार ने उन्हीं स्कूलों को स्वीकृति, सहायक अनुदान और छात्रवृत्तियां देने की प्रथा निकाली, जो आवश्यक हों, प्रतियोगिता के लिये कम फीस न लेते हों, जिनके अध्यापकों की योग्यता और संख्या पर्याप्त हो, जिनमें छात्रावास हों, पढ़ाई का उचित प्रबन्ध हो, तथा जिनकी आर्थिक स्थिति दृढ़ और प्रबन्धक समितियां ठीक से संगठित हों। इसके पहिले भी सरकारी सहायता के लिये कुछ नियम थे, पर उन नियमों को न मानने पर केवल सरकारी सहायता से वंचित होना पड़ता था। नये सुधार का भी वही हाल न हो, इसलिये सरकार ने इन नियमों को न मानने वाले स्कूलों को विश्वविद्यालय तथा सरकारी परीक्षाओं में परीक्षार्थी भेजने से मना कर दिया। इन स्कूलों के विद्यार्थी न तो प्राइवेट परीक्षार्थी की हैसियत से ही उनमें बैठ सकते थे, और न स्वीकृत स्कूलों में भरती ही हो सकते थे। इन सब नियमों का यह प्रभाव पड़ा कि सभी माध्यमिक शिक्षालयों के लिये सरकारी नियंत्रण तथा निरीक्षण में आना और अपनी पढ़ाई को सुधारना अनिवार्य हो गया। इन नियमों की भी विश्वविद्यालय क़ानून के समान आलोचना हुई।

एस-एल-सी (School Leaving Certificate) परीक्षा—पाठ्यक्रम के बारे में इस प्रस्ताव में कहा गया था कि स्कूल फाइनल जैसी परीक्षायें व्यावसायिक तथा व्यापारिक विषयों को लोकप्रिय बनाने में सफल नहीं हुई थीं। इसी प्रकार की एक परीक्षा एस० एल० सी० सरकारी नौकरी के लिये आवश्यक कर दी जावे अर्थात् प्रवेशिका परीक्षा के बाद सरकारी पद न मिलें। एस० एल० सी परीक्षा

को स्कूलों के व्यावहारिक पाठ्यक्रम के आधार पर बनाया जावे पाठ्यक्रम को ही इस परीक्षा के अनुसार बनाना ध्येय न होगा।

माध्यम—माध्यम के बारे में इस प्रस्ताव ने कोई स्पष्ट नीति घोषित न करते हुये भी मातृभाषा पर अधिक ध्यान देने की सिफारिश की थी। उसकी एक सिफारिश यह भी थी कि बिना मातृभाषा को पूर्णतया सीखे अंग्रेज़ी की शिक्षा न आरम्भ हो तथा जब तक बालकों को अंग्रेज़ी का ज्ञान अच्छी प्रकार से न हो जाय उसे शिक्षा का माध्यम न बनाया जावे ; अंग्रेज़ी को माध्यमिक कक्षाओं से ही पाठ्यक्रम में रखा जाय। इस शिफारिश पर हमारे प्रांत में अब दो वर्ष से अमल आरम्भ हुआ है।

व्यावसायिक शिक्षा—व्यावसायिक शिक्षा के बारे में भी इस प्रताव में महत्वपूर्ण बातें थीं, जिनको व्यवहार में लाने से सफलता अवश्य मिलती। प्रस्ताव में कहा गया था कि अभी तक व्यावसायिक शिक्षा सरकारी पदों के लिये इंजीनियर, ओवरसियर, डाक्टर, अध्यापक मिस्त्री और कारीगर तैयार करने ही तक सीमित है। उसे बढ़ाकर देश की व्यावसयिक आवश्यकताओं के अनुरूप बनाना चाहिये। इस टेक्निकल शिक्षा का आधार साधारण उदार शिक्षा होना चाहिये जो साधारण स्कूलों में दी जावे। कलाओं के शिक्षालयों में ऐसी शिक्षा दी जावे, जो विद्यार्थियों को भारतीय कलाओं के व्यवसायों में लगा दे तथा उनकी उन्नति में सहायक हो। व्यावसायिक स्कूलों में भी ऐसी शिक्षा मिले जिसे पाकर विद्यार्थी व्यवसाय-दक्ष मिस्त्रियों की तुलना में कम योग्य न सिद्ध हों। कृषि-शिक्षा का इस देश में बहुत विकास होना चाहिये क्योंकि अधिकांश जनता खेती पर निर्भर रहती है। दीक्षांत विद्यालयों में पढ़ाने की प्रायोगिक शिक्षा भी सिद्धांतों के साथ ही मिलना चाहिये। इस प्रकार सभी व्यवसायों की उचित शिक्षा के प्रबंध पर इस प्रस्ताव ने ज़ोर दिया।

निरीक्षण—आगे चल कर इस प्रस्ताव में कहा गया था कि निरीक्षकों का कार्य शिक्षालयों की सफलता आंकने के साथ ही उचित परामर्श देना भी है। सभी सरकारी विद्यालयों को प्रबंधक समितियों को सौंपने की नीति* में सरकार को परिवर्तन करना चाहिये, यद्यपि १८८२ के कमीशन का मत वही था। सरकार को आदर्श स्थापित करने के लिये कुछ स्कूल अपने प्रबन्ध में भी रखना चाहिये।

१९१३ का भारतीय शिक्षा नीति पर सरकारी प्रस्ताव—इस अंतिम विचार को कि सरकारी शिक्षालय प्रबंधक समितियों को हर्गिज़ न दिये जावें, बल्कि उन्हें आदर्श विद्यालय बनाया जावे, १९१३ के प्रस्ताव ने और भी दृढ़ कर दिया।

इस प्रस्ताव में शिक्षालयों की शिक्षा का स्तर उठाने और व्यावहारिक विषयों-यथा मैनुअल ट्रेनिंग, बाग़बानी, प्रायोगिक भूगोल साधारण विज्ञान आदि के द्वारा विद्यार्थियों को उपयोगी शिक्षा की ओर झुकाने का सुझाव भी था।

अध्यापकों के बारे में इस प्रस्ताव में यह मत व्यक्त किया गया था कि अदीक्षित अध्यापकों को प्रारंभिक तथा माध्यमिक विद्यालयों में पढ़ाने का अधिकार ही न हो। अध्यापकों का वेतन बढ़ाया जावे और उन्हें पेंशन अथवा प्राविडेंट फंड की सुविधा दी जावे। दीक्षा का यथार्थ परिस्थितियों से संबन्ध रखने के लिये दीक्षांत कालेजों का स्कूलों से संबन्ध रहना चाहिये।

अतः दीक्षांत विद्यालयों की संख्या का बढ़ना अनिवार्य हो गया। १९२१ में से वह विद्यालय अंग्रेज़ी स्कूलों के शिक्षक दीक्षित करते थे यद्यपि शताब्दी के आरंभ में वे केवल छः ही थे। फिर भी अभी बहुतेरे शिक्षक अदीक्षित थे। माध्यमिक विद्यालयों की संख्या भी बीस

---

* हमारे प्रांत में भी सरकार ने दिल्ली कालेज और कुछ स्कूल प्रबंधक समितियों को हस्तांतरित कर दिये थे।

वर्षों में ड्योढ़ी होकर सात हज़ार से अधिक हो गई और विद्यार्थियों की संख्या तो दूनी होकर दस लाख के ऊपर पहुँच गई। माध्यमिक शिक्षा पर सरकारी व्यय भी उत्तरोत्तर बढ़ता ही रहा। १६२१ तक यह ख़र्च प्रायः पांच लाख होगया अर्थात् पिछले बीस वर्षों में वह चौगुना हो गया था।

इस काल में भी माध्यम पद पर अंग्रेज़ी ही डटी रही। यद्यपि १६१५ ई० में व्यवस्थापिका सभा में भी प्रांतीय भाषाओं को माध्यम और अंग्रेज़ी को अनिवार्य विषय बनाने का प्रस्ताव किया जा चुका था। इस प्रस्ताव का विरोध मुख्यतया आधार पर किया गया था कि अंग्रेज़ी अंतर्प्रांतीय भाषा है। यदि उस का ज्ञान घट जायगा तो वह भारतीय एकता में सहायक न हो सकेगी, प्रांतीय भाषाओं में न पाठ्य पुस्तकें हैं, न उसमें वांछित शब्द भांडार है और न उनके द्वारा पढ़ाने वाले अध्यापक। यह निश्चय बहुत ही दोषपूर्ण था। प्रांतीय भाषाओं और शिक्षा की समुचित उन्नति में यह प्रस्ताव बराबर बाधा डालता रहा।

लार्ड कर्जन के शिक्षा प्रस्ताव के बाद उपयोगी शिक्षा को अधिक बढ़ाने के लिये सभी प्रांतों ने प्रवेशिका के अतिरिक्त स्कूल फाइनल परीक्षा को अधिक आकर्षक बनाने का प्रयास किया था। मद्रास को इसमें सबसे अधिक सफलता मिली। यहां पर एल. सी. प्रथा निकली थी जिसके अनुसार सरकारी नौकरियों के लिये किसी सार्वजनिक परीक्षा के स्थान पर प्रधानाध्यापक का प्रमाण पत्र ही काफी था, जिसमें विद्यार्थी की योग्यता का पूर्ण विवरण रहता था। पाठ्यक्रम तीन भागों में बटा था (अ) अनिवार्य तथा परीक्षण के विषय, अंग्रेज़ी प्रांतीय भाषा तथा प्रारंभिक गणित, (अ) भूगोल इतिहास, साधारण विज्ञान, ड्राइंग, शारीरिक व्यायाम, और लड़कियों के लिये घरेलू काम। इन विषयों में परीक्षा नहीं होती थी क्योंकि

विभिन्न पदों के लिये इनका निश्चित और समान ज्ञान आवश्यक न था। (इ) वैकल्पिक किन्तु परीक्षा के विषय इनमें गणित, विज्ञान, बीजगणित, ब्रिटिश इतिहास, प्रांतीय और प्राचीन भाषायें, टाइप-राइटिंग, हिसाब-किताब, कृषि, ंगीत, दर्ज़ी का काम इत्यादि विषय थे। इनमें से कुछ को ही प्रत्येक विद्यार्थी पढ़ता था और उन्हीं के आधार पर वह व्यावसायिक अथवा सरकारी पदों के योग्य मान लिया जाता था। विश्वविद्यालय और टेक्निकल शिक्षालयों में प्रवेश भी उन्हीं के आधार पर उसे मिल जाता था।

इस प्रथा के लोकप्रिय होने में तो संदेह न था क्योंकि बिना सार्वजनिक परीक्षाओं के ही सब काम चल जाता था, पर इसके द्वारा भी व्यावसायिक और उपयोगी शिक्षा की ओर अधिक विद्यार्थी न झुके।

हमारे प्रांत में अब भी एस. एल. सी, पहिले ही के समान विश्वविद्यालय की परीक्षा बनी रही, और उसमें अंग्रेज़ी, प्रांतीय भाषा, भारतीय इतिहास-भूगोल और गणित के अनिवार्य विषयों के साथ बहुत से वैकल्पिक विषय भी थे, यथा संस्कृत, अरबी, लैटिन, कामर्स रसायन और भौतिक विज्ञान, ड्राइग, घरेलू काम इत्यादि। यहां भी कामर्स, मैनुअल ट्रेनिंग कृषि आदि उपयोगी विषय अधिक लोकप्रिय न सिद्ध हुये क्योंकि शारीरिक श्रम को हेय एवं इन विषयों को अकुशल विद्यार्थियों के ही लिये ठीक माना जाता था।

बम्बई ने प्रवेशिका और एस. एल. सी. को अलग रखा और उन्हें पास करना क्रमशः विश्वविद्यालयों और सरकारी नौकरियों में प्रवेश करने के लिये आवश्यक था। एक परीक्षा से एक ही कार्य हो सकता था। वहां एस. एल. सी. में हमारे ही प्रांत के अनिवार्य विषय

किन्तु वैकल्पिक विषय सीमित थे। वहां कुछ विषयों में प्रांतीय भाषा के माध्यम से परीक्षा देने की विधि भी चालू हुई जो वास्तव

में उपयोगी थी। बंगाल एवं पंजाब में पुरानी प्रथा ही चलती रही इस प्रकार एस० एल० सी० परीक्षा विद्यार्थियों को उपयोगी और व्यावसायिक शिक्षा की ओर ले जाने के उद्देश्य में कृतकार्य न हो सकी।

प्रारंभिक शिक्षा १८८२-१९२१—इस काल में प्रारंभिक शिक्षा का विकास सरकारी प्रस्तावों की लम्बी चौड़ी बातों के अनुरूप नहीं हो पा रहा था। १८८२ के कमीशन ने इस ओर सरकार के अधिक ध्यान देने की सिफारिश की थी किन्तु सरकारी व्यय माध्यमिक और उच्च शिक्षा पर ही अपेक्षा कृत से अधिक बढ़ा। १८८२ में प्रारंभिक शिक्षा पर सरकारी व्यय १६ लाख से अधिक था और शताब्दी के अंत तक भी कुछ हज़ार ही बढ़ा था। जनता द्वारा किया हुआ व्यय अवश्य २६ लाख से ४३ लाख हो गया था। इसका मुख्य कारण स्थानीय स्वशासन संस्थाओं की स्थापना था, जिनका एक प्रमुख और अनिवार्य कर्तव्य शिक्षा था। विद्यार्थियों की संख्या भी सरकारी बोर्ड स्कूलों तथा सहायता पाने वाले स्कूलों में मिलाकर २० लाख से बढ़ कर तीस लाख हो गई। किन्तु प्रारंभिक शिक्षा में अधिक विकास नहीं हुआ क्योंकि देशी स्कूल धीरे-धीरे नष्ट हो गये थे। इसका मुख्य कारण यह था कि बोर्ड और सरकार इस समय स्कूलों को उनके परीक्षाफलों के आधार पर सहायता देते थे और परीक्षायें सरकारी योजना के पाठ्यक्रम के अनुसार होती थीं। अस्तु देशी शिक्षालय इस सहायता से वंचित रहते थे। सरकार तथा बोर्ड उनके निकट ही अपने स्कूल खोल कर भी उन्हें हानि पहुँचाते थे।

१९०४ का सरकारी प्रस्ताव—फल यह हुआ कि १९०१ की जन गणना में प्रायः दस प्रतिशत जनता शिक्षित थी। १९०४ के सरकारी प्रस्ताव से पता चलता है कि केवल २२ प्रतिशत लड़के और ढाई प्रतिशत लड़कियां शिक्षा पा रही थीं। जन संख्या बढ़ रही

थी किन्तु शिक्षा-प्रयास उसी वेग से नहीं बढ़ पा रहा था। * इसी प्रस्ताव में सरकार ने प्रांतीय भाषाओं द्वारा जनता की प्रारंभिक तथा उपयोगी शिक्षा को सक्रिय रूप से बढ़ाना स्वीकार किया क्योंकि अशिक्षित जनता पर शासन करना कठिन होता है।

यातायात के साधनों में काफ़ी उन्नति हो गई थी। अतः जनता का आर्थिक विकास भी हुआ था। अपने भूमि सम्बन्धी अधिकारों की रक्षा भी जनता को करना थी। अशिक्षित रहकर इन सब बातों की उचित व्यवस्था करना उसके लिये सम्भव नहीं था। सरकार ने स्वीकार किया कि मुख्य कठिनाई आर्थिक सहायता की है और सरकार उसका प्रबन्ध करेगी। इसी प्रस्ताव में यह भी स्वीकार किया गया कि प्रारंभिक शिक्षा के आर्थिक भार को वहन करने का दायित्व भारतीय तथा प्रांतीय दोनों ही सरकारों का है; प्रांतीय आय का तो बहुत बड़ा भाग शिक्षा पर ही व्यय होना चाहिये।

शिक्षा पर व्यय बढ़ा, परीक्षाफलों के आधार पर दी जाने वाली सहायता की प्रथा १९०६ में बंद हो गई। उसके स्थान पर अब अध्यापकों तथा विद्यार्थियों की संख्या, पाठ्यक्रम, पढ़ाई की कुशलता एवं स्कूल की आवश्यकताओं का ध्यान रख कर सहायता दी जाने लगी।

गोखले और अनिवार्य तथा निःशुल्क शिक्षा—१९०७ ई० में ही बड़ौदा सरकार ने अनिवार्य शिक्षा का प्रबंध किया था। १९१० में श्री गोपाल कृष्ण गोखले ने कौंसिल में प्रस्ताव रखा कि

---

* विकेंद्रीकरण के समय साढ़े सोलह हज़ार प्रारंभिक स्कूलों में छः लाख विद्यार्थी शिक्षा पा रहे थे। हन्टर कमीशन के समय प्रायः ८३ हजार स्कूलों में साढ़े बीस लाख विद्यार्थी थे। इसके बाद बीस वर्षों के प्रयास के बाद भी १९०२ में ९०९३८ स्कूलों में प्रायः साढ़े बत्तीस लाख ही विद्यार्थी थे।

शिक्षा को निःशुल्क और अनिवार्य बनाने की ओर सरकार कदम उठावे। सरकार द्वारा आश्वासन देने पर यह प्रस्ताव वापस ले लिया गया। उसी वर्ष भारत सरकार ने शिक्षा-विभाग को गृहविभाग से अलग कर दिया। फिर भी उपर्युक्त विषय में कुछ न हुआ। अतएव श्री गोखले ने १६११ में दूसरा प्रस्ताव रखा जिसके अनुसार किसी भी क्षेत्र में सरकार की अनुमति लेकर बोर्ड अनिवार्य शिक्षा चालू कर सकते थे। यह प्रस्ताव प्रांतीय सरकारों, विश्वविद्यालयों और बोर्डों के पास विचार प्रकट करने के लिये भेजा गया। १६१२ में जब गोखले ने उसे विशेषज्ञ समिति (Select Committee) में भेजने का प्रस्ताव रखा तो वह अस्वीकृत हो गया। सरकारी पत्र के मुख्य तर्क निम्न लिखित थे:—अनिवार्य शिक्षा की मांग जनता की मांग नहीं है, वैकल्पिक व्यवस्था के होते हुये भी प्रारंभिक शिक्षा के विकास के लिये पर्याप्त क्षेत्र है, साधनों की कमी है इसे लागू करने में कठिनाई है, जनता को इससे कष्ट होगा, क्योंकि ग़रीब जनता को अपने बच्चों की अनुपस्थिति के लिये दंड भी अवश्य देना होगा। इस प्रकार यह आवश्यक प्रयास निष्फल हो गया। फिर भी उसका ऐतिहासिक महत्व तो रहा ही और आगे चलकर उसने पथप्रदर्शक का काम किया।

दिल्ली दर्बार १६११ तथा १६१३ का सरकारी प्रस्ताव— इसी बीच दिल्ली दर्बार में सम्राट ने शिक्षा पर व्यय बढ़ाने की इच्छा घोषित की अतः सरकार ने लोक शिक्षा के लिये ५० लाख वार्षिक अधिक देना स्वीकार किया। १६१३ में सरकार ने अपने प्रस्ताव में यह स्वीकार कर लिया कि निरक्षरता को मिटाना उसका कर्तव्य है यद्यपि निःशुल्क अनिवार्य शिक्षा का समय अभी नहीं आया है। उसमें यह भी कहा गया कि प्रांतीय सरकारें पिछड़े हुये निर्धन वर्गों की निःशुल्क शिक्षा का प्रबंध करेंगी।

इसी प्रस्ताव में कहा गया था कि निम्नतर प्रारंभिक शिक्षालयों का अत्यधिक विकास अपेक्षित है। इन शिक्षालयों के पाठ्यक्रम में भाषा, गणित, ड्राइंग, प्रारम्भिक भूगोल, साधारण विज्ञान और व्यायाम रखने की योजना थी। उपर्युक्त केंद्रों पर उच्चतर प्रारंभिक शिक्षालय स्थापित करने का विचार भी इसमें प्रकट किया गया था। सरकार की इच्छा थी कि उस समय के एक लाख स्कूल तथा ४० लाख विद्यार्थी बढ़ाकर दुगने कर दिये जाँय। यह भी सोचा गया था कि इस विकास में यथासंभव बोर्ड के स्कूल ही स्थापित हों।

१९१७ के बाद विभिन्न प्रांतों ने अनिवार्य तथा निःशुल्क शिक्षा के लिये कानून बनाये। १९१८ में बम्बई, तथा १९१९ में पंजाब, संयुक्त प्रांत बंगाल तथा बिहार-उड़ीसा में तथा १९२० में मध्यप्रांत तथा मद्रास में ऐसे कानून बने और इस प्रकार गोखले का कार्य कुछ सीमा तक सफल हुआ।

फल—इस काल के अंत में प्रारंभिक शिक्षा का भविष्य उज्ज्वल था। किन्तु अभी ३३% से कम लड़के ही शिक्षा पा रहे थे। साक्षरता पुरुषों में १४% और स्त्रियों में २% थी। इस प्रकार जनता की साक्षरता ७% थी। हमारे प्रांत में साक्षरता ४% से कम थी। प्रेसीडेंसियों में प्रायः ९% थी। बम्बई, संयुक्त प्रांत, मध्यप्रांत, पश्चिमोत्तर सीमाप्रांत, पंजाब तथा आसाम में बोर्ड के प्रारंभिक स्कूल ही अधिक थे, किन्तु बंगाल और मद्रास में सहायता पाने वाले प्रारंभिक स्कूल अब भी अधिक थे इस प्रकार निरक्षरता का संग्राम जीतना अभी शेष था।

अध्यापकों की दीक्षा—इसकाल में प्रारंभिक शिक्षालयों के अध्यापकों की दीक्षा का प्रबंध भी बढ़ा। ग़दर से पहिले बम्बई में नार्मल कक्षायें थीं तथा बनारस में एक नार्मल स्कूल था। हमारे प्रांत में तीन और नार्मल स्कूलों की स्वीकृति मिल चुकी थी। मद्रास

का नार्मल स्कूल प्रारंभिक तथा माध्यमिक दोनों ही प्रकार के अध्यापकों को दीक्षित करता था। बंगाल में भी चार नार्मल स्कूल प्रारंभिक शिक्षकों के लिये थे। इनका वर्णन अन्यत्र हो चुका है।

१८५७-८२—इसके बाद बंगाल में नार्मल स्कूल प्रथा द्वारा सरकार ने प्रारंभिक अध्यापकों की दीक्षा का प्रबंध किया था। अतः १८७४ तक नार्मल स्कूलों की संख्या ४६ हो गई। बाद में सरकार ने इस व्यय को घटाने के उद्देश्य से १८८२ तक उनकी संख्या अठारह कर दी। बम्ब में इसी काल में नौ दीक्षांत विद्यालय खुले। किन्तु प्रांत के एक तिहाई अध्यापक ही दीक्षित थे। मध्य प्रांत में शिक्षा का विकास कम हुआ था अतः वहाँ प्रायः दो तिहाई अध्यापक दीक्षित थे यद्यपि वहां केवल चार ही दीक्षांत विद्यालय थे। मद्रास में ३२ नार्मल स्कूल थे और प्रायः एक चौथाई शिक्षक दीक्षित संपूर्ण भारत में १०६ नार्मल स्कूल । १८८२-१६२१ कमीशन ने इन नार्मल स्कूलों को सुधारने और बढ़ाने की शिफारिश की थी। सरकार ने अपने व्यय से यह कार्य आरंभ किया। १६२२ में ग्यारह सौ के लगभग दीक्षांत विद्यालय थे, जिनमें प्रायः डेढ़ सौ स्त्रियों के लिये थे। इनमें करीब पचीस हज़ार शिक्षक दीक्षा पा रहे थे। फिर भी दीक्षित और अदीक्षित अध्यापकों का अनुपात २ : ५ था।

१६१३ के सरकारी प्रस्ताव ने इस दिशा में भी कुछ सुधार किये। सब से मुख्य शिफारिश इस प्रस्ताव ने यह की थी कि दीक्षांत विद्यालयों में व्यावहारिक दीक्षा के लिये स्कूल ज़ोड़ दिये जायँ। मिडिल पास विद्यार्थियों की दीक्षा एक वर्ष की तथा कक्षा चार पास विद्यार्थियों की दीक्षा दो वर्ष की करने का सुझाव भी इस प्रस्ताव में था। अध्यापकों को अधिक वेतन और प्राविडेन्ड फंड अथवा पेंशन देने की शिफारिश भी भारत सरकार ने की थी। इन प्रस्तावों का प्रभाव अध्यापकों की कुशलता पर पड़ना अनिवार्य था।

उपसंहार—इस प्रकार हस्तांतरित विषय बनने के समय शिक्षा को और भी द्रुतगति से बढ़ाने की आवश्यकता था। अध्यापकों की दीक्षा और व्यावसायिक शिक्षा का समुचित प्रबंध होना शेष था। प्रांतीय भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनाना आवश्यक था। इन सब के लिये सरकारी कोष से अधिक रुपये और अधिक सक्रिय सरकारी नीति की अपेक्षा थी।

सारांश

१८५४–१८८२—इस काल में उच्च शिक्षा के लिये तीन प्रेसीडेंसी विश्वविद्यालय खुले जो केवल परीक्षायें लेते थे। इनका प्रभाव यह पड़ा कि १८८२ तक कालेजों की संख्या ७२ हो गई, जिनमें ३४ गैर सरकारी थे। भारतीयों के प्रबन्ध में भी पांच कालेज थे। व्यावसायिक तथा उपयोगी शिक्षा का प्रसार कम हो रहा था, उदार शिक्षा का ही प्रबन्ध अधिकांश कालेजों में था।

१८८२ के कमीशन ने कालेज शिक्षा पर भी कुछ सिफारिशें की थीं। कालेजों की शिक्षा अधिक उपयोगी और ठोस बनाने के लिये कमीशन ने सलाह दी थी कि सहायक अनुदान प्रथा का आधार परीक्षा फलों के स्थान पर कालेजों का व्यय, कुशलता और स्थानीय आवश्यकता को माना जावे, जिससे सांस्कृतिक तथा साहित्यिक शिक्षा के साथ ही भौतिक, व्यावसायिक अथवा उपयोगी किन्तु अनाकर्षक शिक्षा का प्रसार बढ़े।

कमीशन का मत था कि विदेशों और देशी कालेजों में अधिकाधिक सरकारी छात्रवृत्तियों द्वारा उच्चतर शिक्षा को प्रोत्साहन दिया जावे।

नैतिक शिक्षा, फीस और नये प्रांतों में कालेजों के बारे में भी कमीशन ने कुछ सिफारिशें की थीं।

इस काल में माध्यमिक शिक्षा के लिये प्रत्येक ज़िले में एक

सरकारी हाई स्कूल खोलने का प्रबंध हुआ; प्राय: बारह सौ सरकारी हाई तथा मिडिल स्कूल खुले। इनके सिवा दो हज़ार से अधिक ग़ैर सरकारी माध्यमिक शिक्षालय थे जिनमें प्राय: ६०% भारतीयों के हाथ में थे। इस प्रकार भारतीयों ने अब ग़ैर सरकारी शिक्षा के क्षेत्र में क़दम बढ़ाया।

इस काल की माध्यमिक शिक्षा के मुख्य दोष ये थे :—अध्यापकों की दीक्षा का समुचित प्रबन्ध न होना, माध्यम के लिये अंग्रेज़ी का अधिकाधिक प्रयोग, और व्यावसायिक तथा उपयोगी शिक्षा की कम उन्नति।

प्रारंभिक शिक्षा के लिये इस काल में अधिकतर सरकारी स्कूलों की योजना ही अधिक अपनाई गई। साथ ही देशी स्कूलों के सुधार का कार्य भी चलता रहा। बंगाल ने पहिली के बजाय दूसरी योजना पर अधिक बल दिया अत: वहाँ प्रारंभिक शिक्षा का विकास अन्य प्रांतों से अधिक हुआ। १८५६ ई० में भारतमंत्री ने १८५४ के सरकारी पत्र के विपरीत प्रारंभिक शिक्षा के लिये सहायक अनुदान प्रथा को अनुपयुक्त स्वीकार करके सरकारी स्कूलों की योजना पर ही अधिक बल दिया था। धन की कमी के कारण इनकी संख्या परिमित ही थी, यद्यपि अधिकतर प्रांतों ने शिक्षा कर लगा दिया था। १८७१ के विकेंद्रीकरण के पश्चात् प्रारंभिक शिक्षा में कुछ अधिक सरगर्मी आई।

१८८२ तक प्रारंभिक शिक्षा की यह दशा थी कि देशी स्कूल मिट रहे थे, इसलिए सरकारी प्रयासों के होते हुये भी शिक्षा के साधन घट ही रहे थे और निरक्षरता की मात्रा बढ़ रही थी।

१८८२ में हन्टर कमीशन ने अन्य विषयों के साथ ही प्रारंभिक तथा माध्यमिक शिक्षा पर भी कुछ सिफारिशें की। मुख्य सिफारिशें निम्नांकित हैं :—

(१) सरकार द्वारा देशी शिक्षालयों का सुधार और प्रोत्साहन।

(२) सरकार का प्रारंभिक शिक्षा पर अधिक ध्यान और व्यय इसका प्रबंध स्थानीय बोर्डों को सौंप देना।

(३) माध्यमिक शिक्षालयों की हाई स्कूल कक्षाओं में प्रवेशिका परीक्षा से भिन्न अधिक व्यावहारिक और उपयोगी पाठ्यक्रम का समावेश।

(४) शिक्षण के सुधार के लिये दीक्षा का प्रबंध तथा स्कूलों को पुस्तकालय, उपकरण, इमारत आदि के लिये भी सरकारी सहायता, और छात्रवृत्तियां।

(५) माध्यमिक शिक्षा का प्रबंध सहायक अनुदान प्रथा द्वारा ही होना। १८८२–१९२१।

१८८२ के कमीशन की सिफारिशों के अनुसार प्रगति होती रही और शताब्दी के अन्त तक शिक्षा-प्रसार पर ही अधिक ध्यान दिया गया। लार्ड कर्जन ने प्रथम बार शिक्षा-प्रसार की तुलना में शिक्षा-सुधार को अधिक महत्व दिया तथा १९०२ में एक कमीशन नियत किया—१९०४ का विश्वविद्यालय कानून बनाया और १९०४ में शिक्षा संबंधी प्रस्ताव पास कराया।

इन सब का प्रभाव यह पड़ा कि विश्वविद्यालयों, कालेजों और स्कूलों पर सरकारी शिक्षा विभाग का प्रभाव बढ़ गया और कुशलता में वृद्धि हुई। इनकी संख्या पहिले तो कुछ घटी पर अधिकतर बढ़ती ही र..

१९१३ के सरकारी शिक्षा प्रस्ताव में सरकार ने प्रथम बार विश्व-विद्यालयों द्वारा उच्च शिक्षा के प्रबंध पर ज़ोर दिया। सैडलर कमीशन (१९१७–१९) ने भी इसी बात की पुष्टि करते हुये माध्यमिक शिक्षा के लिये प्रत्येक प्रांत में शिक्षा बोर्डों की स्थापना द्वारा विश्वविद्यालयों का कार्य केवल उच्चतर शिक्षा तक ही सीमित करने की सलाह दी

कमीशन ने विद्यार्थियों के स्वास्थ्य तथा निवास, अध्यापकों की दीक्षा, स्त्री शिक्षा, टेक्निकल शिक्षा आदि पर भी सिफारिशें की थीं।

इस काल में पंजाब, प्रयाग, बनारस, ढाका, पटना, अलीगढ़, लखनऊ, हैदराबाद तथा मैसूर के विश्वविद्यालय खुले।

बिभिन्न प्रांतों में स्कूल फाइनल अथवा एस० एल० सी० परीक्षा प्रवेशिका के स्तर पर किन्तु उससे भिन्न व्यावहारिक पाठ्यक्रम पर होने लगी। माध्यमिक शिक्षालयों की संख्या भी सात हज़ार हो गई।

प्रारंभिक शिक्षा में इस काल की प्रगति भी धीमी ही रही यद्यपि सरकारी व्यय दिल्ली दरबार के बाद बढ़ा दिया गया था। श्री गोपाल कृष्ण गोखले के अनिवार्य प्रारंभिक शिक्षा संबंधी प्रस्ताव (१९१०-१२) तो न पास हो सके किन्तु उसी प्रेरणा से महायुद्ध के बाद विभिन्न प्रान्तों में अनिवार्य प्रारंभिक शिक्षा के लिये कानून बने।

इस काल के अन्त में साक्षरता ६% ही थी।

प्रश्न

१. १८८२–८३ के शिक्षा कमीशन की नियुक्ति के कारणों और सिफारिशों का वर्णन तथा उनको उपयुक्तता की आलोचना कीजिये।

२. १९०४ के विश्वविद्यालय कानून की प्रमुख धाराओं क उल्लेख करते हुये उसके उद्देश्यों तथा प्रभावों की आलोचना कीजिये।

३. "प्रारंभिक शिक्षा सरकार का ही कर्तव्य होना चाहिये"। १८५४ से १९२१ तक के प्रारंभिक शिक्षा के विकास को ध्यान में रख कर इसकी व्याख्या कीजिये।

४. १८८३ में निर्धारित माध्यमिक शिक्षा संबंधी नीति की आलोचना कीजिये। १९२१ तक इस क्षेत्र में प्रगति कैसे और कितनी हुई?

अध्याय ७

मांटफोर्ड सुधारों के बाद शिक्षा की प्रगति
(१६२१ – ३१)

भूमिका—प्रथम महायुद्ध में भारतीयों ने अपनी विदेशी सरकार की बड़ी सहायता की थी। भारतीय सैनिक संसार के युद्धस्थलों में वीरता दिखा में किसी से पीछे न रहे थे। इस अवसर पर देश के गरम दल के नेताओं को छोड़ कर अन्य लोगों ने अंग्रेज़ों को सहायता देना ही उचित माना था। महात्मा गांधी ने भी इस समय सहयोग ही का मार्ग अपनाया था। उनके सिद्धांतों के अनुसार शोषक शासकों की भी कठिनाइयों से लाभ उठाना धर्म विरुद्ध था और उन्हें ब्रिटिश जाति की नेकनीयती और कृतज्ञता पर विश्वास था। इसी सहयोग के कारण १६१७ ई० में भारत मंत्री ने यहां पर धीरे-धीरे उत्तरदायी शासन स्थापित करने का वचन दिया था। इसी के अनुसार मांटफोर्ड सुधार बने थे। प्रांतीय क्षेत्र में कुछ विषय हस्तांतरि। करके व्यवस्थापिकाओं के प्रति उत्तरदायी मंत्रियों को सौंपना निश्चित हुआ था। हस्तान्तरित विषयों के चुनने में भारत सरकार ने यह आधार रखा था कि वे ही विषय हस्तांरित किये जावें, जिनमें स्थानीय जानकारी की विशेष आवश्यकता है, और जिनमें होने वाली भूलों का सुधार संभव है। इस दृष्टिकोण से प्रांतों में शिक्षा हस्तांतरित होकर व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी मंत्रियों के हाथ में आगयी। केवल यूरोपियनों और ऐंग्लो-इंडियनों की शिक्षा रक्षित विषय रह गई।

मंत्रियों की कठिनाइयां—सभी भारतीय द्वित्वशासन की अव्यवहार्यता से परिचित हैं। मंत्रियों को अपना दायित्व निभाने की सुविधायें न थीं, और सरकार अनुत्तरदायी मंत्रियों को भी बनाये रख सकती थी। इन मंत्रियों को पूर्ण सुविधायें देने के लिये आवश्यक था कि उनके विभागों के व्यय के लिये कुछ आय के साधन निर्दिष्ट कर दिये जाते, और उनकी दरों में हेरफेर का अधिकार भी उन्हें होता जिससे वे अपनी विकास योजनाओं के लिये पर्याप्त साधन एकत्र कर सकते। सन् १९२१ ई० में ऐसा प्रस्ताव भी रखा गया था किन्तु अंत में सभी प्रांतीय विषयों के लिये एक सम्मिलित बजट ही उचित ठहराया गया। अर्थ-विभाग रक्षित विषय था। अतः बजट गवर्नर के सलाह. कार बनाते थे और उस पर मंत्रियों का पूर्ण अधिकार न था। राष्ट्र-निर्माण के लिये परमावश्यक विषयों के लिये जैसे शिक्षा आदि, यथेष्ट धन न मिलना एक साधारण बात थी।

मंत्रियों की दूसरी कठिनाई और भी बड़ी थी। सभी विभागों के उच्च पदाधिकारी भारत मंत्री के नियंत्रण में थे, अतः उन पर मंत्रियों का पूर्ण अधिकार न था। मंत्रियों की योजनाओं को कार्यान्वित करना इन्हीं पदाधिकारियों का काम था। ये लोग योजनाओं को सफल बनाने में सहायक होने के स्थान पर कभी-कभी बाधायें तक डालते थे। नई योजनाओं की सफलता राज कर्मचारियों के सहानुभूतिपूर्ण सहयोग पर निर्भर रहती है। किन्तु उन कर्मचारियों का विचार था कि मंत्रियों को शासन का अनुभव नहीं है अतः उनके सिद्धान्तों का पालन संभव नहीं है ऐसे वातावरण में प्रगति कम होना अनिवार्य था।

एक बात और थी, शिक्षा विभागों की कार्य प्रणाली बड़ी धीमी और उत्साह हीन थी, उसमें परिवर्तन करना टेढ़ी खीर थी। इसके अतिरिक्त देश के लोक प्रिय नेताओं ने इस थोथे विधान में सक्रिय और रचानात्मक भाग लेने से इन्कार कर दिया था। अतः कभी-

कभी ऐसे मंत्रियों के हाथ में शिक्षा विभाग रहता था जिन पर व्यवस्थापिका का विश्वास न होने से उसका भी सहयोग न मिलता था। ऐसे मंत्री गवर्नरों तथा उनके सलाहकारों की इच्छा पर ही अपने पदों पर रहते थे और इसी कारण उनकी इच्छा के विरुद्ध कुछ भी न कर सकते थे। १६३१ के बाद आर्थिक संकट (Economic depression) के कारण हस्तांतरित विषयों पर भी व्यय में कटौती हुई। इन सभी कारणों के फलस्वरूप शिक्षा में अभिवांछित प्रगति न हो पाई। फिर भी इन मंत्रियों ने बड़ा काम किया, जनता में शिक्षा के लिये चाह पैदा की और उस चाह को पूरा करने का भी यथा संभव प्रयास किया।

केंद्रीय सरकार के शिक्षा संबंधी दायित्व में कमी—प्रांतीय द्वित्व शासन की स्थापना के बाद के काल में एक बात और बड़ी मार्के की है। मांटफोर्ड सुधारों ने भारतवर्ष में प्रांतीय स्वायत्त शासन और संघ सरकार को लक्ष्य मान लिया था। अतः अधिकाधिक विषयों में प्रांतों को स्वतंत्रता देने का निश्चय हुआ था। प्रांतीत विषयों पर केंद्रीय सरकार कम से कम हस्तक्षेप करना चाहती थी, यही नीति सम्मिलित विषयों के बारे में थी। शिक्षा प्रांतीय विषय था अस्तु जन-साधारण की शिक्षा के संबंध में केंद्रीय सरकार का दायित्व समाप्त प्रायः हो गया। यद्यपि केंद्रीय कार्य कारिणी में अब भी शिक्षा-सदस्य रहता था परन्तु उसका कार्य क्षेत्र बहुत सीमित हो गया था। अब उसकी देख रेख में बनारस के हिन्दू-विश्वविद्यालय एवं अलीगढ़ के मुस्लिम विश्वविद्यालय जैसी अखिल भारतीय संस्थायें ही बच रही थीं। इसके अतिरिक्त सैनिकों एवं अन्य सरकारी पदाधिकारियों के लिये खोले गये स्कूलों तथा केन्द्रीय शासन के अंतर्गत चीफ कमिश्नरों वाले प्रांतों और राजकुमारों की शिक्षा भी उसी का दायित्व था। इस प्रकार एक भारतीय शिक्षा नीति का अंत हो गया। इसी कारण

साम्राज्य शिक्षा-आंकड़ा समिति (Imperial Bureau of Education) १९२२ में भंग हो गई। अखिल भारतीय शिक्षा सलाहकार समिति (All India Advisory Board of Education) जो १९२० ई० में ही बनी थी वह भी १९२४ ई० से स्थापित कर दी गई। इस प्रकार भारत सरकार ने शिक्षा संबंधी अपने दायित्व को बहुत ही हल्का कर लिया, अब यह आशा की जाने लगी कि प्रत्येक प्रांतीय सरकार अपनी निजी आवश्यकताओं और साधनों के अनुरूप शिक्षा में प्रगति करेगी

शिक्षा संबंधी आवश्यकतायें—१९२१ ई० में इस प्रकार मंत्रियों को शिक्षा का ऐसा विषय मिला जिसमें उनकी कार्यक्षमता निर्बाध थी, यद्यपि व्यावहारिक कठिनाइयां-शासन तथा अर्थ संबंधी थीं। यह क्षेत्र ऐसा था जिसमें अभी बड़ी कमियां थीं, अस्तु मंत्रियों को अपनी योग्यता तथा देश प्रेम को प्रमाणित करने का अवसर भी था। १९२१ ई० की जन गणना में ब्रिटिश भारत में १४·४% पुरुष ही साक्षर थे यदि हम पांच वर्ष के ऊपर वाले व्यक्तियों को ध्यान में रखें। वयस्क पुरुषों में १७% साक्षरता थी। स्त्रियों की साक्षरता २% थी। इन आंकड़ों में पता चलता है कि उत्तरदायी शिक्षा मंत्रियों के सम्मुख एक गम्भीर समस्या थी। एक कठिनाई यह भी थी कि भारतवर्ष जैसे कृषि प्रधान देश में सरकार की आय सीमित थी जिससे साधनों का जुटाना कठिन था। साधनों को पर्याप्त बनाने के मार्ग में हमारी सामाजिक रूढ़ियां भी बाधक थीं। मुसलमान अस्पृश्य तथा सवर्ण हिन्दुओं की शिक्षा का अलग-अलग प्रबंध करने में कुछ फिजूल खर्ची अनिवार्य थी। यदि साधन जुटाये भी जा सकें तो उनसे लाभ उठाने वालों की कमी थी। पानी को घोड़े के सामने ही लाने की आवश्यकता न थी, वरन् उसे पीने के लिये प्रेरणा भी देनी थी। भारतवर्ष की अधिकांश जनता गांवों में रहती है जहाँ

उनके मुख्य उद्यम खेती और घरेलू धंधे हैं। इनके लिये व्यक्त रूप से साक्षरता का कोई महत्व नहीं है। साक्षरता न होने पर भी किसान और व्यवसायी अपना काम चतुरता से चला लेते थे, अस्तु वे शिक्षा को कोई महत्व न देते थे। साथ ही निर्धनता के कारण वे चाहते थे कि बच्चे शीघ्र ही घर के काम धन्धों में हाथ बंटा कर आय बढ़ावें। अतः शिक्षा के साधनों को पर्याप्त मात्रा में जुटाने के साथ ही उसके लिये प्रचार की भी आवश्यकता थी। नागरिकों को अपनी संतान के प्रति दायित्वों का महत्व समझाना था। उन्हें बताना था कि शिक्षा व्यक्ति के लिये एक आवश्यकता है। साक्षर व्यक्तियों को साक्षर बनाये रखने के लिये समुचित साहित्य भी उपलब्ध करना था। दूसरे शब्दों में वयस्क शिक्षा अथवा सामाजिक शिक्षा का आयोजन करना आवश्यक था। निरक्षर वयस्कों को शिक्षित बनाने का भी प्रबंध करना था। इन सब बातों के साथ ही माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा को देश की आवश्यकताओं के अनुरूप बनाना था।

इन मंत्रियों ने अनिवार्य शिक्षा संबंधी कानूनों को लागू किया, तथा आवश्यकतानुसार नये कानून बनाये। हमारे प्रांत में म्युनिसिपैलिटियों के लिये तो १९१९ ई० में अनिवार्य शिक्षा का कानून बन चुका था। उसी प्रकार का कानून जिला बोर्डों के लिये १९१६ ई० में बना। प्रारंभिक शिक्षा के लिये बोर्डों को अधिक सरकारी सहायता भी मिलने लगी। माध्यमिक शिक्षालय भी अधिकाधिक खुलने लगे और सरकारने उदारता से उनकी सहायता की। उच्च शिक्षा के साधनों में भी वृद्धि हुई। १९२८ ई० में साइमन कमीशन वैधानिक प्रगति की जांच के लिये नियत हुआ था। उसने शिक्षा-प्रसार की जांच के लिये एक सहायक समिति (Auxiliary Committee) नियत की थी। इसके सभापति सर फिलिप हर्टाग महोदय थे। अतः इस सहायक समिति की शिक्षा संबंधी रिपोर्ट को "हर्टाग

समिति रिपोर्ट" भी कहते हैं। इस रिपोर्ट में १९२७ ई० तक के शिक्षा विकास का विशेष रूप से वर्णन था, शिक्षा संगठन के दोष दिखाकर उनके दूर करने के लिये कुछ उपाय भी सुझाये गये थे।

हर्टाग समिति की रिपोर्ट—हर्टाग समिति को इस बात का पता लगाना था कि शिक्षा के मुख्य छः अंगों-प्रारंभिक, माध्यमिक, विश्वविद्यालय, अध्यापकों की दीक्षा, टेक्निकल और स्त्री शिक्षा-में संतोषप्रद प्रगति हुई थी अथवा नहीं। यदि प्रगति आशा से कम हुई थी तो उसके आर्थिक, संगठन संबंधी अथवा सामाजिक कारण क्या थे। समिति ने शिक्षा प्रेमियों से इन प्रश्नों के उत्तर के सिवा अनिवार्य प्रारंभिक शिक्षा, नैतिक और धार्मिक शिक्षा, विशेष वर्गों * की शिक्षा स्वास्थ्य-शिक्षा तथा सामाजिक अथवा वयस्क शिक्षा पर स्मृतिपत्र मांगे थे। इनके अतिरिक्त अन्य किसी भी शिक्षासंबंधी विषय पर स्मृति पत्र भेजे जा सकते थे। इन्हीं सूचनाओं के आधार पर समिति ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की थी। पिछले सात आठ वर्ष के प्रयासों का वर्णन करते हुये हर्टाग समिति ने लिखा था कि शिक्षा विकास की समीक्षा करने पर हमें कुछ ऐसी बातों का पता चलता है जो भारत वर्ष के भविष्य के लिये बड़ी महत्वपूर्ण हैं····जनसाधारण की शिक्षा के प्रति उदासीनता समाप्त होरही है। स्त्रियों में शिक्षा और सामाजिक सुधार की मांग जोर पकड़ रही है। मुसलमान शिक्षा में आगे बढ़ रहे हैं। हरिजन भी शिक्षा की ओर झुक रहे हैं। जनमत और नेता शिक्षा के पेचीदे और कठिन मसले को समझने तथा सुलझाने में व्यस्त हैं। शिक्षा मंत्रियों ने शिक्षा-विकास के लिये अनेक व्यय के प्रस्ताव व्यवस्थापिकाओं में रखे जो पास भी हुये।

---

* ऐंग्लो इंडियन, हरिजन, मुस्लिम, सिक्ख आदि।

साइमन कमीशन ने भी प्रारंभिक शिक्षा को इस शीघ्रता से विकास करते देखकर अपनी आलोचना में लिखा था कि मंत्री जनमत के अनुसार काम कर रहे थे और निरक्षरता मिटाने के लिये व्यवस्थापिकाओं में अनुदान आसानी से स्वीकार हो जाते थे। इन अनुदानों की सहायता से मन्त्रियों ने बड़ी तेज़ी से अपने क़दम बढ़ाये। "यदि जनता शिक्षित होना चाहे, उसमें शिक्षा के लिये अभिरुचि जाग्रत की जा सके, अथवा वह कम से कम शिक्षित होने के लिये राज़ी हो तो सुसंगठित उपाय कभी असफल नहीं हो सकते। मंत्रियों ने वह अभिरुचि उत्पन्न कर दी है। अतः मंत्रियों और व्यवस्थापकों ने शिक्षा को ऐसी गति दे दी है, जो पहिले नहीं थी।" इसके प्रमाण में हर्टाग समिति और कमीशन ने आँकड़े दिये थे।

ब्रिटिश भारत में १६१७ ई० में ६४ लाख विद्यार्थी प्रारंभिक शिक्षालयों में थे; १६२७ में यह संख्या बढ़कर ६२ लाख हो गई थी। माध्यमिक विद्यार्थियों में २५% और उच्च शिक्षार्थियों में ५०% वृद्धि हुई थी। कुल विद्यार्थियों की संख्या १६१७ ई० में प्रायः अस्सी लाख थी, १६२२ ई० और १६२७ ई० में यह संख्या क्रमशः प्रायः चौरासी लाख और एक करोड़ पांच लाख हो गई थी। इन्हीं वर्षों में स्वीकृत शिक्षालयों की संख्या भी क्रमशः १५४६५२, १७३३११ और २११०४८ थी। सरकारी विभागों की स्वीकृति के बिना चलने वाले शिक्षालयों की संख्या इन्हीं वर्षों में क्रमशः ३६८०३, ३४८०७ और ३५२१६ थी। १६२७ में अस्वीकृत शिक्षालयों की संख्या बढ़ने का कारण राष्ट्रीय शिक्षालयों का खुलना था। इनमें विद्यार्थियों की संख्या क्रमशः ६४४६३८, ६३६१२५ और ६२८१४६ थी। जिस गति से प्राचीन शिक्षालयों का आकर्षण घट रहा था, उसी गति से राष्ट्रीय शिक्षालय विद्यार्थियों को आकृष्ट न कर पा रहे थे, क्योंकि उनके प्रमाण पत्र सरकार द्वारा स्वीकृत नहीं थे। स्वीकृत शिक्षालयों में

विद्यार्थियों की संख्या सभी कोटि के शिक्षालयों में बढ़ी थी जैसा कि नीचे दी हुई तालिका से स्पष्ट है।

	१६१७	१६२२	१६२७
कालेज और विश्वविद्यालय	५७६७२	५८८३७	८३८६०
हाई स्कूल कक्षायें	२१६१६०	२१८६०६	२३६७८१
मिडिल कक्षायें	३८५३७२	४३४८१०	६३१४६०
प्रारंभिक कक्षायें	६४०४२००	६८६७१४७	६२४७३१७
विशेष शिक्षालय	१४३६०४	१३२७३६	३२८६२०

व्यय भी बड़ी तेज़ी से बढ़ रहा था, जिसका अधिकतर भाग सरकारी ख़जाने से होता था।

लाखों में व्यय

वर्ष	सरकारी	बोर्ड	फ़ीस	अन्य साधन	कुल
१६१७	३६२	२२३	३१८	१६५	११२६
१६२२	६०२	२४७	३८०	३०७	१८३८
१६२७	११६३	३६६	५२१	३७७	२४५८

शिक्षा के विभिन्न अंगों के अनुसार इस व्यय का वितरण निम्नलिखित ढंग से था।

व्यय लाखों में

वर्ष	१६१७	१६२२	१६२७
आर्ट (कला) कालेज	७१	११०	१४६
व्यावसायिक कालेज	३६	६०	७६
माध्यमिक शिक्षालय	३१६	४८७	६६२
प्रारंभिक शिक्षालय	२६३	५०१	६६५
दीक्षांत शिक्षालय	२८	५१	५६
विशेष शिक्षालय	४५	७८	११६

विश्वविद्यालय	२६	७३	१०१
शिक्षाविभाग	५६	६२	१०२
इमारतें	१३७	१६७	२७७
फुटकर	११५	१६८	२२५

सबसे अधिक व्यय विश्वविद्यालयों और प्रारंभिक शिक्षा पर बढ़ा था। इसका मुख्य कारण यह था कि उत्तरदायी मंत्री देश से निरक्षरता का कलंक मिटाने का प्रयास कर रहे थे। इस काल में कुछ नये विश्वविद्यालय खुले थे और इनमें तथा पहिले के विश्वविद्यालयों में पढ़ाई और अनुसंधान का प्रबंध हो रहा था। इस प्रकार हर्टोग समिति और साइमन कमीशन ने पता चलाया था कि पिछले दस वर्षों में विकास प्रारंभिक शिक्षा में ४४·४% मिडिल शिक्षा में ६४% हाई स्कूल शिक्षा में १०% और कालेज शिक्षा में ४५% हुआ था। बालकों की संख्या में ४५% और बालिकाओं की संख्या में ५१% वृद्धि हुई थी।

हमारे प्रांत में स्वीकृत शिक्षालयों, व्यय तथा बालक बालिकाओं की संख्या में भी अधोलिखित प्रगति हुई थी।

		१९१७	१९२२	१९२७
शिक्षालय		१२६१२	१८५५६	२२०६८
विद्यार्थी	बालक	७४२१३४	८७१७५०	११६१२३५
	बालिकायें	६३२८६	६३३०६	११६२१५
कुल व्यय		११७ लाख रु०	२६८ लाख रु०	३३७ लाख रु०

इन आंकड़ों को देकर हर्टोग समिति और कमीशन ने सिद्ध किया कि मंत्री जनता में शिक्षा की मांग तथा उससे प्रेम उत्पन्न करने में सफल हुये थे और इस मांग को पूरा भी किया था। किन्तु कमीशन और समिति को यह विकास खोखला दिखाई दिया। हर्टोग समिति ने लिखा था, समूचे शिक्षा-संगठन में असफलता और अपव्यय स्पष्ट है।

प्रारंभिक शिक्षा में, जिसका उद्देश्य हमारे मत में साक्षरता और मताधिकार का समुचित प्रयोग करना सिखाना है, बहुत ज्यादा अपव्यय हो रहा है। जहां तक हमें मालूम हुआ है प्रारंभिक विद्यार्थियों की संख्या में जितनी वृद्धि हुई है साक्षरता उसी अनुपात में नहीं बढ़ी है क्योंकि प्रारंभिक शिक्षालयों के बहुत ही थोड़े विद्यार्थी कक्षा चार तक पहुँचते हैं, जिसमें पहुँचने पर ही साक्षरता प्राप्त होने की आशा की जा सकती है। एक तो आधुनिक ग्रामीण वातावरण और फिर देशी भाषाओं में उपयुक्त साहित्य के अभाव के कारण स्कूलों को छोड़ने के बाद विद्यार्थी को साक्षरता प्राप्त करने की बहुत कम सुविधा रहती है यथार्थ में साक्षरों के भी निरक्षर हो जाने की ही अधिक सम्भावना है।

लड़कियों की प्रारंभिक शिक्षा में अपव्यय और भी अधिक है।* स्त्रियों और पुरुषों में साक्षरता तथा शिक्षा की असमानता घटने के स्थान पर बढ़ रही है। धनिकों तथा निर्धनों में शिक्षितों के अनुपात की असमानता में भी वृद्धि हो रही है। (अर्थात् लोक शिक्षा की योजनायें पूर्णतया सफल नहीं हो रही हैं)।

माध्यमिक शिक्षा में कुछ मामलों में प्रगति हुई है, यथा आध्यापकों की योग्यता, उनकी दीक्षा और नौकरी की परिस्थितियों में सुधार और माध्यमिक शिक्षालयों के कार्य क्षेत्र में अभिवृद्धि। परन्तु संगठन में बड़े दोष हैं। माध्यमिक शिक्षा का आदर्श अब भी विश्वविद्यालयों में प्रवेश पाना ही है। प्रवेशिका तथा विश्वविद्यालयों की परीक्षा में बहुत से असफल विद्यार्थियों को देखकर इस क्षेत्र के अपव्यय का मान होता है। जो थोड़ा बहुत व्यावसायिक ज्ञानार्जन

---

* बालकों में प्रत्येक छः बालकों में एक और लड़कियों में दश प्रतिशत ही कक्षा चार तक पहुँचते थे, अर्थात् स्थायी रूप से साक्षर होते थे।

का प्रबन्ध है, उसका शिक्षा संगठन से सीधा संबंध नहीं है, अतः वह भी अधिकतर असफल है ।

बहुतेरे विश्वविद्यालयों तथा कालेजों की पाठन विधियों और अनुसंधान में उन्नति हुई, उसमें अब पहिले से कहीं अधिक सामाजिक जीवन का प्रबंध भी है । किन्तु भारतवर्ष में यह विश्वास अब भी प्रचलित है कि विश्वविद्यालयों का मुख्य कार्य परीक्षायें पास कराना है । हमारी इच्छा है कि विश्वविद्यालय सहिष्णु, आत्म विश्वासी तथा उदार नागरिकों के निर्माण को अपना मुख्य कार्य मानें । जो विश्वविद्यालयों की शिक्षा से समुचित लाभ उठाने में अयोग्य हैं उन विद्यार्थियों की भरमार से विश्वविद्यालयों के काम में बहुत अड़चन पड़ती है, अतः विद्यार्थियों को छांट कर भरती करना चाहिये ।

इस प्रकार शिक्षा के सभी क्षेत्रों के दोषों तथा उनके निराकरण के उपायों का वर्णन हर्टाग समिति की रिपोर्ट में मिलता है । इनका विस्तृत वर्णन यथा स्थान होगा । हर्टाग समिति ने एक बात बड़े मार्के की कही थी, जिसका भावी शासन-विधान पर बहुत प्रभाव पड़ा है । उन्होंने लिखा था कि भारत सरकार का शिक्षा से अलग होजाना दुर्भाग्य की बात है । हमारे मत में भारत सरकार को शिक्षा संबंधी सूचनाओं का केन्द्र बन जाना चाहिये, और उसे विभिन्न प्रांतों के अनुभव को एकत्र करना चाहिये । इतना ही नहीं केंद्रीय सरकार का दायित्व और भी है । हम इस विचार से असहमत हैं कि भारत सरकार सार्वदेशिक प्रारंभिक शिक्षा स्थापित करने के दायित्व से बरी कर दी जाये ।

इस प्रकार हर्टाग समिति तथा साइमन कमीशन ने शिक्षा को अधिक ठोस और विस्तृत बनाने के लिये कुछ सुधारों का निर्देश किया था । भारत सरकार को इस के लिये उत्तरदायी बनाने के

अतिरिक्त उन्होंने प्रांतीय मंत्रियों और शिक्षा विभागों के अधिकारों को बढ़ाने के लिये स्थानीय बोर्डों से शिक्षा का कार्य ले लेने की सिफारिश की थी। उन्होंने वयस्कोंके साक्षरता आंदोलन, शिक्षितों की सामाजिक अथवा वयस्क शिक्षा, स्त्री शिक्षा, विशेष वर्गों की शिक्षा आदि सभी क्षेत्रों में ठोस कार्य की आवश्यकता बतलाई थी। इन सब बातों के लिये बहुत अधिक सरकारी और सरकारी व्यय अपेक्षित था।

इन सरकारी योजनाओं के अनुरूप प्रगति होने के सिवा इस काल में राजनीतिक उथल पुथल के कारण लोगों का ध्यान समाजोद्धार की ओर विशेष रूप से आकृष्ट हुआ। अशिक्षा का अभिशाप मिटाने का चारों ओर से प्रयास हुआ। कुछ लोगों ने तो सरकारी योजनाओं में ही रुपया लगाया। कुछ अन्य लोगों ने देश के शिक्षा संगठन को एक उन्नतिशील राष्ट्र की आवश्यकताओं और भारतीय संस्कृति के अनुरूप न पाकर नये ढंग के शिक्षा केन्द्रों की स्थापना की अथवा प्राचीन पद्धति के शिक्षा केन्द्रों की उन्नति की। इसी कारण विश्व भारती, काशी विद्या पीठ, गुजरात विद्यापीठ, तिलक महाराष्ट्र विद्यापीठ जामिया मिल्लिया देहली बम्बई" का महिला विश्वविद्यालय और मथुरा, देहरादून हरद्वार आदि के गुरुकुलों की लोकप्रियता बढ़ी।

हर्टोग समिति ने जिस विकास की आशा की थी, उसमें एक प्रमुख बाधा १९३०-३१ से आर्थिक संकट के रूप में आ गई। इसके बाद के वर्षों में सरकारों को अपने सभी व्यय में कमी करनी पड़ी। आशा की जा सकती है कि राष्ट्र निर्माण वाले विभागों में कोई कमी न की गई होगी क्योंकि तुलनात्मक दृष्टि से और देश की आवश्यकताओं के अनुसार इन पर व्यय बहुत कम किया जा रहा था। फिर भी इनका व्यय बुरी तरह काटा गया जैसा इन आंकड़ों से स्पष्ट है।

वर्ष	सरकारी व्यय (लाखों में)
१९२६-२७	११९३
१९३०-३१	१३६१
१९३१-३२	१२४६
१९३२-३३	११३५
१९३६-३७	१२३६

स्पष्ट है कि शिक्षा विभाग पर १९३७ ई० में भी व्यय छः वर्ष पहिले के व्यय से कम था, जब कि इसे उत्तरोत्तर बढ़ते रहना चाहिये था। इन दस वर्षों में ग़ैर सरकारी व्यय बराबर बढ़ता रहा और उसी के द्वारा शिक्षा विकास भी होता रहा जैसा कि निम्नांकित आंकड़ों से स्पष्ट है।

(व्यय लाखों में)

वर्ष	बोर्ड	फीस	अन्य साधन	कुल
१९२७	३६६	५२१	३७७	१२६४
१९३२	४३८	६२३	४१२	१४७३
१९३७	४३५	७११	४२४	१५७०

१९३७ ई० में ब्रिटिश भारत में शिक्षालयों और विद्यार्थियों की संख्या निम्नलिखित थी।

शिक्षालय-संख्या		विद्यार्थी-संख्या
विश्वविद्यालय	१५	९६९७
आर्ट कालेज	२७१	८६२७३
व्यावसायिक कालेज	७५	२०६४५
माध्यमिक शिक्षालय	१३०५६	२२८७८७२
प्रारंभिक शिक्षालय	१९२२४४	१०२२४२८८
विशेष शिक्षालय	५६४७	२५९२६९
अस्वीकृत शिक्षालय	१६६४७	५०१५३०
	२२७९५५	१३३८९५७४

यदि इन संख्याओं की तुलना १६२७ की संख्याओं से करें तो ज्ञात होगा कि स्वीकृत शिक्षालयों में वृद्धि हुई थी, किन्तु अस्वीकृत शिक्षालय आधे ही रह गये थे। विद्यार्थियों की संख्या बढ़ी तो थी किन्तु बहुत अधिक नहीं। इस वृद्धि की गति भी उतनी तीव्र नहीं थी जितनी १६१७-२७ के बीच में थी।

जैसा कि पहिले भी कहा जा चुका है इस काल में लोगों का शिक्षा पर विशेष ध्यान होता जा रहा था। सरकारी और गैर सरकारी कई संस्थायें शिक्षा संबंधी मामलों में विचार विमर्श किया करती थीं। इनमें अंतर्विश्वविद्यालय समिति (Inter University Board) और अखिल भारतीय शिक्षा संघ (All India Educational Conference) विशेषतया उल्लेखनीय हैं। इन दोनों ही संस्थाओं का आरंभ १६२४-२५ से होता है।

अंतर्विश्वविद्यालय-समिति (Inter University Board) अंतर्विश्वविद्यालय समिति ने १६३४ की अपनी बैठक में शिक्षितों में बेकारी दूर करने के संबंध में महत्वपूर्ण प्रस्ताव रखे थे जो बाद में केंद्रीय सलाहकार समिति तथा वुड और एबट ने स्वीकार किये थे। यह काल आर्थिक संकट का था। इसे कम करने के लिये सरकारी तथा गैर सरकारी सभी संस्थायें विचारमग्न थीं। इसी संबंध में समिति ने भी अपने प्रस्ताव पेश किये थे।

समिति के विचार में बेकारी दूर करने का एक ही उपाय था। स्कूली शिक्षा का इस प्रकार पुनः संगठन हो जिससे अधिकांश विद्यार्थी माध्यमिक शिक्षा के बाद व्यवसायों अथवा व्यावसायिक शिक्षालयों में चले जावें। समिति का यह भी विचार था कि माध्यमिक शिक्षा में सुधार के लिये डिग्री कोर्स तीन वर्ष का कर दिया जावे जिससे उसका स्तर भी ऊँचा उठ सके। शिक्षा के विभिन्न अंगों का पुनः संगठन इस प्रकार हो कि डिग्री प्राप्त करने के पूरे समय में

है और एक पत्रिका (Education) का संचालन भी करता है। इसकी मुख्य समितियां निम्नलिखित हैं।

(१) घर और बचपन की शिक्षा (Childhood and Home Education)।

(२) प्रारंभिक तथा ग्रामीण शिक्षा (Primary & Rural Education)।

(३) माध्यमिक शिक्षा (Secondary Education)।

(४) विश्वविद्यालयों में शिक्षा (University Education)।

(५) व्यावसायिक शिक्षा (Vocational Education)।

(६) धार्मिक और नैतिक शिक्षा (Moral & Religious Education)।

(७) वयस्क शिक्षा (Adult Education)।

(८) परीक्षा (Examinations)।

(९) स्वास्थ्य तथा शारीरिक शिक्षा (Health and Physical Education)।

(१०) अध्यापकों की दीक्षा (Training of Teachers)।

(११) शिक्षा संबंधी प्रयोग और अनुसंधान (Educaitional Experiment and Research)।

(१२) अंतर्राष्ट्रीयता और शांति (Inter Nationalism & Peace)।

प्रति वर्ष इन सभी विषयों पर महत्वपूर्ण भाषण होते हैं। जिनसे लोगों में विचारों का आदान प्रदान होता है। प्रस्तावों द्वारा संघ शिक्षा विभागों को निःशुल्क परामर्श देता है।

अखिल भारतीय शिक्षा संघ के विचार—१९३४-३५ ई० में संघ की दसवीं बैठक हुई थी जिसमें शिक्षा के सभी पहलुओं पर विचार किया गया था। इसका महत्व इस लिये और भी

अधिक था क्योंकि १६३५ के सुधार बन रहे थे और उनको दृष्टि में रखकर ही संघ ने अपने प्रस्ताव पास किये थे।

बैठक में अखिल भारतीय शिक्षा संघ ने ५४ प्रस्ताव पास किये थे जिसमें से प्रमुख प्रस्ताव, जिनका भावी शिक्षा संगठन पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा था, निम्नलिखित है। पहिले प्रस्ताव द्वारा संघ ने दिल्ली में केंद्रीय सलाहकार समिति संगठन की मांग की जिसका काम विभिन्न प्रांतों के शिक्षा संबंधी अनुभवों और आंकड़ों को एकत्र करके सभी के लाभ के लिये प्रकाशित करना था। यह प्रस्ताव शीघ्र ही भारत सरकार ने कार्यान्वित किया।

दूसरे प्रस्ताव के द्वारा सभी ग्रामीण अध्यापकों और इंस्पेक्टरों से इस सभा ने सिफारिश की कि वे अपने क्षेत्रों में सामाजिक शिक्षा (Extra-mural activities) के लिये प्रबन्ध करें, ताकि स्कूल छोड़ने पर विद्यार्थी निरक्षरता में पुनः लिप्त होने से बचें और उनका ज्ञान बढ़ता रहे।

एक प्रस्ताव में इसने शिक्षा बिभागों से प्रार्थना की कि वे अध्यापकों और स्कूल प्रबन्धक समितियों के आपसी झगड़ों को निपटाने के लिये निर्णायक समितियां बना दें।

इस सभा ने एक अन्य प्रस्ताव में भारत सरकार तथा दानी पुरुषों से एक अखिल भारतीय शिक्षा और मनोवैज्ञानिक अनुसंधान का केंद्र स्थापित करने की प्रार्थना की।

एक प्रस्ताव में सभा ने अपना यह मत भी प्रकट किया कि सभी शिक्षालयों में अंतर्जातीय, अंतर्वर्णीय और सांप्रदायिक एकता सिखाने का निश्चित प्रयास होना चाहिये।

एक प्रस्ताव में यह भी कहा गया कि नये विधान में मताधिकार बढ़ जाने के कारण आगामी राजनीतिक प्रगति बहुत कुछ शिक्षा पर ही आश्रित होगी, अस्तु सभी प्रांतीय तथा केन्द्रीय सरकारों को शिक्षा पर व्यय का अनुपात बढ़ा देना चाहिये।

एक अन्य प्रस्ताव के द्वारा सरकारी, गैर सरकारी तथा अर्ध सरकारी सभी संस्थाओं और शिक्षित नागरिकों से प्रार्थना की गई कि वे निरक्षरता का अभिशाप मिटाने के लिये देशव्यापी आन्दोलन में सम्मिलित हों, और सरकारें बयस्क-लोक-शिक्षा में लगी हुई संस्थाओं को अधिक आर्थिक सहायता दें।

सभा ने बालकों के शारीरिक विकास का प्रबन्ध करने के लिये सरकारों से प्रार्थना की और कहा कि वे सहायक अनुदान प्रथा के नियमों में हेरफेर करके खेल, व्यायाम और जिमनैशियम कोष को भी सहायता प्रदान करें क्योंकि शिक्षा का अर्थ बच्चे का सर्वांगीण—आत्मिक, मानसिक और शारीरिक-विकास है।

सभा ने परीक्षा बद्ध संगठन को ढीला करके वैज्ञानिक ढंगों से बच्चों के मस्तिष्क के विकास का लेखा रखने तथा उसी के आधार पर कक्षा-प्रगति देने का अनुरोध किया।

सभा ने अपना यह निश्चित मत भी प्रकट किया कि इस देश में शिक्षा तब तक सफल, लोकप्रिय अथवा राष्ट्रीय संस्कृति के विकास में सहायक न होगी जब तक भारतीय भाषाओं को स्कूलों, कालेजों और विश्वविद्यालयों में शिक्षा का माध्यम नहीं बना दिया जाता।

इन अत्यंत महत्वपूर्ण प्रस्तावों के सिवा विभिन्न समितियों के प्रस्ताव भी स्वीकृत हुये थे। नर्सरी शिक्षा के लिये नगरों के प्रारंभिक विद्यालयों में कक्षा जोड़ने की सिफारिश की गई। वैधानिक सुधारों को ध्यान में रखते हुये संघ ने अनिवार्य प्रारंभिक शिक्षा की ओर भारत सरकार का ध्यान आकृष्ट किया। यह सुझाव पेश किया गया कि प्रारंभिक विद्यालयों में कृषि तथा आर्ट, क्राफ़्ट आदि क्रियात्मक विषयों की शिक्षा पर ज़ोर दिया जाय। अध्यापकों का वेतन बढ़ाने और हिन्दुस्तानी स्कूलों से आने वाले विद्यार्थियों को एंग्लो-हिन्दुस्तानी स्कूलों में योग्यतानुसार प्रत्येक कक्षा में भरती कर लेने पर ज़ोर दिया

गया। वयस्कों की निरक्षरता को दूर करने के लिये भारत सरकार से एक निश्चित कार्यक्रम बनाने का अनुरोध किया गया।

माध्यमिक शिक्षा के संबंध में मुख्य प्रस्ताव यह था कि सभी श्रेणियों में विद्यार्थी व्यावसायिक और टेक्निकल शिक्षा की ओर भेजे जावें, जिससे बेकारी और अपव्यय कम हो।

व्यावसायिक शिक्षा के संबंध में दो प्रस्ताव पास हुये थे। एक यह कि टेक्निकल और व्यावसायिक स्कूल अधिकाधिक खोले जावें और दूसरा यह कि सभी प्रारंभिक तथा माध्यमिक शिक्षालयों में स्थानीय आवश्यकताओं के अनुसार एक हस्तकौशल पाठ्यक्रम में रख दिया जावे।

शारीरिक तथा धार्मिक और नैतिक शिक्षा के प्रस्तावों द्वारा स्वास्थ्य और चरित्र-निर्माण के लिये समुचित प्रबंध की मांग हुई। प्रांतों में अध्यापकों की दीक्षा के लिये स्वास्थ्य-केंद्र ((Physical Culture Institute) स्थापित होने की आवश्यकता पर जोर दिया गया।

संघ ने अपनी वार्षिक रिपोर्ट में उस वर्ष होने वाली महत्वपूर्ण बातों का विवरण दिया था जो उसके पिछले प्रस्तावों से संबंध रखती थीं। कुछ प्रमुख बातें ये थीं। संयुक्त प्रांत में शिक्षा विभाग तथा संयुक्त प्रांतीय शिक्षा संघ ने अध्यापकों के रिफ्रेशर कोर्स का प्रबंध किया था। शिक्षा के पुनस्संगठन के लिये संयुक्त प्रांत, त्रावणकोर, कोल्हापुर, मैसूर आदि में नई योजनायें बनीं।

विद्यार्थियों के लिये अस्पतालों का प्रबंध संयुक्त प्रांत आसाम, ब्रह्मा तथा मैसूर आदि में हो रहा था।

आर्ट-क्राफ्ट से सबंधित पाठान्तर-क्रियाओं की योजनायें संयुक्त प्रांत, मध्य प्रांत, सिंध, मैसूर आदि में लागू हो गई हैं।

केन्द्रीय सलाहकार समिति—इसके बाद १९३५ में केन्द्रीय

शिक्षा सलाहकार समिति की पुनः स्थापना हो गई। उसमें सभी प्रांतों के सदस्य थे। इसका कार्य शिक्षा संबंधी मामलों पर विचार-विमर्श करना और शिक्षा विभागों को सलाह देना था। अपनी पहिली ही बैठक में समिति ने बेकारी संबंधी प्रांतीय सरकारी और अंतर्विश्वविद्यालय समिति की सिफारिशों पर विचार किया और निश्चय किया कि शिक्षा का आमूल पुनः संगठन आवश्यक है। इस पुनः संगठन के बाद माध्यमिक शिक्षालय व्यावसायिक कालेजों और विश्वविद्यालयों में प्रवेश ही के लिये विद्यार्थियों को न तैयार करें, वरन् प्रारंभिक मिडिल तथा माध्यमिक स्टेज के बाद बालकों को व्यवसायों तथा व्यावसायिक स्कूलों में भेजने का प्रबंध हो।

स्टेजें निम्नलिखित हों—(१) प्रारंभिक स्टेज—इस काल में स्थायी साक्षरता और साधारण शिक्षा का प्रबंध हो।

(२) निम्न माध्यमिक (मिडिल) स्टेज—इसमें साधारण शिक्षा का स्वतःपूर्ण पाठ्यक्रम हो। यही शिक्षा उच्च माध्यमिक एवं विशिष्ट व्यावसायिक शिक्षा का आधार हो। ग्रामीण क्षेत्र में कृषि तथा स्थानीय व्यवसायों से संबंधित प्रायोगिक शिक्षा अनिवार्य कर दी जाय।

(३) उच्च माध्यमिक स्टेज—इस स्टेज के शिक्षालयों में लगने वाला समय विभिन्न प्रकार के शिक्षालयों में अलग-अलग हो। ये शिक्षालय मुख्यतः पांच प्रकार के होना चाहिये। (अ) विश्वविद्यालयों की कला और विज्ञान कक्षाओं में भर्ती के लिये विद्यार्थी तैयार करने वाले शिक्षालय। (आ) ग्रामीण क्षेत्रों के अध्यापकों के दीक्षांत विद्यालय। (इ) कृषि-विद्यालय। (ई) लेखकों की शिक्षा के लिये विद्यालय। अन्य व्यावसायिक तथा टेक्निकल विषयों के शिक्षालय। ये विषय स्थानीय व्यवसायियों और मालिकों के परामर्श से चुनने चाहिये।

सरकारी परीक्षायें दूसरी तथा तीसरी स्टेज के बाद टेक्निकल शिक्षा पर एक विशेषज्ञ कमीशन नियत होना चाहिये।

वुड एबट रिपोर्ट—अंतिम प्रस्ताव के अनुसार १९३६ ई० में व्यावसायिक शिक्षा पर परामर्श देने के लिये एक कमीशन श्री एबट और वुड की अध्यक्षता में नियत हुआ था। इसकी रिपोर्ट १९३७ में तैयार हुई थी। हर्टाग समिति ने भी ऐसे कमीशन की आवश्यकता का आभास दिया था। इस कमीशन ने साधारण शिक्षा के पाठ्यक्रम, पाठ्यविधि, संगठन तथा नियंत्रण में कुछ सुधार बताये थे। प्रारंभिक कक्षाओं में श्रम समय एवं धन के अपव्यय तथा शिक्षा की असफलता (Wastge and stagnation) के कारणों में इन लोगों को दोषपूर्ण पाठनविधि का बड़ा हाथ नज़र आया, क्योंकि उसमें बच्चों के उपयुक्त पाठ्यविषयों और क्रियाओं का अभाव था। इन सभी का अन्यत्र उल्लेख होगा। शिक्षा विभाग के संगठन में इनका मत था कि विभागीय स्थायी सेक्रेटरी को अधिक समय तक अपने पद पर रहना चाहिये और उसे शिक्षाविभाग का अनुभव होना चाहिये, अर्थात् इस पद पर इंडियन सिविल सर्विस वालों को नियत करना अनुचित है। स्थानीय बोर्डों को दिये गये शिक्षा संबंधी अधिकारों को कम करके पुनः उन्हें सरकार को सौंपने और डिप्टी इंस्पेक्टर को बोर्डों की शिक्षा समिति के प्रभाव से मुक्त करने का सुझाव भी इस रिपोर्ट में था। व्यावसायिक शिक्षा को भी शिक्षा विभाग के नियंत्रण में लाना एवं देश के संगठित तथा घरेलू उद्योग-धंधों और कलाओं की आवश्यकताओं को ध्यान में रख कर ही इसका प्रबंध करना कमीशन के मत में उचित था। इस प्रकार की शिक्षा से बेकारी की समस्या हल न हो सकती थी। उसके लिये तो व्यवसायों को बढ़ाना आवश्यक था। इस कमीशन ने व्यावसायिक तथा साधारण कलाओं और विज्ञानों की शिक्षा में संबंध रखने पर जोर दिया, जिससे

व्यावसायिक शिक्षा माध्यमिक तथा उच्चशिक्षा के क्षेत्र में एक नई शाखा के समान हो। व्यावसायिक तथा टेकनिकल शिक्षा को लोक प्रिय बनाने तथा शिक्षा का सुधार करने के लिये कमीशन का मत यह था कि आर्ट क्राफ़्ट (व्यावसायिक कलाओं का प्रारंभिक रूप) प्रारंभिक तथा माध्यमिक पाठ्यक्रम में सम्मिलित कर लिये जावें।

उच्चशिक्षा नये विश्वविद्यालय—अब इस काल की शिक्षा के विभिन्न अंगों के विकास का विस्तृत विवरण होगा। उच्च शिक्षा के लिये इन सोलह वर्षों में पांच नये विश्वविद्यालय स्थापित हुये थे। दिल्ली विश्वविद्यालय १९२२ ई० में स्थापित हुआ। यह संघीय विश्वविद्यालय है, अर्थात् इसके अंतर्गत शिक्षण तीन चार कालेजों में होता है जो दिल्ली में ही स्थित हैं, अब वे पास पास इमारतों में आगये हैं। १९२३ ई० में नागपुर विश्वविद्यालय स्थापित हुआ जो मध्यप्रदेश बरार तथा संबंधित देशी राज्यों के लिये था। इसमें शिक्षण भी होता है और नागपुर के बाहर के कालेज भी इसकी परीक्षाओं में विद्यार्थी भेजते हैं। तेलगू भाषा क्षेत्र के लिये आन्ध्र विश्वविद्यालय की स्थापना १९२६ ई० में हुई। तामिल भाषा के लिये १९२९ ई० में चिदांबरम् (अन्नामलाई नगर) में अन्नामलाई विश्वविद्यालय खोला गया। १९२७ ई० में प्रयाग विश्वविद्यालय ने केवल शिक्षण का कार्य ही अपनाया और इससे संबंधित संयुक्त प्रांत, अजमेर, मध्य भारत व राजपूताना के कालेजों के लिये आगरा विश्वविद्यालय बना। इन सभी विश्वविद्यालयों की स्थापना में विशेष कारण थे। आगरा विश्वविद्यालय विशुद्ध परीक्षक विश्वविद्यालय है। उसका क्षेत्र नये विश्वविद्यालय स्थापित होने पर कम होता जायगा। दिल्ली विश्वविद्यालय एक केंद्रीय विश्वविद्यालय का स्थान पूरा करने के लिये खोला गया। उसका विधान भी अन्य सभी भारतीय विश्वविद्यालयों से भिन्न था। यह एक संघीय विश्वविद्यालय है, जिसके अपने शिक्षण-

विभाग नहीं हैं। वरन् संबंधित कालेज विश्वविद्यालय के निरीक्षण में शिक्षण करते हैं। सभी कालेज पास-पास होने से एक दूसरे के अध्यापकों से लाभ उठा सकते हैं, और इस प्रकार अधिक योग्य अध्यापक रख सकते हैं, क्योंकि उन्हें सभी विषयों के अध्यापक रखना आवश्यक नहीं है।

नागपूर विश्वविद्यालय खुलने का मुख्य कारण यह था कि प्रत्येक प्रांत की अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये स्थानीय विश्व-विद्यालय आवश्यक है। इसके लिये ऐसा क़ानून बना था कि यह परीक्षक विश्वविद्यालय के समान आरंभ हो पर शिक्षण का भी प्रबंध कर सके। इसने एक ला कालेज खोला था। इसके सिवा और कोई शिक्षण इस विश्वविद्यालय में नहीं होता था।

मद्रास प्रांत के तेलगू भाषी लोगों ने अपना प्रांत अलग करने की माँग अपनी विशिष्ट संस्कृति की उन्नति के लिये की थी। इसी उद्देश्य से उन्होंने अपने लिये विश्वविद्यालय की माँग भी की। १९२६ ई० में तेलगू भाषी सभी ज़िलों के लिये वाल्टेयर में आंध्र विश्वविद्यालय स्थापित हुआ। इसमें शिक्षण और अन्य कालेजों को स्वीकृतिदान इन दोनों बातों का प्रबन्ध है। इस काल में विश्वविद्याय स्वयं कला (आर्ट्स) विज्ञान और टेक्नालाजी विभागों में शिक्षा देता था। राजा अन्नामलाई ने तामिल भाषा की उन्नति के लिये बीस लाख रुपया देने पर तो चिदांबरम् के तामिल, संस्कृत और अंग्रेज़ी के कालेजों को मिलाकर अन्नामलाई विश्वविद्यालय स्थापित हुआ। इस विश्व-विद्यालय ने तामिल भाषा को उन्नत करके उसे माध्यम बनाने का मार्ग प्रशस्त करना आरंभ किया। इसमें एक बात और भी बड़े महत्व की थी कि कक्षापद्धति को तोड़कर ट्यूटोरियल प्रथा ही को अपनाया गया जिससे प्रत्येक अध्यापक को तीन चार विद्यार्थियों से अधिक को एक समय नहीं पढ़ाना पड़ता।

पुराने विश्वविद्यालयों का विकास—इसी समय में प्रेसीडेंसी तथा पंजाब विश्वविद्यालय जो प्रधानतया परीक्षक विश्वविद्यालय थे शिक्षण की ओर भी झुके। इस काल में प्रांतीय सरकारों ने कुछ नये नियम बनाये। मद्रास विश्वविद्यालय ने अर्थ शास्त्र और भारतीय इतिहास आदि कुछ विषयों के पढ़ाने के अतिरिक्त वनस्पति शास्त्र (Botany) प्राणिशास्त्र (Zoology) रसायन (Bio-chemistry) गणित, दर्शन, संस्कृत, अरबी, फ़ारसी, उर्दू, तामिल, तेलगू, कन्नड़ और मलयलम् भाषाओं में अनुसंधान का प्रबंध किया।

बम्बई विश्वविद्यालय ने उपाधि-प्राप्त विद्यार्थियों की शिक्षा यथा अध्यापकों की नियुक्ति, पुस्तकालयों और प्रयोगशालाओं आदि के प्रबंध में भी कुछ योग दिया इसके सिवा समाजशास्त्र (Sociology) अर्थशास्त्र, संस्कृत गणित आदि के लिये कक्षायें भी स्थापित कीं। टेक्नालाजी की उन्नति पर विशेष ध्यान दिया गया और उसके लिये विश्वविद्यालय में अलग कक्षा का संगठन किया।

पंजाब विश्वविद्यालय ने लाहौर में एक कामर्स कालेज और कई एक आनर्स स्कूल स्थापित किये। प्रयाग विश्वविद्यालय, आगरा विश्वविद्यालय की स्थापना के बाद शिक्षण का केंद्र बन गया। कलकत्ता विश्वविद्यालय ने केवल डिग्री प्राप्त विद्यार्थियों की शिक्षा पर ध्यान दिया। अनुसंधान का भी आयोजन इस विश्वविद्यालय ने किया, जिसके फलस्वरूप कलकत्ता विश्वविद्यालय में प्रायः सभी विषयों और भाषाओं की शिक्षा का प्रबंध हो गया।

उच्च शिक्षा का विकास—इस काल में उच्च शिक्षा का विशेष विकास हुआ और शिक्षितों की बेकारी ने इसे और भी प्रगति दी। सत्रहों विश्वविद्यालयों से संबंधित विभागों तथा कालेजों की संख्या प्रायः साढ़े चार सौ हो गई अर्थात् पिछले सोलह वर्ष में प्रायः ढाई सौ नये विभाग अथवा कालेज खुले। विद्यार्थियों की संख्या

प्रायः दूनी होकर सवा लाख हो गई। विश्वविद्यालयों में कला, विज्ञान, शिक्षा, इंजीनियरिंग, चिकित्सा, क़ानून (Low) कामर्स, कृषि, टेक्नालाजी ललित कला, प्राच्य विद्यायें आदि कई विभाग थे।

इस विकास में कुछ दोष और कठिनाइयाँ भी थीं। जैसा हर्टाग समिति ने भी कहा था। कुछ विश्वविद्यालयों की पढ़ाई और परीक्षा का स्तर नीचा था। बहुतेरे विद्यार्थी विश्वविद्यालयों की शिक्षा से लाभ उठाने की योग्यता न रखने पर भी उनमें प्रवेश पा जाते थे। साहित्यिक पाठ्यक्रम की ही भरमार थी और विज्ञान तथा कला विभागों में एक लाख विद्यार्थी थे इस प्रकार इनकी संख्या पिछले सोलह वर्षों में दूनी हो गई थी। प्रायः सोलह हज़ार विद्यार्थी दीक्षांत महाविद्यालयों, ला कालेजों और मेडिकल कालेजों में थे अर्थात् इनकी संख्या इसी काल में ड्योढ़ी हुई थी। अन्य व्यावसायिक तथा टेक्निकल शिक्षालयों में विद्यार्थी १६०८ से बढ़ कर ५४५६ हो गये थे। अर्थात् विकास ३५०% था। किन्तु तो भी वह देश की आवश्यकताओं से कम था।

आलोचना—इस काल के अधिकांश विश्वविद्यालयों में एक ही प्रकार की कला, विज्ञान, कानून, चिकित्सा आदि की शिक्षा दी जाती थी। वे विशेष विषयों तथा संस्कृतियों के केंद्र नहीं थे। साधनों के प्रर्याप्त न होने के कारण बहुमुखी विकास द्वारा आवश्यक विषयों की शिक्षा में यथार्थ और अपेक्षित प्रगति नहीं हो रही थी।

साथ ही, अध्यापकों को संख्या के अनुपात में विद्यार्थियों की संख्या अधिक थी, अस्तु लेक्चर प्रथा और परीक्षायें पास करने का उद्देश्य सभी जगह वर्तमान था। संस्कृति का प्रसार एवं ज्ञान की वृद्धि जैसे ठोस उद्देश्यों की पूर्ति नहीं हो रही थी। फिर भी इस काल में छात्रावासों की संख्या और विद्यार्थियों के स्वास्थ्य में उन्नति हुई। अनुसंधान और ज्ञान की वृद्धि में भी कुछ प्रगति हुई।

इस काल में सैनिक शिक्षा के लिये विश्वविद्यालयों में यू० टी०

सी० की स्थापना हुई, यद्यपि सीमित साधनों के कारण थोड़े ही विद्यार्थी इससे लाभ उठा पाते थे। खेलों और पाठान्तर क्रियाओं में अंतर्कालेज और अंतर्विश्वविद्यालय प्रतियोगिताओं का भी आयोजन हुआ।

अंतर्विश्वविद्यालय बोर्ड (१६२५)—विश्वविद्यालयों में पारस्परिक संबंध सहयोग और सामूहिक कार्यों के लिये १६२५ ई० में अंतर्विश्वविद्यालय बोर्ड की स्थापना हुई थी, जिससे विश्वविद्यालयों और उच्च शिक्षा को काफी लाभ हुआ है।

माध्यमिक महाविद्यालय (Higher Secondary Colleges) इस काल में इंटरमीजियट कक्षाओं को विश्वविद्यालयों से अलग करने का प्रयोग भी हुआ किन्तु संयुक्त प्रांत को छोड़ कर अन्यत्र वह सफल न हुआ। इस काल के अंत तक यह निश्चित सा हो गया कि डिग्री कक्षाओं से नीचे की शिक्षा का प्रबंध विश्वविद्यालयों को न करना चाहिये। केंद्रीय सलाहकार समिति ने डिग्री कक्षा का पाठ्यक्रम तीन वर्ष का कर देने एवं हाई स्कूल तथा इंटरमीजियट को मिला कर माध्यमिक महाविद्यालयों (Higher Secondary Colleges) की स्थापना करने पर ज़ोर दिया, जिनका काम उच्चतर माध्यमिक परीक्षा (Higher Secondary Examimation) के लिये विद्यार्थी तैयार करना हो। योजना बनी कि इस परीक्षा पर विश्वविद्यालयों का प्रभाव न हो और यही परीक्षा विश्वविद्यालयों की डिग्री कक्षाओं के लिये प्रवेशिका परीक्षा के समकक्ष स्वीकृत हो।

उच्च शिक्षा के अन्य केंद्र—विश्वविद्यालयों के अतिरिक्त भी कुछ विशेष केंद्रों तथा संस्थाओं में उच्च स्तर की शिक्षा और अनुसंधान का प्रबंध था। ये विश्वविद्यालयों से संबंधित न होने पर भी उसी कोटि का कार्य कर रहे थे।

इंडियन इंस्टीट्यूट आफ़ साइंस, बंगलौर—१६११ ई० में प्रसिद्ध

व्यवसायी ताता ने स्थापित किया। इसकी प्रयोगशालाओं में भौतिक-शास्त्र, रसायनशास्त्र तथा बिजली संबंधी इंजीनियरिंग (Electrical Technology) विषयक अनुसंधान होता है।

सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक जगदीशचन्द्र बोस ने कलकत्ते में वनस्पति, रसायन, प्राणिशास्त्र, भौतिकशास्त्र तथा नर विज्ञान (Anthropology) आदि में अनुसंधान के लिये १९१७ ई० में बोस रिसर्च इंस्टीट्यूट की स्थापना की थी।

साबुन, तेल, पेंट, वार्निश आदि पर अनुसंधान और सम्बन्धित व्यवसायों के लिये विशेषज्ञ पदाधिकारी प्रस्तुत करने के लिये कानपुर में १९२१ ई० में हारकोर्ट बटलर टेक्नालाजिकल इंस्टीट्यूट स्थापित हुआ। शक्कर सम्बन्धी अनुसंधान के लिये यहां पर इम्पीरियल इंस्टीट्यूट आफ टेक्नालजी खुला।

१९३४ ई० में पूसा (बिहार) का कृषि इंस्टीट्यूट देहली चला गया। इसमें कृषि डिग्री प्राप्त विद्यार्थियों की पढ़ाई का प्रबन्ध है और कृषि सम्बन्धी सभी सूचनाओं का केंद्र भी यहां है। इंस्टीट्यूट की प्रायोगिक कृषिशालाएं दिल्ली तथा अन्य स्थानों पर हैं।

धनबाद (बिहार) में भारत सरकार ने १९२६ ई० में एक खनिज स्कूल स्थापित किया। इसमें इंटरमीजियट पास विद्यार्थी खनिजों भूगर्भ शास्त्र, तथा तत्सम्बन्धी इंजीनियरिंग की शिक्षा पाते हैं।

पूना में १९१७ ई० में प्राच्य साहित्य पर अनुसन्धान के लिये भंडारकर ओरियंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट की स्थापना हुई थी। यहां पर पाली संस्कृत और प्राचीन भारतीय संस्कृति की शिक्षा होता है और प्राचीन ग्रन्थों के प्रकाशन का प्रबन्ध किया जाता है।

राष्ट्रीय विश्वविद्यालय

महिला विश्वविद्यालय Womens University Bombay-स्त्रियोपयोगी विषयों में मातृभाषा द्वारा स्त्री शिक्षा का प्रबन्ध करने

वाला यह पहिला विश्वविद्यालय था। इसके जन्मदाता प्रोफेसर कर्वे थे जिन्होंने इसकी स्थापना १६१६ ई० में की। विश्वविद्यालय के दो निजी कालेज पूना और बम्बई में हैं तथा उसमे सम्बन्धित कालेज अहमदाबाद बड़ौदा तथा अन्यत्र है। इसमें प्रारंभिक तथा माध्यमिक स्त्री शिक्षिकाओं की दीक्षा का भी प्रबन्ध है।

विश्वभारती—१६२२ ई० में प्राच्य संस्कृतियों के मिश्रण और उन्नति के साथ प्रतीच्य विज्ञानों के अध्ययन द्वारा प्राच्य और प्रतीच्य में स्वाभाविक सम्बन्ध स्थापित करने के लिये विश्ववंद्य गुरु-देव श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने इस विश्वविद्यालय की स्थापना की थी। इसके सात विभाग हैं और एक कालेज साधारण कोटि की शिक्षा के लिये कलकत्ता विश्वविद्यालय से सम्बन्धित है। यह कालेज शिक्षाभवन कहलाता है। इसके सिवा विद्या भवन में संस्कृत पाली प्राकृत, हिन्दी, अरबी, फारसी, उर्दू तथा बंगाली साहित्य, भारतीय दर्शन, बौद्ध तथा हिन्दू धर्मों पर अनुसन्धान होता है। चीन भवन में भारतीयों और चीनियों को एक दूसरे की सभ्यता की ओर आकृष्ट किया जाता है। कलाभवन, संगीतभवन, तथा शिल्पभवन, भारतीय संस्कृति की रक्षा और उन्नति के लिये हैं। श्री निकेतन में ग्रामसुधार की योजनायें बनती हैं।

जामिया मिल्लया दिल्ली—जामिया की स्थापना मौलाना मोहम्मद अली ने १६२० में की थी ताकि पाश्चात्य प्रभावों से मुक्त वातावरण और सिद्धान्तों के द्वारा राष्ट्रीय मुसलमानों की शिक्षा का प्रबन्ध हो सके। डाक्टर ज़ाकिर हुसेन आज कल इसके सर्वेसर्वा हैं। इसके एक कालेज में आर्टस कालेजों के विषयों और सामान्य विज्ञान पर राष्ट्रीय संस्कृति के आधार पर शिक्षा दी जाती है। अधिकांश विद्यार्थी कालेज के छात्रावासों में अध्यापकों के सम्पर्क तथा नियंत्रण में रहते हैं। इसके हाई स्कूल का प्रबन्ध भी इसी प्रकार का है और

उसमें आर्ट क्राफ्ट आदि में कुशलता प्राप्त करने का प्रबन्ध है। इसके प्रारंभिक स्कूल में प्रोजेक्ट पद्धति अथवा क्राफ्ट को माध्यम बनाकर शिक्षा दी जाती है। कालेज के विज्ञान विभाग सम्बन्धित एक प्रयोग-शाला में दैनिक व्यवहार की वस्तुयें बनती हैं।

जामिया के ही आदर्श पर हिन्दू नेताओं ने भी राष्ट्रीय उच्च शिक्षा के केंद्र स्थापित किये। इनमें प्रमुख प्रयाग महिला विद्यापीठ अहमदाबाद स्थित गुजरात विद्यापीठ, काशीविद्यापीठ तथा तिलक विद्यापीठ पूना हैं। इन सभी राष्ट्रीय संस्थाओं की स्थापना का कारण असहयोग आंदोलन था। दमननीति के शिकार विद्यार्थियों को पढ़ने की सुविधायें देना आवश्यक था। दूसरा कारण यह भी था कि नेताओं के विचार में ब्रिटिश-नियंत्रित शिक्षा राष्ट्रीय आदर्शों से दूर तथा गुलामी को बनाये रखने ही के लिये है, और उसमें सुधार असम्भव सा है। इन्हीं दो कारणों से इन राष्ट्रीय विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई थी, और वे अपनी सीमा के भीतर लोकप्रिय भी सिद्ध हुये। हिन्दी को देश में फैलाने के लिये हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने प्रयाग हिन्दी विश्वविद्यालय की स्थापना की।

माध्यमिक शिक्षा

विकास और उसके कारण—इस काल में माध्यमिक शिक्षा में भी बड़ा विकास हुआ। इस विकास का वृत्त हन्टर कमीशन के समय से अनवरत बढ़ रहा था। कमीशन के समय सवा दो लाख विद्यार्थी तीन हज़ार नौ सौ माध्यमिक शिक्षालयों में थे। लार्ड कर्जन के समय तक सहायक अनुदान प्रथा के विकास द्वारा प्रायः छः लाख विद्यार्थी पांच हज़ार से कुछ अधिक विद्यालयों में थे। द्वित्वशासन आरंभ होने के समय ऐसे साढ़े सात हज़ार विद्यालय थे जिनमें ग्यारह लाख विद्यार्थी थे। इस कालके अंत तक १३०५६ माध्यमिक

शिक्षालय थे और उनमें २१,८७,८७२ विद्यार्थी शिक्षा पा रहे थे। अंतिम कालकी प्रगति विशेषतया श्लाघनीय है क्योंकि लार्ड कर्जन के बाद से इन शिक्षालयों को खुलने में कठिनाई पड़ने लगी थी, क्योंकि शिक्षा और संगठन का उच्च स्तर रखे बिना स्वीकृति तथा सहायता नहीं मिलती थी। दूसरे १६३० के बाद का काल आर्थिक संकट का काल था और सरकार के लिये माध्यमिक शिक्षापर अधिक व्यय करना संभव न था। इस विकास का मुख्य कारण लोगों में शिक्षित होने की इच्छा थी। साइमन कमीशन ने लिखा था कि मंत्रियों ने शिक्षा के प्रति प्रबल अभिरुचि उत्पन्न करके शिक्षा को बड़ी गति दे दी है। राजनीतिक स्वतंत्रता के आंदोलन के साथ-साथ शिक्षा का विकास भी हुआ। क्योंकि आंदोलन को लोकप्रिय बनाने के लिये यह आवश्यक था। इस प्रगति का एक कारण यह भी था कि इस काल में, जैसे कि हर्टाग समिति और साइमन कमीशन ने भी परामर्श दिया था, सरकार ने पिछड़े हुये वर्गों यथा स्त्रियों, मुस्लिम, हरिजन, आदि-को विशेष सुविधायें देकर माध्यमिक शिक्षा को बढ़ाया। उदाहरण स्वरूप स्त्री शिक्षा में इस समय बड़ा विकास हुआ। १६२१-२२ में कुल माध्यमिक शिक्षालयों के ८% (७५३० में ६७५) लड़कियों के लिये थे, किन्तु १६३७ में इनका अनुपात बढ़ कर १०% (१३०५६ में १३२५) हो गया इस काल में माध्यमिक स्कूलों में लड़कियों की संख्या चौरासी हज़ार से बढ़ कर ढाई लाख हो गई अर्थात् २००% वृद्धि हुई थी जब कि बालकों की संख्या १००% ही बढ़ी थी। सरकार भी लड़कियों की माध्यमिक शिक्षा पर अधिक व्यय कर रही थी। पिछले पन्द्रह वर्षों में लड़कियों के सरकारी माध्यमिक स्कूल ११५ से २०७ हो गये थे, किन्तु लड़कों के सरकारी स्कूलों की संख्या इसी काल में ३७६ से ४३६ ही हुई थी।

इस काल के अधिकांश माध्यमिक शिक्षालय ग़ैर सरकारी संस्थाओं द्वारा ही खोले गये थे जैसा निम्नांकित आंकड़ों से स्पष्ट है।

माध्यमिक शिक्षालय

वर्ष		१९२२	१९३७
सरकारी	बालकों के लिये	३७१	४३६
	बालिकाओं के लिये	११५	२०७
गैर सरकारी	बालकों के लिये	६४७६	११२९५
	बालिकाओं के लिये	५६०	१११८
	कुल	७५३०	१३०५६

माध्यम—इस विकास के सिवा माध्यमिक शिक्षा में एक और उन्नति हुई। धीरे-धीरे सभी प्रांतों में प्रांतीय भाषायें परीक्षाओं और पाठन का माध्यम बनने लगी, यद्यपि शब्दावली की कमी, और एक ही प्रांत में प्रायः कई कई भाषाओं की समस्या जबर्दस्त अड़चनें थीं, इसके अतिरिक्त अध्यापकों तथा अभिभावकों का स्नेह भी अंग्रेजी पर अधिक था, क्योंकि नौकरियां मिलने में अंग्रेजी का यथेष्ट ज्ञान आवश्यक था और अंग्रेज़ी माध्यम रहने ही पर यह सम्भव था।

अध्यापक—इस काल में अध्यापकों की दशा सुधारने पर भी ध्यान दिया गया। सभी प्रांतों में प्राविडेंट फंड की योजना निकली तथा प्रबंधक समितियों के अत्याचार को रोकने का भी प्रयास हुआ।

हिन्दुस्तानी मिडिल स्कूलों के अध्यापकों की दीक्षा नार्मल स्कूलों मे होती रही। अंग्रेजी स्कूलों के अध्यापकों की दीक्षा के लिये १९३७ ई० में पन्द्रह कालेज थे। इसमें और विकास की आवश्यकता थी क्योंकि अभी प्रायः आधे अध्यापक अदीक्षित थे।

पाठ्यक्रम—इस काल में वैकल्पिक विषयों में धीरे-धीरे आर्ट, क्राफ्ट, हस्तकला (लकड़ी, मिट्टी, कागज़, दफ्ती आदि का काम) जिल्दसाज़ी, घरेलू धन्धे, कृषि, कामर्स आदि आ गये और लोक प्रिय सिद्ध हुये। घरेलू धन्धों में बुनाई और रस्सी, टोकरी, चटाई, बर्तन तथा खिलौने आदि का बनाना प्रमुख रहा। लड़कियों के लिये सिलाई, कटाई, बुनाई, भोजन बनाना आदि गृह विज्ञान में पाठ्य-क्रम में आ गये और उपयोगी तथा लोक प्रिय सिद्ध हुये।

दोष—इस विकास में माध्यमिक शिक्षा के दोष भी स्पष्ट हो गये और उनका सुधार आवश्यक हो गया। पहिला प्रमुख दोष यह था कि हिन्दुस्तानी मिडिल स्कूलों की लोकप्रियता घट रही थी, तथा अंग्रेज़ी हाई स्कूल और कालेजों के विद्यार्थी केवल विश्वविद्यालयों में पढ़ने ही के योग्य रह जाते थे। नैतिकता, साहस, नेतृत्व आदि गुणों की कमी के कारण वे नौकरी ही चाहते थे। फलतः शिक्षितों में बेकारी का प्रश्न भी उठ पड़ा था। कृषि, कामर्स, घरेलू धन्धे आदि व्यावसायिक वैकल्पिक विषय बहुत लोक प्रिय न थे, अर्थात् शिक्षा देश के वाता-वरण तथा आवश्यकताओं के पूर्णतया अनुकूल न थी। हर्टॉग समिति ने इसी हेतु लिखा था कि इन विषयों को लोक प्रिय बनाना चाहिये और विद्यार्थियों को माध्यमिक शिक्षालयों में व्यावसायिक स्कूलों तथा व्यवसायों की ओर ले जाने का निश्चित प्रयास होना चाहिये। उसने लड़कों को हिन्दुस्तानी मिडिल स्कूलों में रोकने पर भी ज़ोर दिया था क्योंकि तुलनात्मक दृष्टि से वह पाठ्यक्रम अधिक पूर्ण था। वहां ही देश की राष्ट्रीय लोक शिक्षा के कर्णधार होते थे और माध्यम भी पूर्णतया हिन्दुस्तानी भाषा थी। नैतिकता एवं नेतृत्व विकास के लिये अखिल भारतीय शिक्षा-सम्मेलन ने धार्मिक तथा नैतिक शिक्षा के प्रबंध करने का परामर्श दिया था।

साइमन कमीशन ने लिखा था कि माध्यमिक शिक्षा जनता को

आर्थिक तथा सामाजिक आवश्यकताओं के अनुरूप नहीं है अतः इनसे निकले हुये विद्यार्थियों को सरकारी पद तथा व्यवसाय नहीं खपा पाते। विश्वविद्यालयों के प्रभाव के कारण माध्यमिक शिक्षालयों में एकरूपता तथा पाठ्यक्रम की संकीर्णता है। अध्यापक असंतुष्ट हैं। अतः अपव्यय और असफलता स्पष्ट हैं। इसके संचालन, निरीक्षण तथा शासन में दोष हैं। माध्यमिक शिक्षालयों में तीन के स्थान पर दो परीक्षायें रह जाना चाहिये। शिक्षा का आधार रटाई और परीक्षाओं के स्थान पर व्यक्ति निर्माण—समाज के उपयुक्त तथा आवश्यक व्यक्तियों का सृजन—हो जाना चाहिये।

वुड महोदय ने माध्यमिक शिक्षा को सुधारने के लिये पाठ्यक्रम को वातावरण के अधिकाधिक अनुकूल बनाने और इन विषयों को यथेष्ट समय देने के लिये भाषाओं को कम समय देने का सुझाव रखा। उन्होंने पूर्णतया हिन्दुस्तानी माध्यम की हिमायत की। उन्होंने अंग्रेज़ी को एक अनिवार्य विषय के रूप में स्वीकृत तो किया परन्तु पाठ्यक्रम को इस प्रकार बदल देने की सम्मति दी कि बालक अंग्रेज़ी भाषा ही अनिवार्य रूप से सीखे, अंग्रेज़ी साहित्य को नहीं।

माध्यमिक शिक्षालयों के शिक्षण को रोचक तथा स्वाभाविक बनाने और विद्यार्थियों को व्यवसायों की ओर झुकाने के लिये वुड महोदय ने रचनात्मक हस्तकलाओं को पाठ्यक्रम में रखने पर विशेष ज़ोर दिया। अध्यापकों को नवीनतम शिक्षण पद्धतियों से अवगत कराने और उनको अरोचक शिक्षण ढंगों से दूर रखने के लिये भी वुड ने समय-समय पर रिफ्रेशर कोर्स को भी आवश्यक बताया।

उन्होंने इस शिक्षा के लिये लम्बी अवधि वाली योजनाओं को आवश्यक माना और इसी लिये शिक्षा विभाग के सक्रेटरी को स्थायी रखने पर ज़ोर दिया। इंस्पेक्टरों और अध्यापकों को अन्य देशों में

भेज कर वहाँ के शिक्षा-संगठन एवं शिक्षण पद्धतियों का प्रत्यक्ष ज्ञान देना भी उन्होंने उपयोगी ठहराया।

भूमिका—"द्वित्व शासन काल प्रारंभिक शिक्षा में शिक्षा के इतिहास की सबसे महत्वपूर्ण घटना लोक-शिक्षा में द्रुत विकास है। इसके पहिले लोक शिक्षा की धीमी गति आधुनिक शिक्षा की सबसे बड़ी कमजोरी थी और इसी हेतु सरकारी नीति की बहुत आलोचना की गई थी।"* यद्यपि कुछ अनिवार्य प्रारंभिक शिक्षा संबंधी कानून इस काल के पहिले बन चुके थे किन्तु वे भी इसी काल में लागू हुये और उसी प्रकार के कुछ नये कानून भी बने। इस पुस्तक के अंत में दिये संयुक्त प्रांतीय अनिवार्य शिक्षा कानून को पढ़ने से स्पष्ट हो जावेगा कि इन नियमों ने प्रारंभिक शिक्षा को अनिवार्य करने का कार्य स्थानीय बोर्डों पर डाल दिया था, जिनके पास न तो यथेष्ट साधन थे और न आवश्यक इच्छाशक्ति। अतः प्रांतीय मंत्री और जनमत ही प्रारंभिक शिक्षा के विकास के प्रमुख कारण थे। प्रारंभिक शिक्षा संबन्धी कानून १९१९ ई० में पंजाब, संयुक्त प्रांत, बंगाल तथा बिहार उड़ीसा में और १९२० ई० में बम्बई मध्य-प्रांत तथा मद्रास में बने। इनमें मद्रास तथा मध्यप्रांत के कानून नगरों तथा गांवों में लड़कों एवं लड़कियों दोनों ही पर लागू थे। पंजाब, बिहार तथा बंगाल के कानून केवल लड़कों को अनिवार्य शिक्षा योजना में लाने के लिये थे। बम्बई तथा संयुक्तप्रांत के कानून केवल म्युनिस्पिल क्षेत्रों के लिये थे। अस्तु मध्यप्रांत तथा मद्रास के क़ानूनों को छोड़ कर अन्य क़ानूनों को अधिक व्यापक बनाना आवश्यक था, जिससे सभी बालक तथा बालिकायें उसके अंतर्गत आ जावें। ऐसे क्षेत्र-विस्तारक कानून १९३२ तक बनते रहे। १९२३ में बम्बई के ग्रामीण क्षेत्रों के लिये अनिवार्य शिक्षा कानून पास हुआ। १९२६

---

*Nurullah & Naik—History of Education in India.

में आसाम तथा संयुक्तप्रांत में और १९३० ई० में बंगाल में भी ऐसे ही नियम बन गये।

अनिवार्य प्रारंभिक शिक्षा सबन्धी कानून—जैसा पहिले भी कहा जा चुका है, इन सभी कानूनों की रूपरेखा मिलती-जुलती थी। बोर्ड अनिवार्य शिक्षा की योजनायें प्रांतीय सरकार के पास भेजते थे जो उन्हें स्वीकृत करती और अतिरिक्त अनुदान प्रथा द्वारा उनके पूरा करने में सहायता देती थी। यह अतिरिक्त अनुदान कभी भी शिक्षा व्यय के एक अंश (साधारणतया प्रायः ६०%) से अधिक न होता था। अस्तु जब तक बोर्ड स्वयं भी कुछ व्यय करने के साधन न जुटालें वे अनिवार्य शिक्षा योजना को हाथ न लगा सकते थे। दूसरे शब्दों में प्रांतीय तथा केंद्रीय सरकार ने अनिवार्य प्रारंभिक शिक्षा को पूर्णतया अपना दायित्व नहीं माना। अस्तु इस काल के अंत तक केवल १६७ नगरों और तेरह हज़ार गावों में अनिवार्य-शिक्षा-योजना प्रयोग में लाई गई थी। अतः स्पष्ट है कि सार्वदेशिक अनिवार्य प्रारंभिक शिक्षा' अभी दूर थी।

सभी कानूनों ने अनिवार्य शिक्षा की आयु छः से ग्यारह अथवा सात से ग्यारह वर्ष तक रखी थी। प्रत्येक क़ानून में बच्चों को न भेजने वाले अभिभावकों को दंडित करने का नियम था।

आर्थिक संकट काल के पहिले प्रांतीय शिक्षा मंत्रियों को व्यवस्थापिका सभाओं से अतिरिक्त अनुदान स्वीकार करानें में कठिनाई न पड़ती थी। जनता तथा नेताओं का विश्वास था कि राजनीतिक जाग्रति और सामाजिक सुधार के लिये प्रारंभिक शिक्षा आवश्यक है और इस लिये उसके हेतु व्यय स्वीकार करना व्यवस्थापिकाओं का कर्तव्य है। साइमन कमीशन ने लिखा था कि मंत्री जनमत के प्रभाव में कार्य करते थे और निरक्षरता का अभिशाप मिटाने के लिये बड़ी आसानी से अनुदान स्वीकृत हो जाते थे।

इस काल में शिक्षा विभाग अपने इंस्पेक्टरों द्वारा लोक शिक्षा का निरीक्षण करते थे, पाठ्यक्रम तथा पाठ्य पुस्तकें निर्धारित करते थे, * और नियमों के द्वारा स्कूलों के संगठन को भी थोड़ा बहुत प्रभावित किया करते थे। कहीं कहीं, जैसे संयुक्तप्रांत में, शिक्षा विभाग का डिप्टी इंस्पेक्टर बोर्ड की शिक्षा-समिति का मंत्री होने के नाते उसके कार्यों पर सरकारी नीति का रंग चढ़ाया करता था। बोर्ड साधारणतया एक शिक्षा-समिति को लोक-शिक्षा (प्रारंभिक तथा मिडिल) का भार सौंप देते थे। मद्रास के प्रत्येक जिले की शिक्षा-समिति में बोर्ड के नामज़द सदस्यों के अतिरिक्त सरकार तथा सहायक-अनुदान प्राप्त शिक्षालयों की प्रबंधक समितियों के प्रतिनिधि भी रहते थे। यही शिक्षा समितियां जिले में प्रारंभिक तथा मिडिल हिन्दुस्तानी शिक्षा के विकास की योजनायें बना कर बोर्ड तथा सरकार के पास भेजती थीं और बोर्ड के प्रारंभिक स्कूलों का प्रबंध करती थीं।

विकास—इस काल में कुछ प्रांतों ने पड़ताल कराई और उसके आधार पर शिक्षा-विकास की ऐसी योजनायें बनाने का प्रयास किया कि सभी बालक तथा बालिकाओं के गांवों के आसपास कोई न कोई स्कूल अवश्य हो। मद्रास तथा संयुक्तप्रांत में भी पड़ताल हुई थी और नकशे बनवाये गये थे। इनका मुख्य उद्देश्य स्कूलों का अधिक सुचारु एवं विचार पूर्ण वितरण था।

इन सब बातों के सम्मिलित प्रभाव के फल स्वरूप इस काल में प्रारंभिक शिक्षा का पर्याप्त विकास हुआ जैसा कि निम्नांकित आंकड़ों से स्पष्ट है। १९२७ तक अधिकांश व्यय सरकार ही करती रही थी,

---

* संयुक्त प्रांत में इन मामलों पर शिक्षा-विभाग को परामर्श देने के लिये हिन्दुस्तानी शिक्षा का बोर्ड है।

किन्तु १९३७ तक घटते-घटते सरकार का भाग प्रायः ५०% ही रह गया था।

		१९२१	१९२७	१९३७
संस्था हजारों में	प्रारंभिक स्कूल (स्वीकृत)	१५५	१८५	१९२
	विद्यार्थी	६११०	८०१८	१०२२४
व्यय लाखों में	सरकारी	२३३	३०४	३४४
	ग़ैर सरकारी	१८८	२७१	३३२

इस प्रकार स्पष्ट है कि विकास हो रहा था और ज़ोरों से हो रहा था किन्तु साक्षरता उसी वेग में नहीं बढ़ रही थी। कठिनता से प्रतिशत पन्द्रह व्यक्ति साक्षर थे। इस प्रयास के इतने कम प्रभाव के कई कारण थे। हर्टाग समिति और साइमन कमीशन ने इन दोषों को लक्ष किया। श्री वुड ने भी इन दोषों को दूर करने पर ज़ोर दिया।

विकाश में अड़चनें—(१) प्रारंभिक शिक्षा के यथेष्ट विकास न करने का मुख्य कारण यह था कि अधिकांश स्कूलों में काफी विद्यार्थी न जाते थे और विद्यार्थियों में अधिकांश पूर्णतया साक्षर हुये बिना ही पढ़ना छोड़ देते थे। हर्टाग समिति ने लिखा था कि प्रारंभिक शिक्षा में अपव्यय और असफलता के कारण साक्षरता के अनुपात में उचित वृद्धि नहीं हो रही थी। इस समिति और साइमन कमीशन के मत में स्थायी साक्षरता प्राप्त करने के लिये बच्चों को कम से कम चार वर्ष स्कूलों में रहना आवश्यक था। कमीशन ने १९२३ से १९२७ तक कक्षावार विद्यार्थियों की संख्यायें देकर स्पष्ट किया था कि प्रायः १९% लड़के और दश प्रतिशत लड़कियां ही स्थायी रूप से साक्षर हो पाते थे, शेष बीच ही में पढ़ना छोड़ जाते थे। पढ़ना छोड़ जाने के मुख्य दो कारण थे: असफलता (Stagnation) और अपव्यय (Wastage)।

असफलता—इस शब्द से तात्पर्य उन विद्यार्थियों से है जो स्कूली शिक्षण मे किसी कारण वश यथेष्ट लाभ नहीं उठा पाते और इस प्रकार काफी समय निम्नतर कक्षाओं में ही फेल होते रह कर वे अन्त में पढ़ना छोड़ जाते हैं।

अपव्यय—इस शब्द से तात्पर्य उन विद्यार्थियों से है जो कक्षा चार तक पहुँचने के पहिले ही किसी कारण स्कूल छोड़ देते हैं। अपव्यय के मुख्य कारणों में जनता की गरीबी है। अपने बच्चों के श्रम से लाभ उठाने के लिये लोग उन्हें स्कूलों से हटा लेते हैं। लड़कियों की शिक्षा में अपव्यय के कारण हैं बाल विवाह, पर्दा प्रथा और यह विश्वास कि शिक्षा से स्त्रियों को कोई विशेष लाभ तो होता नहीं वरन् चारित्रिक दोषों की आशंका और बढ़ जाती है। इसका एक प्रमुख कारण जिन गावों में पूरा प्रारंभिक स्कूल नहीं था वहां के अनेक विद्यार्थी अपने गाव की पाठशाला का कोर्स समाप्त करके दूसरे गावों में जाना पसंद न करते थे।

साधारण जनता का शिक्षा पर विश्वास न होना भी एक कारण था। इसका मुख्य दोष पाठ्यक्रम में था जो स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप न था। अभिभावकों और विद्यार्थियों को साक्षरता प्राप्त करने से कोई विशेष लाभ न दिखलाइ पड़ता था। न तो सामाजिक शिक्षा का ही—न पुस्तकालय, वाचनालय आदि का ही कोई प्रबंध था और न प्रारंभिक शिक्षा से लोग पटवारी, जमींदार, महाजन अथवा पुलिस के चंगुल से बचने में ही अधिक चतुर हो पाते थे। इन स्कूलों में कृषि तथा स्थानीय उद्योग धधों को सिखाने का भी कोई प्रबन्ध न था। श्री वुड ने इन दोषों को दूर करने की ओर संकेत किया था।

असफलता का मुख्य कारण पाठन विधि थी। श्री वुड के मत में यदि स्त्रियां अध्यापक होतीं तो वे अधिक सहानुभूति दिखा कर

बहुतेरे 'असफल' बच्चों को साक्षर बनाने में सफल होती। इसी प्रकार यदि पाठ्यक्रम में किताबों की रटाई और परीक्षा की प्रधानता के स्थान पर शिक्षा संबन्धी क्रियाओं तथा खेलों का समावेश होता तो ये असफल विद्यार्थी भी साक्षरता प्राप्त करने में सफल होते। एक कारण यह भी था कि विद्यार्थियों की ठीक उपस्थिति और अनिवार्य शिक्षा का प्रबन्ध न होने के कारण एक ही कक्षा में विभिन्न आयु और ज्ञान वाले विद्यार्थी रहते थे। एक ही अध्यापक को ऐसी तीन असमान कक्षायें देखना पड़ती थीं। अतः वह उचित ध्यान न तो देता ही था और न दे ही सकता था। थोड़े समय के बाद 'दीक्षा' से प्राप्त संस्कार भी नष्ट हो जाते थे और तब अध्यापक फिर उसी दकियानूसी पद्धति को व्यवहार में लाने लगता था। शिक्षण व्यापार को उचित रूप से चलाने के लिये यह नितान्त आवश्यक था कि इन अध्यापकों को बीच-बीच में रिफ्रेशर कोर्सों में भेजा जाता।

(२) **निरीक्षण**—निरीक्षण का भी समुचित प्रबंध न था। साधारणतया वर्ष में एक दो बार भी पूर्ण निरीक्षण न हो पाता था। यदि निरीक्षण होता भी था तो इतना शीघ्र कि इंस्पेक्टर अध्यापकों को उचित परामर्श देने में असफल रहता था।

(३) **छोटे स्कूल**—शिक्षा के इस सगठन को सुधारने में कई अड़चनें थीं। यहां पर छोटे छोटे गांव हैं, और उनमें भी जाति तथा धर्म के बंधनों के कारण अलग-अलग स्कूल खोलने पड़ते हैं, जिससे प्रत्येक स्कूल में विद्यार्थियों की संख्या कम होती है और एक या दो से अधिक अध्यापकों को नियुक्त करना आर्थिक दृष्टि से असंभव हो जाता है।

(४) **वयस्क शिक्षा के प्रबंध की कमी**—साथ ही अशिक्षित वयस्कों को साक्षर बनाने का प्रयास बहुत ही धीमी गति से चल रहा था। इनको साक्षर बनाने की निश्चित योजना के बिना साक्षरता को शीघ्रता से बढ़ाना असंभव था।

(५) **आर्थिक संकट**—१९३० के बाद आर्थिक संकट भी विकास में बाधक हुआ। इसके कारण सरकार यथेष्ट मात्रा में व्यय न कर सकी और विकास-योजनायें रोक दी गईं।

(६) **शिक्षा क़ानून**—अनिवार्य शिक्षा संबंध क़ानून भी दोष पूर्ण थे क्योंकि अनिवार्य शिक्षा को बोर्डों की इच्छा पर ही छोड़ दिया गया था। प्रान्तीय सरकार को या तो स्वयं इसे अपने हाथ में ले लेना चाहिये था और या फिर बोर्डों को ही एक निश्चित अवधि के भीतर अनिवार्य शिक्षा लागू करने को बाध्य करना चाहिये था।

हर्टॉग समिति—इन दोषों को दूर करने के लिये हर्टॉग समिति ने विकास के स्थान पर संगठन पर अधिक ध्यान देने का परामर्श दिया। इस समिति की सिफारिशें महत्वपूर्ण हैं क्योंकि इस काल के अंत तक उनका बहुत प्रभाव रहा और शिक्षा विभागों की नीति उन्हीं के अनुसार बनती रही। यद्यपि जनता ने इस नीति का समर्थन नहीं किया। जनता का विचार था कि प्रारम्भिक शिक्षा को प्रत्येक गांव तथा घर में पहुँचाये बिना ही उसके विकास को रोक देना जनता को एक मौलिक अधिकार से वंचित करने के ही समान है।

सिफारिशें—प्रारम्भिक शिक्षा का पाठ्यक्रम कम से कम चार वर्ष का होना चाहिये और इस पाठ्यक्रम में आमूल सुधार होना चाहिये। इस पाठ्यक्रम का उद्देश्य साक्षरता ही नहीं वरन् ग्राम्य जीवन के सभी अंगों में "उन्नति" होना चाहिये। स्कूलों को चाहिये कि सफ़ाई, स्वास्थ्य, मितव्ययिता, आत्मविश्वास आदि गुणों को विद्यार्थियों तथा गांव में फैलावें। उन्हें साधारण चिकित्सा वयस्क-शिक्षा, हिन्दुस्तानी साहित्य और मनोविनोद का केन्द्र बन जाना चाहिये।* उन्हें ग्राम-सुधार भी करना चाहिये।

---

* वर्तमान केन्द्रीय शिक्षा मंत्री और केन्द्रीय सलाहकार समिति ने भी इसी का प्रतिपादन किया है।

इन बातों के लिये और पाठन विधियों को रोचक तथा मनोवैज्ञानिक बनाने के लिये अध्यापकों की शिक्षा का स्तर ऊँचा कर देना चाहिये। उनकी दीक्षा तीन वर्ष तक होनी चाहिये और बाद में रिफ्रेशर कोर्स का प्रबन्ध होना चाहिये। उनके वेतन और मान में वृद्धि करना चाहिये जिससे गाव में उनका पद सम्मानित हो और वे स्कूलों के उद्देश्यों को पूरा करने और ग्राम्य जीवन को प्रभावित करने में सफल हों।

सरकार को बोर्डों से शिक्षा सम्बन्धी कुछ अधिकार वापस ले लेना चाहिये जिससे संगठन और प्रबन्ध अधिक सफल हो सकें; क्योंकि प्रारम्भिक शिक्षा सरकार का दायित्व है। निरीक्षण के लिये इंस्पेक्टरों की संख्या बढ़ा देना चाहिये।

अनिवार्य शिक्षा के लिये उपयुक्त वातावरण प्रस्तुत किया जाये, क्योंकि सार्वदेशिक लोक-शिक्षा के लिये यह आवश्यक है। अभी सर्वत्र अनिवार्य शिक्षा लागू करने में कठिनाई है किन्तु जहां कहीं स्कूलों में उपस्थिति कम अथवा अनियमित हो वहां पर अनिवार्यता का नियम अवश्य लगा देना चाहिये।

पाठशालाओं का पाठ्यक्रम, समय तथा छुट्टियां स्थानीय आवश्यकताओं के अनुसार होना चाहिये।

श्री वुड की सिफ़ारिशें—सन् १९३७ ई० में व्यावसायिक शिक्षा के साथ ही साधारण शिक्षा पर भी विशेषज्ञों ने अपना मत व्यक्त किया था। एक तो ये विशेषज्ञ इंगलैंड से बुलाये गये थे, दूसरे इनकी सिफारिशों ने आगे चलकर प्रारम्भिक शिक्षा के संगठन को काफ़ी प्रभावित भी किया, अतः यहां पर उनके मत को दे देना समीचीन होगा।

प्रारंभिक शिक्षा के लिये स्त्री अध्यापिकाओं को अधिकाधिक नियुक्त करना चाहिए। स्त्री शिक्षा पर अधिक ध्यान देना चाहिए।

पाठ्यक्रम में लिखने पढ़ने और गणित के साथ ही स्वास्थ्य तथा अच्छी आदतें डालने का प्रबंध भी होना चाहिए। बच्चों के शिक्षण में क्रियात्मक पद्धतियों का व्यवहार करना चाहिए। अर्थात् पाठन-विधियों में सुधार किया जाय। बच्चों के लिये निम्नलिखित क्रियायें उपयोगी सिद्ध होंगी। गाना, अभिनय, खेल-व्यायाम, बागबानी, प्रकृति-निरीक्षण, पौधों, फूलों और पशुपक्षियों की देख-रेख।

व्यावसायिक शिक्षा (Professional and Vocational Education)

क़ानून—व्यावसायिक शिक्षा में भी इस काल में प्रगति हुई। यद्यपि निःसन्देह राष्ट्र की आवश्यकताओं से कम था। केवल क़ानून की शिक्षा का प्रबन्ध यथेष्ट ही नहीं, वरन् अधिक था। अलीगढ़ और मैसूर को छोड़ कर शेष सभी विश्वविद्यालयों में क़ानून विभाग था। १९३७ ई० तक चौदह कालेजों और छः विश्वविद्यालय-विभागों में क़ानून की शिक्षा दी जाती थी। १९२७ ई० में ८९०८ स्नातकों को क़ानून की डिग्रियाँ मिली थीं। पर अब वकालत के व्यवसाय में गुंजाइश न रह गई थी अस्तु विद्यार्थियों की संख्या घटने लगी और १९३२ तथा १९३७ ई० में क्रमशः ७३५७ और ६७८० स्नातकों को उपाधियां प्राप्त हुईं। विद्यार्थियों की संख्या और भी कम हो जाती किन्तु कुछ विश्वविद्यालयों और कालेजों में सुबह शाम कक्षायें होती थीं, और कला तथा विज्ञान की एम० ए० कक्षाओं के साथ भी क़ानून की कक्षा में भरती हो जाती थी, अस्तु बहुतेरे लोग वकील बनने की इच्छा न रहने पर भी डिग्री प्राप्त कर लेते थे। एल० एल० बी० कक्षा में ग्रेजुएट ही भर्ती होते थे और दो अथवा तीन वर्ष में क़ानून विभाग की डिग्री परीक्षा पास कर लेते थे।

चिकित्सा—चिकित्सा के क्षेत्र में एक बड़ी अच्छी बात यह हुई कि भारतीय चिकित्सा विधियों के भी कालेज तथा स्कूल खुलने

लगे। अलीगढ़ तथा बनारस विश्वविद्यालयों ने देशी पद्धतियों ही को अपनाया। पशुचिकित्सा की शिक्षा अभी बहुत कम थी और केवल सरकारी पदों को प्राप्त करने के लिये थी। मनुष्यों की चिकित्सा के कालेजों की संख्या ग्यारह हो गई, जिनमें दिल्ली का लेडी हार्डिङ्ग कालेज केवल लड़कियों के लिये था। दस विश्वविद्यालयों में चिकित्सा विभाग थे। स्कूलों की संख्या भी बढ़ गई। स्त्रियाँ भी इस व्यवसाय में पुरुषों के समान योग्य सिद्ध हुईं। १९३७ ई० में कालेजों में ४५७ तथा स्कूलों में ९३६ स्त्रियाँ थीं। पुरुषों की संख्या क्रमशः चार हज़ार और छः हज़ार के लगभग थी। देश की आवश्यकताओं के अनुसार अभी बहुत कम वैद्य, हकीम तथा डाक्टर तैयार होते थे और पशु-चिकित्सा की शिक्षा का तो अभी संगठित होना ही शेष था।

इंजीनियरिंग—इंजीनियरिंग कालेजों में भी विकास कम हुआ, यद्यपि उनकी संख्या दूनी तथा विद्यार्थियों की संख्या ढाई गुनी हो गई। १९३७ में सरकार तथा विश्वविद्यालयों द्वारा स्वीकृत आठ कालेजों में दो हज़ार से अधिक विद्यार्थी थे। इन कालेजों का पाठ्यक्रम चार अथवा पांच वर्ष का था और ये इंजीनियर तैयार करते थे। दो वर्ष के पाठ्यक्रम के बाद ओवरसियर तैयार होते थे। ओवरसियरों की शिक्षा के लिये कुछ अलग इंजीनियरिंग स्कूल भी थे यथा लखनऊ के हीवेट तथा सिविल इंजीनियरिंग स्कूल। पुराने रुड़की, शिवपुर, मद्रास तथा पूना के कालेजों के अतिरिक्त अब पटना, लाहौर, कराची तथा बनारस में भी इंजीनियरिंग कालेज खुल गये थे। असहयोग आंदोलन के समय एक राष्ट्रीय इंजीनियरिंग कालेज यादवपुर (बंगाल) में खुला था किन्तु १९३७ तक उसे सरकारी अथवा विश्वविद्यालय की स्वीकृति न मिली थी। मद्रास, बम्बई, कलकत्ता, लाहौर, बनारस मैसूर हैदराबाद तथा पटना विश्वविद्यालयों में इंजीनियरिंग विभाग थे। रुड़की कालेज स्वयं ही अपने प्रमाण पत्र देता था। बंगलौर तथा

धनबाद में बिजली तथा खानों से संबंधित इंजीनियरिंग की शिक्षा का प्रबन्ध था।

इस क्षेत्र में भी विकास की बड़ी आवश्यकता थी। मिलों के लिये इंजीनियर तैयार करने का बहुत कम प्रयत्न हुआ था। अनुसंधान का प्रबन्ध भी सीमित था। अभी यहां के विद्यार्थियों को उच्चशिक्षा के लिये विदेश जाना पड़ता था और विदेशी इंजीनियर ही यहां पर प्रधान थे।

कृषि—हमारे देश के लिये कृषि तथा पशुपालन के महत्व का वर्णन करना बेकार है। आज हम अन्न के लिये विदेशों पर निर्भर हैं यद्यपि अस्सी प्रतिशत जनता कृषि के व्यावसाय में लगी है। १६ वीं शताब्दी में कृषि-शिक्षा का प्रबन्ध पूना, कानपुर, शिवपुर, कलकत्ता, नागपुर तथा सैदापेट (मद्रास) में था। बीसवी शताब्दी के आरम्भ में पूसा, बिहार में एक रिसर्च इंस्टीट्यूट स्थापित हुआ जो भूचाल के बाद दिल्ली चला गया। पूना की कृषि कक्षा पूना कृषि कालेज बन गई, नागपुर तथा कानपुर के स्कूल भी कालेज हो गये। किन्तु बंगाल तथा मद्रास की कक्षायें बन्द हो गई। कोइम्बटूर, लायलपुर तथा नैनी में भी नये कृषि कालेज स्थापित हुये। इन कालेजों का कार्य कृषि-शिक्षा के अतिरिक्त कृषि-सम्बन्धी अनुसंधान करना भी है। पंजाब, मद्रास बम्बई, नागपुर तथा आगरा विश्वविद्यालयों में कृषि विभाग भी है।

कृषि-शिक्षा को अधिक व्यापक बनाने के लिये कृषि तथा शिक्षा-विभागों ने परामर्श करके इस काल के आरम्भ में ही निश्चय कर दिया था कि प्रारम्भिक पाठ्यक्रम में कृषि को स्थान मिलना चाहिये और माध्यमिक शिक्षालयों (मिडिल, हाई स्कूल तथा इंटर कालेजों) में भी कृषि को वैकल्पिक विषय होना चाहिये।

कृषि कमीशन ने मिडिल तथा हाई स्कूलों और इंटर मीजियट कालेजों में कृषि विषय खोलने और उसकी प्रायोगिक शिक्षा के लिये

ज़ोर दिया था। इसने केवल कृषि के लिये माध्यमिक स्तर के व्यावसायिक स्कूलों को ठीक नहीं माना। धीरे-धीरे कृषि शास्त्र माध्यमिक शिक्षालयों में पढ़ाया जाने लगा किन्तु शहरों में स्थान की कमी के कारण बहुत कम शिक्षालयों ने इसकी पढ़ाई का प्रबन्ध किया।

कामर्स—कामर्स की शिक्षा ने भी बहुत प्रगति की। पुराने पांचों विश्वविद्यालयों तथा ढाका और आगरा विश्वविद्यालयों ने कामर्स विभाग खोल कर डिग्री तथा पोस्ट ग्रेजुएट स्तर की शिक्षा का प्रबन्ध किया, यद्यपि पोस्ट ग्रेजुएट कोर्स बहुत ही कम स्थानों पर था। १६३७ ई० में इन कालेजों तथा विश्वविद्यालय विभागों में १३३६ विद्यार्थी थे।

इस काल में कृषि की तरह कामर्स भी माध्यमिक शिक्षालयों में वैकल्पिक विषय था। इसकी लोकप्रियता बढ़ती गई और बहुतेरे हाई स्कूलों तथा कालेजों में इसकी पढ़ाई का प्रबन्ध हो गया। केवल कामर्स की ही शिक्षा देने वाले विद्यालयों की संख्या १६३७ ई० में चार सौ के लगभग थी। इनमें से कुछ ही के प्रमाण पत्र स्वीकृत थे। इनमें प्रायः पन्द्रह हज़ार विद्यार्थी शिक्षा पाते थे। कामर्स की शिक्षा देश की आवश्यकताओं के लिये प्रायः पर्याप्त थी।

टेक्निकल—टेक्निकल शिक्षा का तात्पर्य व्यवसायों तथा मिलों के लिये आवश्यक विशेष शिक्षा से है, जिसको पाने के बाद मनुष्य उद्योगों तथा मशीनों के कार्य को अच्छी प्रकार समझ सकें। इन व्यवसायों में काम करने वाले अधिकतर मज़दूर ही होते हैं। इन्हीं मज़दूरों में से कुछ लोग धीरे-धीरे थोड़ा बहुत काम सीख कर कुशल मज़दूरों की श्रेणी में आ जाते हैं। इनके सिवा कुछ टेक्नीशियन मिस्त्री आदि भी आवश्यक होते हैं। इनके भी ऊपर विभिन्न विभागों के अध्यक्ष होते हैं। जो सूती मिलों में मास्टर कहलाते हैं। यहीं उन्नति करके मैनेजर उपमैनेजर आदि पदों पर पहुंच जाते हैं। इनकी संख्या सीमित

होती है और इन्हें उच्चकोटि की शिक्षा आवश्यक होती है। कुशल मज़दूरों, टेक्नीशियन, मिस्त्री, फोरमैन आदि की भी शिक्षा आवश्यक है।

उन्नीसवीं शताब्दी तक इस देश में संगठित व्यवसायों के नाम पर केवल रेलें ही थीं। कुछ मिल भी खुल रहे थे। अधिकांश व्यवसाय घरेलू प्रथा पर ही चलते थे। उनके लिये शिक्षा अप्रेन्टिस प्रथा ही से मिलती थी, सरकार को थोड़े से टेक्नीशियनों अथवा मिस्त्रियों की आवश्यकता पड़ती थी। उनकी शिक्षा का थोड़ा बहुत प्रबन्ध था। बीसवीं शताब्दी में उच्च कोटि की टेक्निकल शिक्षा के लिये साइंस इंस्टीट्यूट बंगलोर तथा टेक्नोलाजिकल इंस्टीट्यूट कानपुर में प्रबन्ध था। इनका वर्णन उच्च शिक्षा के अंतर्गत आ चुका है। कपड़ा मिलों से सम्बन्धित टेक्निकल शिक्षा के लिये टेक्सटाइल स्कूल बम्बई तथा कानपुर में खुले थे। चमड़े के लिये कानपुर में लेदर इंस्टीट्यूट खुला। लकड़ी तथा पीतल के व्यवसायों की शिक्षा के लिये भी कुछ स्कूल थे। कुछ विद्यार्थी उच्च शिक्षा पाने विदेशों में जाते थे।

१९२१ ई० में यह शिक्षा भी प्रान्तीय विषय बन गयी। अब भारतीय व्यवसायों के विकास पर भी ज़ोर दिया गया अतः इस शिक्षा का महत्व और भी बढ़ गया। शिक्षितों में बेकारी की समस्या को सुलझाने के लिये भी टेक्निकल तथा व्यावसायिक शिक्षा को प्रोत्साहन देना आवश्यक हो गया। अतः यह कहना अत्युक्ति पूर्ण न होगा कि १९२१ के बाद से ही टेक्निकल शिक्षा का महत्व स्वीकृत हुआ है। अब विदेशों में टेक्निकल शिक्षा के लिये अधिक सुविधाओं और व्यवसायों को विकसित करने की मांग हुई। साथ ही भारतवर्ष में ही टेक्निकल शिक्षा के लिये समुचित प्रबन्ध की मांग की गयी। लिटन कमेटी ने भी इंगलैंड में भारतीयों को टेक्निकल शिक्षा दिलाने की कठिनाइयों का उल्लेख करने के बाद भारतवर्ष में ही उनकी शिक्षा का प्रबन्ध करने का परामर्श दिया।

इसी हेतु बंगलौर तथा कानपुर के इंस्टीट्यूटों को संवर्धित करने के अतिरिक्त सरकार ने धनबाद में खनिज स्कूल (१६२६) स्थापित किया। बम्बई विश्वविद्यालय में केमिकल तथा टेक्सटाइल टेक्नालाजी की उच्च कोटि की शिक्षा का प्रबन्ध हुआ। बनारस विश्वविद्यालय ने भी टेक्नालाजी की शिक्षा का प्रबन्ध किया। कानपुर में इम्पीरियल इंस्टीट्यूट आफ शुगर टेक्नालाजी खुला। इन सभी में डिग्री तथा पोस्ट ग्रेजुएट स्तर की शिक्षा तथा अनुसन्धान का प्रबन्ध है। विदेशों में भी उच्च शिक्षा के लिये विद्यार्थी जाते रहे। १६३७ ई० में उच्च टेकनिकल शिक्षा के लिये दो सौ से अधिक विद्यार्थी विदेशों में थे।

निम्नकोटि की टेक्निकल शिक्षा ने भी इस काल में प्रगति की जिसके परिणाम स्वरूप १६३७ ई० में प्रायः साढ़े पांच सौ शिक्षालय थे जिनमें तीस हज़ार विद्यार्थी थे। इनमें प्रमुख बम्बई तथा बड़ौदा के टेक्निकल इंस्टीट्यूट, कानपुर से रामपुर (कलकत्ता) तथा बंगलौर के टेक्सटाइल स्कूल, कानपुर का चमड़े का स्कूल तथा बरेली का सेन्ट्रल वुड वर्किङ्ग इंस्टीट्यूट हैं।

आर्ट—भारतीय कलाओं की शिक्षा का बहुत कम प्रबन्ध था। शांति निकेतन में ही भारतीय शिल्पों की उच्चकोटि की शिक्षा दी जाती थी। उन्नीसवीं शताब्दी में सरकार ने मद्रास, बम्बई, लाहौर तथा कलकत्ते में भारतीय कलाओं (Arts and Crafts) के स्कूल खोले थे। इस शताब्दी में दो और सरकारी स्कूल लखनऊ तथा अहमदाबाद में खुले। आठ ग़ैर सरकारी स्कूल भी खुले किन्तु प्रायः ७५% विद्यार्थी छः सरकारी स्कूलों में शिक्षा पाते थे। १६३७ ई० में कुल विद्यार्थियों की संख्या २१०० थी। इन स्कूलों में रंग, डिज़ाइन तथा सोने चाँदी का काम सिखाया जाता है। इनके विद्यार्थियों में से कुछ स्वतंत्र व्यवसाय कर लेते हैं और कुछ कपड़ा मिलों में तथा माध्यमिक शिक्षालयों में स्थान पा जाते हैं।

वुड तथा एबट की रिपोर्ट—१६३६ ई० में टेक्निकल, आर्ट तथा संपूर्ण व्यावसायिक शिक्षा पर परामर्श के लिये भारत सरकार ने श्री एबट तथा वुड को इंगलैण्ड से आमंत्रित किया। इन्होंने १६३७ ई० में अपनी रिपोर्ट उपस्थित की जिसमें व्यावसायिक शिक्षा के सभी पहलुओं पर विचार किया गया था।

सरकार ने इन लोगों से निम्नलिखित बातों पर परामर्श माँगा था। प्रथम, क्या प्रारंभिक मिडिल तथा उच्च माध्यमिक शिक्षालयों में व्यावसायिक अथवा क्रियात्मक शिक्षा देना चाहिए? यदि हाँ तो उसका क्या स्वरूप होना चाहिए?

द्वितीय, पहिले प्रश्न के उत्तर को दृष्टि में रखते हुए क्या वर्तमान टेक्निकल तथा व्यावसायिक शिक्षालयों में सुधार संभव है? यदि हाँ तो किस प्रकार? यदि नये व्यावसायिक शिक्षालय आवश्यक हों तो (अ) किस प्रकार के शिक्षालय आवश्यक होंगे? (आ) माध्यमिक शिक्षालयों से किस समय विद्यार्थी इन शिक्षालयों में भेजे जावें (इ) विद्यार्थियों को कैसे भेजा जावे, अर्थात् व्यावसायिक परामर्श (Vocational guidance) का संगठन कैसा हो?

तृतीय—ग्राम्य क्षेत्रों की विशिष्ट आवश्यकताओं के लिये कोई विशेष प्रबंध। विशेषतया गाँव के बालक शहरों के स्कूलों में आकर उनकी संख्यायें बढ़ा देते हैं, तथा मुख्यतया साहित्यिक शिक्षा पाकर ग्रामीण क्षेत्रों की सेवा नहीं करते, इस बात को रोकने के लिये उपाय।

श्री वुड का मत—प्रारंभिक तथा माध्यमिक शिक्षा में रचनात्मक क्रियाओं और विषयों को रखने तथा व्यावसायिक शिक्षा में रुचि उत्पन्न करने और शिक्षा को मनोवैज्ञानिक ढंगों पर लाने एवं वातावरण से संबंधित करने के लिये उन्होंने माध्यमिक शिक्षालयों में आर्ट (कला) तथा अन्य क्रियात्मक विषयों यथा क्राफ्ट, लकड़ी

का काम, बुनाई, जिल्दसाज़ी, कृषि आदि पर अधिक ज़ोर देने का विचार प्रगट किया।

श्री एबट के विचार—व्यावसायिक शिक्षा का आकार स्थानीय व्यवसायों की आवश्यकताओं के अनुरूप होना चाहिए अतः प्रत्येक प्रांत को व्यावसायिक शिक्षा सम्बन्धी अपनी आवश्यकताओं की पड़ताल के बाद स्थिर करना चाहिये।

व्यवसायों की उन्नति के लिये सुयोग्यतम व्यक्तियों की आवश्यकता है। व्यावसायिक शिक्षा भी शरीर, आत्मा तथा मस्तिष्क का अधिकतम विकास करती तथा समाज को लाभ पहुँचाती है। इस कारण व्यावसायिक शिक्षा साहित्यिक से न तो कम महत्व पूर्ण है और न साधारण शिक्षा से भिन्न। यथार्थ में व्यावसायिक शिक्षा साधारण शिक्षा का विकसित रूप है। सभी व्यावसायिक शिक्षालयों के विषयों का आरम्भ साधारण शिक्षालयों में होता है। किन्तु दोनों शिक्षाओं के उद्देश्य अलग-अलग होने के कारण उनके अलग-अलग शिक्षालय होने चाहिये।

संगठित व्यावसायों के कर्णधारों (उद्योगपतियों) को व्यावसायिक शिक्षालयों को सहयोग तथा परामर्श देना चाहिये जिससे इनके विद्यार्थी व्यावसायों की आवश्यकताओं के अनुरूप शिक्षा पा सकें। भारतवर्ष में अभी तक ऐसा नहीं है।

कृषि तथा घरेलू धन्धों की कुशलता बढ़ाने के लिये भी व्यावसायिक शिक्षा का प्रबन्ध होना चाहिये।

संगठित व्यवसायों के श्रमिकों को तीन वर्गों में बांट सकते हैं।

(अ) निर्देशक तथा प्रबन्धक (अ) निरीक्षण (Supervisors)

(३) मशीनें चलाने वाले (Operative) प्रथम वर्ग के लोगों के लिये अभी आवश्यकता नहीं है, और भावी आवश्यकताओं को देश की उच्च टेक्निकल संस्थायें पूरा कर सकती हैं।

आज कल निरीक्षक वर्ग—फोरमैन चार्ज हैंड आदि की शिक्षा-

दीक्षा पर ध्यान देना आवश्यक है क्योंकि इन्हीं की कुशलता पर उत्पादन निर्भर है।

मशीनों को चलाने वालों की शिक्षा व्यावसायिक शिक्षालयों में बहुत कम संभव है। काम से छुट्टी पाने पर ही इनकी शिक्षा का प्रबंध होना चाहिये, जिससे वे कारखानों के अनुभव तथा शिक्षालय के ज्ञान को साथ-साथ प्राप्त कर सकें।

इन आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये प्रत्येक प्रांत में व्यावसायिक शिक्षा सलाहकार समिति (Advisory Council for Vocational Education) होना चाहिये। इसमें शिक्षा तथा उद्योग (Industries) विभागों के संचालक, व्यावसायिक स्कूलों के दो तीन प्रिंसिपल्स और चार पांच अनुभवी औद्योगिक हों। यह समिति निम्न उपसमितियां नियत करे (१) इंजीनियरिंग (२) कपड़ा व्यवसाय (Textile Industry) (३) कृषि (४) घरेलू उद्योग धंधे (५) अन्य महत्वपूर्ण उद्योग, (६) कामर्स। यही उपसमितियां अपने विभागों का पाठ्यक्रम, और उसे पढ़ाने के लिये आवश्यक सामान की सूची बनावेंगी ; स्कूलों का स्थान निर्दिष्ट करेंगी तथा उनका निरीक्षण भी करेंगी। संक्षेपतः प्रत्येक उपसमिति अपनी शिक्षा के लिये उत्तरदायी होगी।

व्यावसायिक शिक्षा का आधार यथेष्ट साधारण शिक्षा होना चाहिये, जो लोग मिडिल भी न पास हों उन्हें तो इन स्कूलों में दाखिल ही न करना चाहिये। मिडिल पास विद्यार्थी जूनियर व्यावसायिक स्कूलों में (Junior Vocational Schools) प्रवेश पावें तथा उच्चतर माध्यमिक परीक्षा (Higher Secondary Examination) पास करने वाले सीनियर व्यावसायिक स्कूल में प्रविष्ट हों।

जूनियर व्यावसायिक स्कूलों के सफल विद्यार्थी या तो सीनियर

स्कूलों में अथवा औद्योगिक स्कूलों * (Trade Schools) में भर्ती होंगे अथवा नौकरी कर लेंगे। इनका पाठ्यक्रम तीन वर्ष का हो और ये माध्यमिक शिक्षालयों के समान माने जावें। सीनियर स्कूलों का पाठ्यक्रम दो वर्ष का हो तथा वे इंटर कालेजों के समकक्षी माने जावें। व्यवसायों में नौकर युवकों की अर्ध सामयिक (Part Time) शिक्षा का भी प्रबंध इन शिक्षालयों में होना चाहिये। भारत वर्ष में इन शिक्षालयों का रूप जूनियर टेक्निकल तथा सीनियर टेक्निकल स्कूलों का होना चाहिये जो संगठित व्यवसायों के लिये क्रमशः कुशल कारीगर (ortisans & foreman) तथा निरीक्षक (Supervisors) तैयार करें। ये व्यावसायिक केंद्रों में स्थापित हों।

व्यावसायिक शिक्षा भी शिक्षा विभाग के अंतर्गत आ जाना चाहिये।

जूनियर टेक्निकल स्कूलों के पाठ्यक्रम में गणित, टेक्निकल ड्राइंग, वर्कशापों की पद्धतियां (Workshop practice), उनके आधार भूत वैज्ञानिक नियम और अंग्रेज़ी हों। माध्यम मातृभाषा हो। तीसरे वर्ष विद्यार्थियों को किसी एक विषय में विशेष योग्यता प्राप्त करने का अवसर रहे, यथा इंजीनियरिंग, बिजली, कपड़ा व्यवसाय (Textile) अथवा स्थानीय महत्वपूर्ण अन्य व्यवसाय। सीनियर स्कूलों में गणित, भौतिक तथा रसायन शास्त्रों के अतिरिक्त ड्राइंग, वर्कशाप पद्धति और मशीनों का ज्ञान (Mechanics) हो जो व्यवसायों में निरीक्षक वर्ग के लिये आवश्यक हैं।

प्रारंभिक शिक्षालयों में कृषि का ज्ञान अनिवार्य हो तथा कुछ माध्यमिक शिक्षालयों में कृषि वैकल्पिक विषय रहना चाहिये। इसी प्रकार कुछ माध्यमिक विद्यालयों में कामर्स वैकल्पिक विषय रहे।

* औद्योगिक स्कूल किसी एक विशिष्ट उद्योग की प्रायोगिक शिक्षा देता है।

युक्त प्रांत तथा पंजाब में टेक्निकल शिक्षा का काफी प्रबन्ध है किन्तु उस पर व्यय अधिक होता है, एक ही स्कूल में कई व्यवसायों की शिक्षा का प्रबन्ध करने से व्यय घट जायेगा। इस प्रकार के पालीटेक्निक (Polytechnic) स्कूलों में विद्यार्थी भी अधिक आकृष्ट होंगे।

भारतीय कला की परम्परा की रक्षा के लिये आवश्यक है कि सभी स्कूलों में आर्ट की शिक्षा पर ज़ोर दिया जावे।

प्रयाग में एक प्रिंटिंग स्कूल स्थापित होना चाहिये।

दिल्ली में व्यावसायिक दीक्षांत महाविद्यालय (Vocational Training College) स्थापित करना चाहिये। इसी से सम्बन्धित टेक्निकल तथा आर्ट क्राफ्ट के स्कूल हों। लड़कों को व्यावसायिक परामर्श (Vocational guidance) का भी प्रबन्ध करना चाहिये। संयुक्त प्रांतीय बेकारी समिति (U. P. Umenployment Committee or Sapru Committee) का यह मत ठीक ही है कि सरकार को चाहिये कि सभी व्यवसायियों की सुविधाओं के सूचना पत्र वितरित करे।

सारांश

मांटफोर्ड सुधारों के लागू होने पर शिक्षा हस्तांतरित प्रतीक विषय बन गया। मंत्रियों के हाथ में आने पर शिक्षा के सभी अंगों में उन्नति आरम्भ हुई। साइमन कमीशन तथा हर्टाग समिति ने मंत्रियों के कार्य की प्रशंसा की और शिक्षा संगठन के दोषों को दूर करने के लिये सुझाव दिये, जिससे शिक्षा अधिक ठोस और विद्यार्थियों के वातावरण तथा देश की आवश्यकताओं के अनुरूप बन सके। उन्होंने भारत सरकार को शिक्षा के लिये उत्तरदायी बने रहने पर बल दिया।

१९३१ के आर्थिक संकट के कारण सरकारी शिक्षा व्यय में कटौती

हुई किन्तु जनता ने शिक्षा के लिये काफ़ी साधन जुटाये। इस प्रकार १९३७ ई० तक शिक्षा के सभी अंगों में अनवरत वृद्धि हो रही थी। यद्यपि १९२७-३७ काल में १९१७-२७ काल से कम वृद्धि हुई थी। इस काल के अंत में अंतर्विश्वविद्यालय समिति, अखिल भारतीय शिक्षा संघ तथा श्री वुड और एबट ने शिक्षा के पुनः संगठन पर ज़ोर दिया। १९३५ ई० में केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार समिति पुनः संगठित हुई। १९३७ ई० में वुड तथा एबट दो ब्रिटिश विशेषज्ञों ने व्यावसायिक शिक्षा के संगठन पर एक रिपोर्ट प्रस्तुत की।

उच्च शिक्षा में इस काल में बड़ी वृद्धि हुई। पांच बड़े विश्वविद्यालयों—दिल्ली, नागपुर, आंध्र, अन्नामलाई तथा आगरा का संगठन हुआ। पुराने विश्वविद्यालयों में शिक्षा तथा अनुसंधान का अधिक प्रबंध हो गया। कालेजों तथा विश्वविद्यालयों के विभागों की संख्या भी दूनी हो गयी।

माध्यमिक शिक्षा में भी इस काल में बड़ी प्रगति हुई। प्रायः साढ़े पांच हज़ार नये माध्यमिक शिक्षालय खुले। तब प्रायः तेइस लाख विद्यार्थी इनमें शिक्षा पा र थे। प्रान्तीय भाषायें माध्यम बन गयीं। अध्यापकों की दशा में सुधार हुआ। पाठ्यक्रम में उपयोगी विषयों की, यथा कृषि, आर्ट, क्राफ़्ट, लकड़ी, काग़ज़ आदि का काम, जिल्दसाज़ी, कामर्स, घरेलू धंधे इत्यादि की लोकप्रियता बढ़ी।

ब्रिटिश शासन-काल में शिक्षा के इतिहास की सबसे महत्वपूर्ण घटना लोक शिक्षा में द्रुत विकास है। इसी काल में कुछ अनिवार्य शिक्षा संबन्धी कानून बने और उनका आंशिक पालन हुआ। इस काल के अंत तक प्रारम्भिक शिक्षालयों की संख्या प्रायः दो लाख हो गयी और विद्यार्थियों की संख्या एक करोड़ हो गयी। इस विकास के अनुरूप साक्षरता न बढ़ रही थी। इसके कई कारण थे यथा अपव्यय और

असफलता, वयस्क शिक्षा तथा सामाजिक शिक्षा का अभाव, देश की निर्धनता, शिक्षा सम्बन्धी कानून में दोष आदि।

हर्टाग समिति तथा श्री वुड ने प्रारम्भिक शिक्षा को सुधारने के के लिये सिफ़ारिशें की थीं।

व्यावसायिक शिक्षा में इस काल में प्रगति हुई। क़ानून चिकित्सा इंजीनियरिंग एवं टेक्निकल शिक्षा के साधन बढ़ गये। व्यावसायिक शिक्षा पर एबट तथा वुड दो ब्रिटिश विशेषज्ञों ने १६३७ ई० में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। इस रिपोर्ट में व्यावसायिक शिक्षा को साधारण शिक्षा के निकटतर लाने और व्यवसायों को आवश्यकता के अनुसार संगठित करने के लिये परामर्श था।

प्रश्न

१. द्वित्व शासन काल में साक्षरता बढ़ाने के उपायों का वर्णन कीजिये। उनमें कहाँ तक सफलता मिली?

२. असफलता और अपव्यय पर नोट लिखिये। इनको दूर करने का क्या उपाय है?

३. माध्यमिक शिक्षा ही पर देश की उन्नति संभव है। इस काल में माध्यमिक शिक्षा इस दृष्टिकोण से कहाँ तक उचित और यथेष्ट थी।

४. इस काल में विश्वविद्यालयों के विकास की आलोचना कीजिये। राष्ट्रीय आवश्यकताओं के दृष्टिकोण से उनमें क्या कमी थी?

५. वुड और एबट की सिफारिशों का वर्णन करते हुये उन पर टिप्पणी लिखिये।

अध्याय ८

प्रांतीय स्वायत्त शासन की स्थापना के बाद
(१९३७-४९)

प्रस्तावना—१९३५ के बाद गवर्नमेंट आफ़ इंडिया ऐक्ट द्वारा प्रांतों में स्वायत्त शासन और केंद्र में संघ की स्थापना की योजना बनी। संघ की स्थापना के लिये कुछ ऐसी शर्तें थीं जिनसे वह भाग तो लागू न हो सका किन्तु १९३७ ई० में प्रांतों में स्वायत्त शासन की स्थापना के द्वारा अधिकांश प्रांतीय विषयों पर उत्तरदायी मंत्रियों का अधिकार हो गया। ग्यारह बड़े प्रांतों में स्वायत्त शासन लागू हुआ इनमें से सात में कांग्रेस मन्त्रिमण्डल बने। देश में प्रजातांत्रिक शासन का प्रथम अवसर था। कांग्रेस दल को अब अपने रचनात्मक कार्यक्रम को कार्यान्वित करने का अवसर मिला। देश के उत्थान के लिये शिक्षा का महत्व सभी को मालूम था। देश के बड़े-बड़े नेताओं ने स्वायत्त शासन को सफल करने में कोई कोर कसर न रखी। अस्तु १९३५ ई० के बाद शिक्षा के संगठन पर पड़ताल और उसे देश की परम्परा तथा आवश्यकता के अनुकूल बनाने का प्रयास सभी प्रांतों में होने लगा। प्रौढ़ शिक्षा-योजनायें भी शिक्षा-संगठन का अंतरंग भाग बन गईं। यह छान बीन समाप्त भी न हो पाई थी, और नये विचारों को पूर्णतया कार्यान्वित करने का अवसर भी न मिलने पाया था कि हिटलर ने पोलैण्ड पर आक्रमण कर दिया और सितम्बर १९३९ में ब्रिटेन ने युद्ध-घोषणा कर दी। गवर्नर जनरल ने देश के नेताओं और स्वायत्त शासन वाले प्रांतों से परामर्श किये बिना ही भारतवर्ष को भी युद्ध में

झोंक दिया। कांग्रेस दल ने इस कार्य को अनुचित मानकर युद्ध में भारत को घसीटने के विरोध में पदत्याग कर दिया। युद्ध काल में कांग्रेस तथा ब्रिटेन में समझौते के प्रयास असफल होने पर दमनचक्र चलने लगा। इस कारण युद्ध-काल में सरकार तथा राष्ट्रीय नेताओं में सहयोग न हो सका और रचनात्मक योजनायें प्रायः ठप हो गई। युद्ध सम्बन्धी व्यय भी इसका एक कारण था।

जब युद्ध में मित्र देशों की विजय निश्चित हो गई तब केन्द्रीय सरकार ने प्रांतों से युद्धोत्तर योजनायें प्रस्तुत करने को कहा। इस कारण शिक्षा सम्बन्धी योजनायें भी सामने आईं और उन सबके आधार पर केन्द्रीय सलाहकार समिति ने १९४३ ई० में भारतीय शिक्षा के युद्धोत्तर विकास की योजना प्रस्तुत की। इस योजना में सर्वप्रथम देश भर की राष्ट्रीय आवश्यकताओं और नागरिकों के हितों को ध्यान में रखा गया था। व्यय, शासन आदि सभी मामलों पर विचार हुआ था। देश के नेताओं द्वारा प्रस्तुत विचारों का समावेश भी इस योजना में था।

इस काल (१९३७-१९४९) में केन्द्रीय शिक्षा विभाग की शक्ति और कार्यक्षमता बढ़ती रही है। पिछले सन् १९३७ ई० में जब प्रांतीय स्वायत्त शासन का आरंभ हुआ तो केन्द्रीय शिक्षा विभाग का लोक शिक्षा पर बहुत ही कम प्रभाव था। उसके हाथ में चीफ कमिश्नरों वाले प्रांतों की शिक्षा के अतिरिक्त संघीय विश्वविद्यालय, सैनिकों तथा यूरोपियनों के शिक्षालय थे। राजकुमारों की शिक्षा वाइसराय के हाथ में थी।

प्रांतीय सरकारों ने शिक्षा के विकास में यह महसूस किया कि केन्द्रीय सरकार की सहायता के बिना शिक्षा राष्ट्र की आवश्यकताओं के अनुरूप नहीं बनाई जा सकती। गांधी जी की वर्धा योजना की आर्थिक व्यवस्था पर अधिकतर लोगों का विश्वास न जमता था,

उनके मत में शिक्षा का भार सरकार पर ही होना चाहिये था। १९४३ में केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार समिति ने अपनी युद्धोत्तर शिक्षा विकास की योजना में भी केन्द्रिय शिक्षा विभाग को सशक्त बनाने का परामर्श दिया। अस्तु १९४५ ई० से केन्द्रीय शिक्षा विभाग अलग कार्यकारिणी कौंसिल के एक सदस्य को सौंपा गया।

शिक्षा विभाग का कार्य भी बढ़ गया। विश्वविद्यालय अनुदान समिति (University Grants Committee) नियुक्त हुई जिसका पहिला अधिवेशन १९४६ में हुआ। टेक्निकल शिक्षा पर भी एक स्थायी समिति बन गई। संक्षेप में इस समय से केन्द्रीय शिक्षा विभाग के अंतर्गत निम्न समितियां और कार्य हैं।

(अ) चीफ कमिश्नरों वाले प्रांतों की संपूर्ण शिक्षा।

(आ) संघीय अथवा केन्द्रीय विश्वविद्यालय।

इनको तथा अन्य विश्वविद्यालयों को अनुदान की सिफारिश करने के लिये।

(इ) विश्वविद्यालय अनुदान समिति।

(ई) केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार समिति।

(उ) शिक्षा आंकड़ा समिति (Bureau of Education)

(ऊ) अखिल भारतीय टेक्निकल शिक्षा कौंसिल (All India Council of Technical Education) और दिल्ली पोलीटेक्निकल विद्यालय। इसके सिवा केन्द्रीय शिक्षा विभाग सांस्कृतिक सहयोग और उन्नति के लिये उत्तरदायी है। वह छात्रवृत्तियों द्वारा विद्यार्थियों को विदेशों में शिक्षा के लिये भेजता है। फौज से निकले सिपाहियों की शिक्षा का प्रबंध भी करता है।

दिल्ली की इंपीरियल लाइब्रेरी, इम्पीरियल रेकार्ड डिपार्टमेंट पुरातत्त्व विभाग (Archaological Survey of India) और नर विज्ञान संबंधी खोज (Anthropological Survey) भी

शिक्षा विभाग ही के अंतर्गत हैं। अब प्रांतों पर केन्द्रीय शिक्षा विभाग प्रांतीय शिक्षा विकास योजनाओं के लिये सहायता और परामर्श द्वारा नियंत्रण रखता है।

युद्धबन्दी के बाद पुनः वैधानिक शासन स्थापित हुआ। राजनीतिक अंड़गे को दूर करने के लिये अंतरिम नेहरू मंत्रिमंडल बना और उसके नेतृत्व में अगस्त १९४७ ई० में भारतीय स्वतंत्रता क़ानून लागू हुआ। इस तिथि के बाद प्रांतों तथा केंद्रीय नेताओं ने शिक्षा योजनाओं पर पुनः विचार करके नई योजनायें बनाई और उन्हें कार्यान्वित करना आरंभ कर दिया। इन सभी कारणों से अब शिक्षा की प्रगति बड़ी तेज़ी से हो रही है।

बेसिक शिक्षा

वर्धा शिक्षा सम्मेलन (Wardha Education Conference 1937)—१९३७-३९ काल की सबसे महत्वपूर्ण शिक्षा संबंधी घटना वर्धा में शिक्षा विशारदों का सम्मेलन है। इस बैठक के पहिले ही से गांधी जी 'हरिजन' के द्वारा अपने शिक्षा संबन्धी विचारों का प्रचार कर रहे थे। मारवाड़ी शिक्षा समिति (Marwari Education Society) और उसके तत्वावधान में चलने वाले मारवाड़ी हाई स्कूल, वर्धा की रजत जयंती होने जा रही थी। संयोजकों ने श्रीमन्नारायण जी अग्रवाल के सुझाने पर राष्ट्रीय शिक्षा विशारदों का एक सम्मेलन करके राष्ट्रपिता महात्मा गांधी को सभापति बनाया। इसी वर्धा सम्मेलन में २२-२३ अक्टूबर १९३७ ई० को गांधीजी ने अपने भाषण में शिक्षा के पुनः संगठन पर अपने विचारों को प्रकट किया। महात्माजी का देश में जो स्थान था उसके कारण उनके शब्दों पर विचार करना सभी के लिये आवश्यक था।

महात्मा जी का भाषण—महात्मा जी ने स्वागत शब्दों के बाद कहा था "जो विचार मैं आप के सामने रखना चाहता हूं, उनको कहने का ढंग नया है, यद्यपि उन विचारों के संबन्ध में मेरा अनुभव

पुराना है। मेरा प्रस्ताव प्रारंभिक तथा कालेज शिक्षा दोनों ही के बारे में है किन्तु प्रारंभिक शिक्षा पर हमें अधिक ध्यान देना है। माध्यमिक शिक्षा को मैंने प्रारंभिक शिक्षा के अंतर्गत मान लिया है क्योंकि ग्रामीणों के एक अंश को यही शिक्षा उपलब्ध है।

"मेरा स्थिर मत है कि प्रारंभिक शिक्षा के संगठन में अपव्यय ही नहीं है, अपितु वह निश्चित ही हानिकारक है। अधिकांश लड़के अपने अभिभावकों और खान्दानी उद्यमों के काम के नहीं रह जाते। वे बुरी आदतें सीख जाते हैं, शहर वालों के ढंगों की नक़ल करते हैं और थोड़ी सी बातें पढ़ लेते हैं। यह सब और कुछ भी हो शिक्षा नहीं है। अब प्रश्न यह उठता है कि प्रारंभिक शिक्षा का स्वरूप कैसा हो? मेरे विचार में व्यावसायिक अथवा हस्त कलाओं द्वारा शिक्षा देने से ही सुधार संभव है। मुझे टाल्स्टाय फार्म में अपने पुत्रों तथा अन्य बच्चों को लकड़ी तथा चमड़े के काम द्वारा पढ़ाने का अनुभव है।

"मेरी योजना का उद्देश्य तथा कथित उदार शिक्षा के साथ केवल कुछ हस्तकलायें सिखाना ही नहीं है। * मैं चाहता हूं कि संपूर्ण शिक्षा किसी हस्तकला अथवा उद्योग के माध्यम से दी जावे। मध्यकाल में उद्यमों की शिक्षा उन्हीं में कुशलता प्राप्त करने के लिये थी, और बुद्धि को विकसित करने का कोई प्रयास न होता था। इसी कारण उन उद्यमों का ह्रास हो गया।

"प्रायोगिक शिक्षा द्वारा किसी उद्यम के नियमों तथा कला को सिखाने और उसी के द्वारा सम्पूर्ण शिक्षा देने से ही सुधार होगा। तकली से कताई सिखाने में 'कपासों की किस्में, उनके लिये उपयुक्त भारतीय प्रान्तों में भूखण्ड, इस उद्योग के ह्रास का इतिहास, गणित आदि की शिक्षा भी निहित है। मैं तकली को विशेष स्थान देता हूँ

* इसके पहिले तक शिक्षा विशारदों ने यही सुधार निर्दिष्ट किया था। —लेखक

क्योंकि यह उद्यम भारतवर्ष भर में सिखाया जा सकता है।...१६२० ई० की रचनात्मक खादी योजना ही से सात प्रान्तों में कांग्रेसी मंत्रिमण्डल बने हैं, और उनकी सफलता भी इसे कार्यरूप देने पर अवलंबित है।

"प्रारम्भिक शिक्षा में सफ़ाई, हाईजीन, भोजन इत्यादि के साधारण नियमों के ज्ञान के साथ ही लड़कों को अपना काम स्व करने तथा माता पिता की सहायता करने की शिक्षा देना भी आवश्यक है। वर्तमान पीढ़ी के लड़के सफ़ाई और स्वावलम्बन से अनभिज्ञ हैं तथा उनका स्वास्थ्य दुर्बल है। अतः मैं संगीत के साथ ड्रिल द्वारा अनिवार्य शारीरिक शिक्षा का हिमायती हूँ।

"मेरी योजना के आलोचक कहते हैं कि मैं उदार शिक्षा का विरोधी हूँ। यह विचार मुझसे बहुत दूर है। मैं तो उदार शिक्षा देने का मार्ग दिखाना चाहता हूँ।....यह भी कहा जाता है कि हम बच्चों के श्रम से बेजा लाभ उठाना चाहते हैं और इस पद्धति में बड़ा अपव्यय होगा (अर्थात् बहुतेरे बच्चे शिक्षा प्राप्त करने में असमर्थ रहेंगे)। अनुभव इसे असत्य सिद्ध करता है। जहां तक बच्चों पर भार डालने अथवा उनके श्रम से बेजा लाभ उठाने का प्रश्न है, मैं पूछता हूँ कि क्या विपत्ति (बेकारी) से बचना उन पर भार डालना है? तकली अच्छा खिलौना है, उत्पादक होने ही से क्या वह खिलौना नहीं रह जाता? बच्चे एक सीमा तक अपने माता पिता के कारोबार में हाथ बटाते ही हैं। अतः जब बच्चे सूत कातेंगे और कृषि कार्यों में अपने माता पिता की सहायता करेंगे तो उनमें यह भावना भी आ जायगी कि वे अपने माता पिता के ही नहीं हैं वरन् ग्राम तथा देश का भी उन पर अधिकार है और उन्हें उनका ऋण भी चुकाना चाहिये। यही एक मार्ग है। बच्चे शिक्षा वितरण से आश्रित हो जावेंगे, किन्तु यदि वे अपने श्रम से अपनी शिक्षा का व्यय चुकावेंगे तो आत्म-प्रभयी तथा साहसी होंगे। यही पद्धति हिन्दू, मुस्लिम, पारसी, ईसाई

सभी के लिये होगी। लोग पूछते हैं कि मैं धार्मिक शिक्षा पर बल क्यों नहीं देता? क्योंकि मैं उन्हें स्वावलम्ब का व्यावहारिक धर्म सिखा रहा हूँ।

"मेरी समझ में इस शिक्षा की कुशलता की कसौटी इसे स्वावलंबी बनाना है। सात वर्ष के बाद बच्चों को अपनी शिक्षा पर व्यय पूरा कर देना चाहिये और स्वयं कमाऊ बन जाना चाहिये।

"कालेज शिक्षा अधिकांशतया नगरों का प्रश्न है। मैं यह तो न कहूँगा कि प्रारम्भिक शिक्षा के समान यह भी पूर्णतया असफल सिद्ध हुई है किन्तु फिर भी फल यथेष्ट मात्रा में निराशा जनक है। कोई भी ग्रेजुएट बेकार क्यों रहे?

"यदि हम साम्प्रदायिक विद्वेष तथा अंतर्राष्ट्रीय झगड़ों को मिटाना चाहते हैं तो हमें नींव सुदृढ़ तथा शुद्ध रखना चाहिये और उसके लिये नई पीढ़ी को मेरी योजना के अनुसार शिक्षा मिलना चाहिये। इस योजना का आधार अहिंसा है। हमें अपने बच्चों को अपनी संस्कृति, अपनी सभ्यता और अपनी राष्ट्रीय प्रतिभा का यथार्थ प्रतिनिधि बनाना है। यह उन्हें स्वावलंबी प्रारम्भिक शिक्षा दिये बिना असंभव है। यूरोप का आदर्श हमारे लिये अनुपयुक्त है क्योंकि वहाँ की सभ्यता हिंसा और बेजा लाभ उठाने (exploitation) पर निर्धारित है। हम बेजा लाभ उठाने की बात न तो सोच सकते हैं और न सोचेंगे अतः अहिंसा पर अश्रित शिक्षा के अतिरिक्त हमारे लिये कोई चारा नहीं है।"

प्रस्ताव—गांधीजी के भाषण से उनके शिक्षा सम्बन्धी विचार स्पष्ट हैं। उनके चारों प्रस्तावों से वे स्पष्टतर हो जाते हैं, जिनके आधार पर इस सम्मेलन में विचारों का आदान-प्रदान हुआ था।

१. शिक्षा का वर्तमान संगठन किसी भी रूप में देश की आवश्यकताओं को पूरा नहीं करता। उच्च शिक्षा में अंग्रेज़ी माध्यम होने के कारण

शिक्षितों तथा अशिक्षितों के बीच स्थायी दीवार खड़ी हो गई है। इसके कारण शिक्षा छन कर जनता तक नहीं पहुँची है।....व्यावसायिक शिक्षा न होने से शिक्षित वर्ग कोई उत्पादन कार्य नहीं कर सकता और उसके स्वास्थ्य को भी हानि पहुँची है प्रारम्भिक शिक्षा पर किया गया व्यय अपव्यय ही है, क्योंकि वह शिक्षा शीघ्र ही विस्मृत हो जाती है, और उससे गांवों अथवा नगरों को कोई लाभ नहीं होता। वर्तमान शिक्षा से जो भी लाभ होता है वह प्रमुख कर-दाताओं को नहीं मिलता, उनके बच्चों को तो सबसे कम शिक्षा मिलती है।

२. प्रारम्भिक शिक्षा कम से कम सात वर्ष होना चाहिये और उसका पाठ्यक्रम प्रवेशिका परीक्षा के समान हो, केवल उसमें से अंग्रेज़ी निकाल कर एक उपयोगी व्यावसाय शामिल कर दिया जावे।

३. बालकों तथा बालिकाओं के सर्वांगीण विकास के लिये शिक्षा किसी उत्पादक व्यवसाय के माध्यम द्वारा दी जानी चाहिये। दूसरे शब्दों में व्यवसाय के दो उद्देश्य हों बालक अथवा बालिका अपने पूर्ण विकास के साथ ही अपनी शिक्षा का व्यय अपने उद्यम से जुटा दे।....

यह प्रारम्भिक शिक्षा लड़के लड़कियों को अपनी रोज़ी कमाने के योग्य भी बना दे, और सरकार उन्हें सीखे हुये उद्यमों में नौकर रखने अथवा उनके उत्पादन को खरीदने की गारंटी ले।

४. उच्च शिक्षा व्यक्तिगत उद्योग पर छोड़ दी जावे और उसका संगठन देश की साहित्यिक व्यावसायिक, अथवा कलात्मक आवश्यकताओं के अनुसार हो।

राजकीय विश्वविद्यालय परीक्षक विश्वविद्यालय हों और उनका व्यय परीक्षा-फीसों से चल जाना चाहिये।

विश्वविद्यालय शिक्षा के सभी अंगों पर ध्यान देंगे और पाठ्यक्रम प्रस्तुत करेंगे। विश्वविद्यालयों की अनुमति बिना कोई स्कूल न चले। सभी ईमानदार तथा प्रमाणित योग्यता रखने वाली संस्थाओं

को विश्वविद्यालय स्थापित करने के लिये उदारता से आज्ञा पत्र (Charter) मिलना चाहिये साथ ही यह भी समझना चाहिये कि विश्वविद्यालयों पर सरकार को एक शिक्षा विभाग रखने के अतिरिक्त कोई व्यय न करना होगा।

इन प्रस्तावों से स्पष्ट है कि गांधी जी शिक्षा पर सरकारी व्यय बढ़ाना नहीं चाहते थे। वह संभव भी न था।

पास होने वाले प्रस्ताव—बहस के बाद डाक्टर जाकिर हुसेन द्वारा बनाये हुये चार प्रस्ताव पास हुये जो प्रारंभिक शिक्षा से ही संबंध रखते थे। उच्च शिक्षा पर कोई प्रस्ताव स्वीकृत न हुआ।

१ सम्मेलन के मत में समूचे देश में सात वर्ष तक सभी बालक बालिकाओं को निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा मिले।

२. शिक्षा का माध्यम मातृ भाषा हो।

३. सम्मेलन महात्मा गांधी के विचारों का समर्थन करता है कि इस काल में शिक्षा किसी उत्पादक हस्तकार्य को केन्द्र मान कर दी जावे, इसके अतिरिक्त अन्य शिक्षा और योग्यता का विद्यार्थी के वातावरण के अनुसार चुने हुये हस्तकार्य से अंतरंग सम्बन्ध होना चाहिये।

४. सम्मेलन को आशा है कि शिक्षा के इस संगठन में धीरे धीरे अध्यापकों का वेतन निकलने लगेगा।

जाकिर हुसैन समिति (Zakir Husain Committee) इन प्रस्तावों को व्यावहारिक रूप देने के लिये एक समिति नियत की गई, जिसके अध्यक्ष जामिया मिलिया इस्लामिया दिल्ली के प्रिंसिपल डाक्टर जाकिर हुसैन थे। उनके सिवा नौ अन्य सदस्य थे जिनमें प्रमुखतम प्रोफेसर के० टी० शाह, काका कालेलकर और श्री किशोरीलाल मशरूवाला थे। इस समिति ने दिसम्बर १९३७ ई० और अप्रैल १९३८ ई० में दो रिपोर्टें प्रस्तुत कीं। इन रिपोर्टों ने वर्धा

शिक्षा योजना का प्रचार किया। प्रथम रिपोर्ट में योजना के आधारभूत सिद्धान्तों और उद्देश्यों के साथ अध्यापकों की दीक्षा निरीक्षण, परीक्षण तथा शासन का वर्णन था। अंत में ही कताई बुनाई का पूरा पाठ्यक्रम और उसके लिये आवश्यक व्यय आदि का भी वर्णन था। इस रिपोर्ट ने वर्धा योजना को लोगों के सामने यथार्थ में रखा और उसकी आलोचना होने लगी। इन आलोचनाओं को गलत सिद्ध करने के लिये कुछ बातों का गांधी जी ने स्पष्टीकरण किया, तथा समिति ने दूसरी रिपोर्ट में सभी विषयों का पाठ्यक्रम और उसे बेसिक क्राफ्ट से संबंधित करने की विधियों (Methods of Correlation to the Basic Crafts) पर प्रकाश डाला। इसके फलस्वरूप कई आलोचक इसके प्रशंसक बन गये। इसी रिपोर्ट ने प्रांतों को इसे लागू करने का ढग बता दिया। इस रिपोर्ट में कताई बुनाई के सिवा कृषि तथा लकड़ी और धातु के कामों को भी बेसिक क्राफ्ट बनाने की विधि और उनके पाठ्यक्रम का वर्णन है। रिपोर्ट के अन्त में वर्धा शिक्षा सम्बन्धी चार्ट और एक स्कूल के लिये आवश्यक इमारत का भी वर्णन है।

वर्धा शिक्षा योजना की विशेषतायें (१) दृष्टिकोण—उपर्युक्त वर्णन से वर्धा शिक्षा योजना की विशेषताओं का पता चलता है। फिर भी उनका विस्तृत वर्णन विषय के महत्व के अनुकूल है। इस योजना की सबसे महत्वपूर्ण बात इसका दृष्टिकोण है। महात्मा जी ने प्रथम बार राष्ट्रीय शिक्षा को अपने सांस्कृतिक आदर्शों और देश की आवश्यकताओं के अनुरूप बनाना चाहा। अहिंसा उसका मूलमंत्र है और मितव्ययिता उसका प्राण उसका विकास सरकारी व्यय पर ही आश्रित नहीं है। यह शिक्षा व्यक्ति के विकास के साथ ही उसकी आर्थिक कठिनाइयों को सुलझाने का भी प्रयास करती है। व्यक्ति के सर्वांगीण विकास के लिये एक अनुभूत किन्तु भारतीय शिक्षा संगठन

के लिये क्रांतिकारी मार्ग दिखाने ही में महात्मा जी की मौलिकता है। यह शिक्षा व्यक्ति को देश तथा समाज के लिये उपयोगी बनाना चाहती है। शारीरिक, साहित्यिक, कलात्मक तथा व्यावहारिक शिक्षा द्वारा व्यक्ति वातावरण तथा उसमें अपने महत्व को समझने लगे यही इस शिक्षा का आधार है। इस शिक्षा योजना को सफल बनाने पर विद्यार्थी निश्चय ही भारतीय संस्कृति के सच्चे पुजारी तथा समाज के उत्पादक एवं उपयोगी सदस्य बनेंगे। उनका व्यक्तित्व भी उत्कृष्ट रूप में निखर उठेगा। व्यक्ति अपने वातावरण-प्राकृतिक, आर्थिक तथा सामाजिक—को उचित ढंग से समझ लेगा क्योंकि इनमें शिक्षा विद्यार्थी जीवन की घटनाओं से ऐसी सबद्ध कर दी जावेगी कि विद्यार्थी उन्हें भली प्रकार समझ जावे। जाकिर हुसैन समिति ने लिखा था "हमने पाठ्यक्रम बनाने में विषयों को महत्वपूर्ण तथा विस्तृत अनुभावों में संगठित करने का प्रयास किया है; जिन्हें सीखने पर विद्यार्थी अपने वातावरण को अधिक समझ सकेगा और उसके प्रति उसकी क्रियाओं में अधिक बुद्धिमत्ता होगी क्योंकि वे अनुभव जीवन की परिस्थितियों और समस्याओं पर प्रकाश डालते है।"

(२) उद्देश्य—इस प्रकार सुयोग्यतम नागरिक बनाने का उद्देश्य वर्धा योजना में निहित है। इस योजना का प्रमुखतम उद्देश्य स्वावलम्बी शिक्षा (Self Supporting Education) देना है। स्वावलम्बी शिक्षा के दो अर्थ हैं, प्रथम विद्यार्थियों के श्रम से ही अध्यापकों का पारिश्रमिक दिया जावे और द्वितीय स्कूल छोड़ने पर विद्यार्थियों को जीविकोपार्जन का कोई उत्पादक साधन मिल जावे। दूसरी बात स्पष्ट ही है। सात वर्ष में किसी एक उद्यम को तो पूर्णतया सिखाया ही जा सकता है, कताई बुनाई ही में उन्हें सूती, रेशमी तथा ऊनी सभी व्यवसायों को घरेलू धंधों के स्तर पर उत्कृष्ट रूप से चलाने की शिक्षा मिल जावेगी। गांधी जी के शब्दों में इस प्रकार शिक्षा

देने के साथ ही बेकारी की जड़ भी कट जावेगी। सरकार का भी यह कर्तव्य होगा कि इन नागरिकों को काम दिलाने अथवा उनके उत्पादन का उचित मूल्य मिलने की व्यवस्था करे।

पहिले अर्थ की बड़ी ही आलोचना हुई है। अधिकांश आलोचकों ने उसे असम्भव बताया है। उनके मत में विद्यार्थियों की बनाई वस्तुयें या तो बिक ही न सकेंगी और यदि बिकीं भी तो उनका मूल्य स्कूल के व्यय के बराबर नहीं हो सकता। अधिक से अधिक उस उद्योग की शिक्षा पर होने वाला व्यय निकल सकता है। कुछ लोगों ने कहा है कि बच्चों को सरकारी ख़र्च से शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार है और इस योजना से उस अधिकार का अंत हो जावेगा। बच्चों से बेरहमी से काम भी लिया जावेगा। ये दोनों ही बातें अन्याय पूर्ण हैं।

महात्मा जी ने स्वयं इन आलोचनाओं का मुहतोड़ उत्तर दिया था। उन्होंने लिखा था कि विद्यार्थियों के श्रम से इमारतों तथा अन्य उपकरणों का मूल्य नहीं निकलेगा। वे वस्तुयें सरकार अथवा समाज उपलब्ध करेगा। अध्यापकों का वेतन और बेसिक उद्यम पर व्यय बालकों के सातों वर्ष के श्रम से अवश्य निकल आवेगा। प्रथम दो कक्षाओं में हानि की संभावना है किन्तु यदि किसी एक कक्षा के सातों वर्षों के बनाये हुये माल के दाम पर विचार हो तो वह अध्यापक की सात वर्षों की तनख्वाह से कम न होगा। गांधी जी के मत में भारतीय शिक्षा विकास सरकारी आय पर्याप्त होने की बाट नहीं जोह सकता, अतः देश के कोने-कोने में पहुँचने के लिये उसे स्वावलंबी होना चाहिये। इस बात को स्पष्ट करते हुये गांधी जी ने हरिजन में लिखा था, * "यदि राज्य सात से चौदह वर्ष के बच्चों को अपने हाथ में लेकर उनके मस्तिष्क और शरीर को उत्पादक श्रम द्वारा शिक्षित करे और फिर

*C. J. Varkey. The Wardha Scheme of Education.

भी स्कूल स्वावलंबी न हो सकें तो निश्चय ही वे सरकारी स्कूल एक जाल होंगे और वे अध्यापक मूढ़।"

दूसरी आलोचनाओं का भी उत्तर गांधी जी ने दिया था। उनके मत में यदि बाप की आज्ञा यें पालन करने से बालक दास नहीं बनते तो स्कूल में भी न बनेंगे। साथ ही प्रत्येक आदमी को आठ घंटे उत्पादक कार्य करना चाहिये। इस उत्पादक कार्य द्वारा बच्चों को अपने सामाजिक दायित्व का भी ज्ञान होगा। दासता और बेरहमी की बात को काल्पनिक सिद्ध करते हुये महात्मा जी ने लिखा था कि कारखानों के काम का उद्देश्य शिक्षा देना नहीं होता। वहाँ का काम नीरस होता है। साथ ही वर्धा योजना के स्कूलों में हाई स्कूलों के अंग्रेजी के अतिरिक्त सभी विषयों और संगीत, ड्रिल, ड्राईंग तथा उद्योग की शिक्षा मिलेगी। उन्हें सभी विषयों में योग्यता प्राप्त करना होगी अतः स्कूलों में कारखानों की भावना नहीं आ सकती।

पाठ्यक्रम—इन प्रारंभिक शिक्षालयों का सातवर्षीय पाठ्यक्रम हाई स्कूल के स्तर का होगा। केवल अंग्रेजी विषय न पढ़ाया जावेगा। उसके स्थान पर बेसिक व्यवसाय की पूर्णरूपेण शिक्षा मिलेगी। माध्यम मातृभाषा होगी और उसके अतिरिक्त राष्ट्रीय भाषा हिन्दुस्तानी का ज्ञान सभी विद्यार्थियों के लिये अनिवार्य होगा। यह ज्ञान इतना ही होगा कि लोग बातचीत कर सकें और पत्र लिख सकें। यह सब संभव है क्योंकि हिन्दुस्तानी मिडिल के विद्यार्थियों का ज्ञान कई विषयों में अब भी हाई स्कूल के बराबर है।

संगठन—इस योजना के अंतर्गत शिक्षालयों के लिये गांधी जी का यह विचार था कि अध्यापकों की दीक्षा के बाद ही ऐसे स्कूल खुलें। सर्वप्रथम वर्धा ही में एक दीक्षांत विद्यालय खुला जहां इस योजना के अनुसार काम करने वाले शिक्षक तैयार किये जाते थे। समिति इस दीक्षा को तीन वर्ष का रखना चाहती थी। अस्थायी

अध्यापकों की दीक्षा एक वर्ष की थी। गांधी जी के मत में एक स्कूल में एक ही बेसिक क्राफ्ट रहना चाहिये किन्तु अन्य लोगों का मत है कि समान गुण वाले कई क्राफ्टों की शिक्षा एक स्कूल में हो और उनमें से एक ही में विशेष ज्ञान प्राप्त करने का प्रबंध हो। पास पास के कई स्कूलों को मिलाकर स्थानीय महत्व के सभी बेसिक क्राफ्टों में विशेष ज्ञान प्राप्त करने का अवसर हो, जिसके विद्यार्थी अपनी रुचि का बेसिक क्राफ्ट ले सकें। आधुनिक स्कूलों को भंग करने अथवा बदलने के बारे में गांधी जी स्पष्ट थे। वे सरकार को वर्धा स्कूलों के सिवा अन्य प्रकार के राष्ट्र के लिये आवश्यक स्कूल खोलने की छूट देने के पक्ष में थे। गांधी जी सोचते थे कि एक बार इमारत उपकरण और एक अध्यापक के वेतन का प्रबंध करने से सप्तवर्षीय पाठ्यक्रम वाला बेसिक स्कूल क्रमशः स्थापित हो जावेगा और स्वयं ही चलता रहेगा।

पाठन विधि—पाठनविधि ही का विशेष महत्व है। समिति द्वारा तैयार किये हुये पाठ्यक्रम से स्पष्ट है कि क्रियाओं और अनुभवों द्वारा ही दी गई शिक्षा सफल हो सकती है। बेसिक क्राफ्ट से संबंधित करके ही अन्य विषयों की शिक्षा दी जावे ऐसा गांधी जी का मत था। उनके विचार में इस प्रकार ही व्यक्ति का सर्वांगीण, पूर्ण, विकास संभव है। इसके लिये कताई बुनाई को सर्वोत्तम बेसिक क्राफ्ट मानते हुये भी वे अन्य उद्यमों को बेसिक क्राफ्ट बनाने के विरोधी न थे। समिति ने कई बेसिक क्राफ्टों का पाठ्यक्रम दिया था। इसके सिवा अन्य विषयों की पूरक शिक्षा अलग से भी दी जा सकती थी। गांधी जी पाठन विधियों की व्यवहारिकता और मनोवैज्ञानिकता के इतने कायल थे कि प्रथम वर्ष में भाषा पढ़ाने के लिये वे प्रथम भाषा का मौखिक ज्ञान, फिर पढ़ना और सब से पीछे लिखना चाहते थे।

इस पाठन विधि के बारे में यह शंका प्रकट की गई है कि क्या

सभी विषय बेसिक क्राफ्ट के माध्यम से पढ़ाये जा सकते हैं। गांधी जी के उत्तर और सम्मेलन के प्रस्ताव दोनों ही से स्पष्ट है कि प्रत्येक विषय का जितना भी भाग बेसिक क्राफ्ट द्वारा पढ़ाना संभव होगा उतना उस माध्यम से और शेष अन्य विधियों से पढ़ाया जावेगा।

आलोचना—कुछ अलोचकों के दृष्टिकोण का ज़िक्र हो चुका है। कुछ बातें और भी कही गईं थीं, यथा उच्चतर शिक्षा का क्या प्रबन्ध होगा? क्या बेसिक स्कूलों के विद्यार्थी अन्य व्यावसायिक तथा टेकनिकल स्कूलों में जा सकेंगे? गांधी जी के मत में उच्च शिक्षा का प्रबन्ध प्राइवेट शिक्षालयों और परीक्षक विश्व विद्यालयों के हाथ में रहना चाहिये। दूसरे प्रश्न का उत्तर स्वीकारात्मक है। कुछ लोगों ने कहा था कि इन स्कूलों में कच्चा माल बरबाद होगा। इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता किन्तु शिक्षा सार्थक हो जायगी अतः इसे अपव्यय नहीं कहा जा सकता। कुछ लोगों का मत था कि इन स्कूलों का सामान बिक न सकेगा, इसके उत्तर में कहा जाता है कि अभिभावक तथा सरकार इस माल को जेलों के उत्पादन के समान ही खपा लेंगे। सांस्कृतिक शिक्षा को नीरस बनाने तथा विषयों पर कम ध्यान देने का आरोप भी इस योजना के मत्थे मढ़ा गया है किन्तु यह भ्रान्ति है। एक आलोचना यह है कि बच्चों को बड़ी कच्ची आयु में अपना व्यवसाय चुन कर उसमें लग जाना होगा, अतः रुचियों का यथार्थ पता न चलेगा। एक ही स्कूल की दृष्टि से कुछ सीमा तक यह ठीक है। किन्तु यह बुरा प्रभाव बहुत कुछ कम किया जा सकता है यदि अध्यापक विद्यार्थियों को उचित सलाह देने के योग्य हों और एक ही क्षेत्र में कई बेसिक क्राफ्टों वाले स्कूल हों तथा आरंभ में इन सभी क्राफ्टों की शिक्षा दी जावे।

योजना पर कार्य—जाकिर हुसैन समिति की रिपोर्टों के प्रकाशित होने पर इस पाठ्यक्रम और पाठन विधि पर विभिन्न प्रांतों में

प्रयोग किये जाने लगे। मध्य प्रांतीय सरकार ने इस योजना और हरीपुर कांग्रेस के प्रस्तावों के अनुसार पाठ्यक्रम निर्धारित करने के लिये डा० जाकिर हुसैन के नेतृत्व में एक समिति १६३८ ई० में नियुक्त की। वर्धा नार्मल स्कूल को विद्या मन्दिर ट्रेनिंग स्कूल बना कर इस योजना के लिये अध्यापक तैयार किये जाने लगे। १६३६ ई० में सरकार ने ६८ विद्या मन्दिर स्कूल खोले। इसके बाद नार्मल पास अध्यापकों और निरीक्षक वर्ग को नयी योजना के अनुसार पुनः दीक्षा दी गई। इन स्कूलों के लिये साहित्य भी प्रस्तुत किया जाने लगा। धीरे-धीरे योजना तमाम प्रांत में फैल गई। *

संयुक्त प्रान्त ने शीघ्र ही इस योजना को अपनाया। बेसिक शिक्षा के लिये एक विशेष अफ़सर नियत हुआ, और बेसिक ट्रेनिंग कालेज स्थापित हो गया। इसके पहिले नरेन्द्रदेव समिति को पाठ्यक्रम सुधारने का कार्य सौंपा गया था। समिति की रिपोर्ट १६३६ ई० में प्रकाशित हुई और बेसिक शिक्षा सरकारी नीति बन गई। वर्तमान प्रारम्भिक शिक्षकों को नये ढंग की शिक्षा देने के लिये सात बेसिक ट्रेनिंग केन्द्र

---

* विद्या मन्दिर स्कूल इस नाम से भी लीगियों को बड़ी चिढ़ थी अस्तु इसका वर्णन महत्व रखता है। श्री वार्के के मत में वर्धा स्कूल विद्या मन्दिर स्कूल में अन्तर था। वर्धा स्कूल से बेसिक पाठ्यक्रम वाले स्कूल का अर्थ होता है किन्तु विद्या मन्दिर एक प्रकार का संगठन है। बेसिक अथवा वर्धा पाठ्यक्रम विद्या मन्दिर स्कूल तथा अन्य प्रकार के स्कूलों में होता है। विद्या मन्दिर स्कूल स्थापित करने के लिये कोई भी व्यक्ति या सरकार इमारत सामान और एक अध्यापक के वेतन के बराबर आय वाली भूमि प्रस्तुत करता है और एक कक्षा वाला विद्या मन्दिर स्कूल खुल जाता है। छः वर्ष तक हर साल एक नई कक्षा और एक अध्यापक बढ़ता जावेगा। इन नये अध्यापकों का वेतन विद्यार्थियों के व्यय से निकलता रहेगा।

खुले। इन केन्द्रों में दीक्षित अध्यापकों द्वारा बेसिक स्कूल खुलने लगे। अब सभी प्रारम्भिक स्कूलों में बेसिक पाठ्यक्रम आ गया है। बिहार ने पटना में बेसिक ट्रेनिंग केन्द्र (१९३८) खोलकर इस योजना का प्रयोग किया। १९३९ तक बेसिक शिक्षा सरकारी नीति बन गई और उपयुक्त साहित्य प्रस्तुत कराने के लिये एक समिति बनाई गई। इसी प्रकार अन्य प्रांतों में भी यह योजना अपनाई गई, किन्तु राजनीतिक कारणों से लीग-शासित प्रांतों में इसे छुआ भी न गया।

केन्द्रीय सलाहकार समिति ने भी बम्बई के प्रधान तथा शिक्षा मंत्री श्री खेर के नेतृत्व में एक समिति वर्धा योजना की जांच के लिये नियत की थी। उसने भी इस योजना के आवश्यक अंगों को उपयोगी तथा व्यावहारिक ही सिद्ध किया। इस प्रकार यह योजना अखिल भारतीय प्रारम्भिक शिक्षा योजना की आत्मा बन चुकी है।

प्रौढ़ शिक्षा—निरक्षरता को दूर करने के लिये प्रौढ़ शिक्षा का संगठन आवश्यक है। इस आन्दोलन को गति देने के लिये १९३७ ई० में दिल्ली में भारतीय प्रौढ़ शिक्षा समिति (Indian Adult Education Society) स्थापित हुई। इसने १९३८ ई० में प्रौढ़ शिक्षा सम्मेलन करके अपना कार्य भारतीय प्रौढ़ शिक्षा सम्मेलन (Indian Adult Education Conference) को सौंप दिया। केन्द्रीय सरकार के इस दिशा में संगठित प्रयास का यही आरम्भ है। किन्तु इसके पहिले भी कुछ प्रान्तों ने प्रौढ़ शिक्षा के लिये रात्रि-पाठशालायें स्थापित की थीं। संयुक्त प्रान्त में १९२७ ई० से प्रौढ़ शिक्षा सहकारी समितियाँ (Adult Education Cooperative Societies) स्थापित होने लगी थीं जो प्रौढ़ शिक्षा का प्रबन्ध करती थीं। अन्य व्यक्तियों तथा समुदायों ने भी इस विषय पर छिटफुट ध्यान दिया था।

इस दिशा में मुख्य कठिनाई यह है कि निरक्षर प्रौढ़ व्यक्तियों में इतना उत्साह लाना है कि वे शिक्षित होने को इच्छुक बने रहें।

इसके लिये उनके व्यवसायों और रुचियों से सम्बंधित पुस्तकें तैयार करना आवश्यक है। प्रौढ़ और बालक में अंतर है अतः दोनों को पढ़ाने के ढंग अलग होना चाहिए। प्रौढ़ों के शिक्षकों के लिये भिन्न प्रकार की दीक्षा का भी प्रबन्ध होना चाहिये। साथ ही इनको शिक्षित बनाये रखने के लिये गांवों में सामाजिक शिक्षा का प्रबन्ध होना चाहिये। पुस्तकालयों तथा वाचनालयों का प्रबन्ध हो, उपयोगी तथा आकर्षक साहित्य इन व्यक्तियों तक पहुँचाने का प्रबन्ध हो। साथ ही अपने व्यवसायों में अधिक कुशलता प्राप्त करने का प्रबन्ध भी लोगों को शिक्षित बनने में प्रेरक होगा।

साक्षरता आन्दोलन—प्रौढ़ों की निरक्षरता मिटाने के सम्बंध में डाक्टर फ्रैंक लाबाक ने बड़ा श्लाघनीय कार्य किया है। उनका कार्य फिलिपाइन द्वीप समूह में आरम्भ हुआ। वहां पर लिपि में बारह ध्वनियाँ थीं। तीन ऐसे शब्द चुने गये जिनमें ये ध्वनियाँ थीं अतः उनकी तथा अन्य शब्दों की सहायता से वयस्कों को लिपि सिखा दी गयी। पढ़ाने में बातचीत का ढंग रखा जाता है, साथ ही उपयोगी और आकर्षक समाचार-पत्रों तथा पुस्तकों का प्रबन्ध है। ये विद्यार्थी जो सीखते हैं उसे स्वयं भी औरों को सिखाते हैं।

श्री लाबाक महोदय भारतवर्ष भी आये थे और उन्होंने हिन्दी, मराठी, तेलगू, कन्नड़ आदि भाषाओं की लिपियों में कुछ सुधार करने के बाद साक्षरता बढ़ाने के लिये चार्ट तैयार कराये, कुछ पुस्तकें भी लिखी गयीं। १९३७ ई० के बाद से मंत्रियों ने इस कार्य पर विशेष ध्यान दिया। १९३८ ई० में भारतीय प्रौढ़ शिक्षा सम्मेलन के संगठन का वर्णन हो चुका है। धीरे-धीरे सभी प्रान्तों और रियासतों के उसी प्रकार के संगठन इसके सदस्य बन गये। इसका केन्द्र इंदौर बना। १९३९ ई० में सम्मेलन की पत्रिका Indian Journal of Education निकलने लगी। "Each One Teach One", "Make

your homes literate" आदि जैसे आन्दोलनों ने भी ज़ोर पकड़ा और साक्षरता सप्ताह मनाये जाने लगे। कई शिक्षा विभागों ने प्रौढ़ शिक्षा के लिये विशेष अफसर नियुक्त किये। हमारे प्रांत में पं० श्रीनारायण जी चतुर्वेदी इस पद पर सर्व प्रथम नियुक्त हुये। सम्मेलन ने दक्षिणी भारत में वयस्क शिक्षा के संगठन के लिये एक मंत्री नियुक्त किया था। इन सभी प्रयासों के फलस्वरूप १६३६ ई० में जब कांग्रेस मंत्रिमंडलों ने पदत्याग किया था तो संगठित प्रौढ़ शिक्षालयों की संख्या ब्रिटिश भारत में ४७३३ थी, जिनमें प्राय: १४५००० विद्यार्थी थे। हमारे प्रान्त में २६८६ शिक्षालयों में साढ़े बयासी हज़ार वयस्क शिक्षा पा रहे थे।

युद्धकाल में केंद्रीय शिक्षा सलाहकार समिति ने भी अपनी योजना प्रस्तुत की थी जो युद्ध बन्द होने पर लागू हुई। १५ अगस्त सन् १६४७ ई० से शिक्षा विभाग एक मंत्री (मौलाना अबुल कलाम आजाद) के हाथ में आजाने से इस दिशा में भी प्रगति हुई है। अब (१६४६) में केन्द्रीय सरकार ने तीन वर्ष के भीतर निरक्षरता ५०% कम करने का निश्चय कर लिया है।

केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार समिति की युद्धोत्तर शिक्षा-विकास योजना

सार्जेंट रिपोर्ट—(Sargent Report) केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार समिति के १६३५ ई० में पुनः संगठन का वर्णन हो ही चुका है। इसके सभापति केन्द्रीय शिक्षा विभाग के अध्यक्ष होते हैं। केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार इसका मंत्री होता है। इनके सिवा प्रांतीय शिक्षा विभागों के अध्यक्ष तथा शिक्षा संचालक अपने अपने प्रांतों के प्रतिनिधि होते हैं। कुछ सदस्य अंतर्विश्वविद्यालय समिति, केन्द्रीय लेजिस्लेटिव असेम्बली कौंसिल आफ स्टेट और केन्द्रीय सरकार नामज़द करती है। शिक्षा के विभिन्न अंगों के लिये

समिति उपसमितियां नियुक्त करती है और उनकी रिपोर्टों पर अपने वार्षिक अधिवेशन में विचार करती है। १६४३ ई० में तमाम उपसमितियों ने अपनी युद्धोत्तर विकास योजनायें प्रस्तुत की थीं। निम्नलिखित विषयों पर उपसमितियों ने अपनी रिपोर्टें प्रस्तुत की थीं।

(१) बेसिक शिक्षा। (२) प्रौढ़ शिक्षा (३) विद्यार्थियों का स्वास्थ्य (४) स्कूली इमारतें (५) समाज सेवा (६) अध्यापकों का चुनाव, दीक्षा और वेतन आदि (७) शिक्षा विभागीय अफसरों का चुनाव (८) टेक्निकल शिक्षा (कला तथा व्यापारिक) (६) पाठ्यपुस्तकें (१०) परीक्षायें (११) शिक्षा-संगठन और शासन (१२) कृषि-शिक्षा (१३) धर्म की शिक्षा (१४) उच्चतर शिक्षा के लिये विद्यार्थियों का चयन। इन्हीं सब रिपोर्टों पर केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार समिति ने विचार किया और निष्कर्षों पर पहुंची। इन्हीं के आधार पर केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार समिति ने अपनी रिपोर्ट बनाई थी। यह रिपोर्ट भी बड़ी महत्वपूर्ण है। वर्धा योजना पर इस समिति ने खेर समिति को विचार करने को नियुक्त किया था और उसके विचारों का भी इस रिपोर्ट में समावेश है। राष्ट्रीय शिक्षा के सभी अंगों पर गवेषणा पूर्ण और रचनात्मक रिपोर्ट होने के नाते इसका बहुत ही अधिक महत्व है। इस समय केन्द्रिय शिक्षा सलाहकार श्री जान सार्जेंट थे अतः इसे सार्जेंट रिपोर्ट भी कहते हैं।

इस रिपोर्ट में बारह अध्यायों में निम्नलिखित विषयों पर विचार हुआ है (१) बेसिक शिक्षा (प्रारम्भिक तथा मिडिल) (२) नर्सरी स्कूल शिक्षा (३ हाई स्कूल शिक्षा (४) विश्वविद्यालयों में शिक्षा (५) टेक्निकल व्यापारिक तथा कला की शिक्षा (६) प्रौढ़ शिक्षा (७) अध्यापकों की दीक्षा (८) विद्यार्थियों का स्वास्थ्य (६) असुविधाग्रस्त विद्यार्थियों की शिक्षा (Education of the handi-capped child) (१०) विनोदात्मक तथा सामाजिक क्रियायें

(११) नौकरी दिलाने का दफ्तर (Employment Bureau)
(१२) प्रबन्ध (Administration)

सिफारशें—सार्जेंट रिपोर्ट की मुख्य सिफारिशें निम्नलिखित हैं।

बेसिक शिक्षा—सभ्यता का दावा करने वाले सभी देशों में नागरिकों के लिये निम्नतम राष्ट्रीय शिक्षा का प्रबन्ध स्वीकृत हो गया है। भारतवर्ष में इस मामले पर कुछ समय से विचार हो रहा है किन्तु प्रगति यथेष्ट न होने का प्रमाण ८५% निरक्षरता है।

छः वर्ष से चौदह वर्ष की आयु तक निःशुल्क अनिवार्य शिक्षा का प्रबन्ध होना चाहिये। दीक्षित शिक्षकों द्वारा ही विकास उचित होगा अतः इसे सार्वदेशिक बनाने में प्रायः चालिस वर्ष लगेंगे। बेसिक स्कूलों के दो प्रकार होंगे, जूनियर बेसिक स्कूल तथा सीनियर बेसिक स्कूल।

समिति ने वर्धा योजना के पाठ्यक्रम और क्राफ्ट माध्यम को स्वीकृत करते हुये स्कूलों के स्वावलंबी बनने में संदेह प्रकट किया और उनका भार राज्य पर ही छोड़ना उचित समझा। बेसिक शिक्षा समिति ने नयी योजना का आधा व्यय केन्द्र पर रखना चाहा था किन्तु सलाहकार समिति ने इसे रद कर दिया।

विद्यार्थियों का प्रारम्भिक स्तर के बाद बेसिक स्कूलों के सिवा अन्य स्कूलों (हाई स्कूलों) में जाने का प्रबन्ध होना चाहिये। उनमें सीनियर बेसिक शिक्षा प्राप्त विद्यार्थियों के जाने की भी सुविधा रहना चाहिये। इन स्कूलों का पाठ्यक्रम पाँच छः वर्ष का हो और उसका स्वरूप सांस्कृतिक होते हुये भी विद्यार्थियों को विभिन्न व्यवसायों के लिये भी तैयार किया जावे।

अध्यापकों के वेतन और परिस्थिति में सुधार करके स्त्रियों को भी इधर अधिकाधिक आकृष्ट करना चाहिये। अध्यापकों का वेतन जूनियर तथा सीनियर बेसिक स्कूलों में क्रमशः ३०–५० और ४०–८० रु०

प्रति मास हो। प्रधानाध्यापकों को इससे कम से कम १०) प्रति मास अधिक मिले और स्कूलों के आकार के अनुसार जूनियर स्कूलों में ५० ४-७०, ६०-४-८० अथवा ८०-४-१०० रु० प्रति मास मिले। सीनियर बेसिक स्कूलों के हेडमास्टरों का ग्रेड ८०–४–१००, ९०–४–११० अथवा ११०–४–१३० हो। साथ ही निवास स्थान अथवा वेतन का १०% किराया मिले। अध्यापकों को महंगे क्षेत्रों में ५०% तक अधिक दिया जावे। स्त्री तथा पुरुषों का समान ग्रेड हो और सभी अध्यापकों के लिये पेंशन अथवा प्राविडेंट फंड की व्यवस्था हो। एक अध्यापक को २५ से ३० विद्यार्थी पढ़ाने को मिलें। समिति के मत में अन्ततोगत्वा कुल मिकार बेसिक शिक्षा पर २००८० लाख रुपया वार्षिक व्यय होगा।

नर्सरी शिक्षा—शिक्षा योजनाओं के न होने के बहुतेरे फलों में से एक यह भी है कि विद्यार्थी के जीवन के कोमल प्रभाव योग्य तथा शिक्षा के हेतु सर्वोत्तम काल पर ध्यान ही नहीं दिया गया। अतः नर्सरी शिक्षा अनिवार्य न होने पर भी इसका निःशुल्क और अधिकाधिक प्रबन्ध होना चाहिये। ज़ाकिर हुसेन समिति की भी यही राय थी। इन स्कूलों में श्री वुड के मतानुसार विद्यार्थियों के स्वास्थ्य और आदतों को सुधार कर रुचिकारक क्रियाओं द्वारा उनका अनुभव विकसित करना चाहिये। इस शिक्षा पर प्रायः ३१८ लाख रुपया व्यय होगा।

हाई स्कूल शिक्षा—हाई स्कूलों का कार्य उन बच्चों की शिक्षा का प्रबन्ध करना है जो साधारण विद्यार्थियों से योग्यता में ऊंचे हों। अतः प्रारंभिक (जूनियर बेसिक) शिक्षा के बाद विद्यार्थियों को चुन कर हाई स्कूलों में भेजना चाहिये। निर्धन विद्यार्थियों को भी ऐसी सुविधा होना चाहिये कि वे इसका लाभ उठा सकें। जो धनी विद्यार्थी इस चयन द्वारा न जा सकें और फिर भी हाई स्कूलों में पढ़ना चाहें उन्हें अपने व्यय से पढ़ने की सुविधा मिले उनके प्राप्त स्थानों के कारण योग्यतानुसार चुने हुये विद्यार्थियों की शिक्षा का प्रबन्ध कम न होने पावे।

हाई स्कूल शिक्षा को विश्वविद्यालय की सीढ़ी मानने के स्थान पर स्वतः पूर्ण होना चाहिये। उनके मुख्य दो प्रकार हों एकेडेमिक (उदार शिक्षा) हाई स्कूल, टेक्निकल हाई स्कूल इनमें माध्यम प्रांतीय भाषा हो और निम्नलिखित विषयों की पढ़ाई का प्रबन्ध हो सकता है।

एकेडेमिक हाई स्कूल

१. मातृभाषा. २. अंग्रेज़ी, ३. प्राच्य भाषायें ४. आधुनिक भाषायें ५. इतिहास (भारतीय तथा विश्व) ६. भूगोल ७. गणित ८. विज्ञान. (भौतिक. रसायन. वनस्पति तथा प्राणिशास्त्र (Biology) शरीर विज्ञान (physilogy) और हाइजीन ९. अर्थशास्त्र १०. कृषि ११. नागरिक शास्त्र. १२. कला. १३ संगीत, १४. शारीरिक शिक्षा (Physical Training.)

टेक्निकल हाई स्कूल

एकेडेमिक स्कूलों के विषय संख्या, १, २, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १०, १३, १४, के अतिरिक्त (११) भौतिक शास्त्र (१२) रसायन शास्त्र, (१३) वनस्पति तथा प्राणि शास्त्र (Biology) (१४) टेक्नालाजी (आरंभिक इंजीनियरिंग, ड्राइंग, लकड़ी और धातुओं का काम (१५) कामर्स (Book Keeping, Shorthand, Typewriting Accountancy, Commercial Practice etc.) (१६) कला (व्यावसायिक डिज़ाइनें भी बनाना)

इस दिशा में लड़कियों की शिक्षा के लिये अति शीघ्र अधिक सुविधायें उपलब्ध होना चाहिए। अध्यापकों के वेतन दीक्षा आदि का सुप्रबन्ध होना चाहिये। समिति ने ग्रैजुएटों के लिये ७०-५-१५० और अग्रैजुएटों के लिये ४०-२-८० रु० प्रति मास के ग्रेड के साथ मँहगे क्षेत्रों में ५०% तक अधिक वेतन का परामर्श दिया। सभी अध्यापकों को प्राविडेंट फंड की सुविधा भी मिलना चाहिए।

इस शिक्षा के पूर्ण विकास के बाद इस पर ५००० लाख वार्षिक व्यय होगा।

विश्वविद्यालयों में शिक्षा—जनसंख्या के अनुपात से विश्वविद्यालयों के विद्यार्थियों की संख्या बहुत कम है प्रत्येक २२०६ व्यक्तियों ने एक ही विश्वविद्यालयों में है जब कि जर्मनी, इंगलैंड और संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में यह संख्या क्रमशः ६६०, ८३७ और २२५ है।

भारतवर्ष में सभी प्रकार के विश्वविद्यालय हैं। परीक्षक विश्वविद्यालय यहाँ आवश्यक हैं। किन्तु यह अच्छा होगा कि डिग्री कालेजों में बी० ए० स्तर तक की ही शिक्षा का प्रबन्ध हो। उपाधि प्राप्त विद्यार्थियों की शिक्षा का प्रबन्ध विश्वविद्यालय स्वयं करे। सभी विश्वविद्यालयों को पढ़ाई और विद्वता के उच्च स्तर स्थापित करना चाहिए और केवल परीक्षाओं और संगठन से संतुष्ट न होना चाहिए।

विश्वविद्यालयों में असफलता को ध्यान में रखते हुये विद्यार्थियों का चयन ठीक से होना चाहिए। सलाहकार समिति और अंतर्विश्वविद्यालय समिति दोनों ही का मत था कि नौकरियों और विश्वविद्यालयों में प्रवेश के लिए एक ही परीक्षा हो, किन्तु विश्वविद्यालयों में जाने के इच्छुक विद्यार्थी कुछ विषयों में विशिष्ट ज्ञान प्राप्त करें। इंटरमीडियट तोड़कर डिग्री पाठ्यक्रम कम से कम तीन वर्ष का कर दिया जाय।

आजकल से दूनी सुविधाओं द्वारा ही विश्वविद्यालय सभी योग्य विद्यार्थियों को शिक्षित करने में समर्थ होंगे। उच्च शिक्षा पर ६७२ लाख वार्षिक व्यय होगा।

एक विश्वविद्यालय अनुदान समिति (University Grants Committee) कानून द्वारा बनना चाहिए जिसमें ग़ैर सरकारी सदस्य भी हों। इसी के द्वारा केन्द्रीय सरकार विश्वविद्यालयों के विकास के लिए सहायता दे। इसके सिवा समिति को निम्नांकित बातों का

भी प्रबन्ध करना होगा— (१) विश्वविद्यालयों के लिये दान दिलाना (२) विश्वविद्यालयों के कार्य का इस प्रकार संगठन होना चाहिए कि उनके विद्यार्थी देश की आर्थिक आवश्यकताओं के अनुकूल हों और पास-पास के विश्वविद्यालयों में एक ही सा कार्य न हो, किन्तु वे कार्य विभाजन की प्रणाली अपनावें।

(३) इस शिक्षा के क्षेत्र में अंतर्विश्वविद्यालय प्रतियोगिता और अंतर्प्रान्तीय अड़चनों को दूर करना।

(४) विश्वविद्यालयों की आवश्यकताओं का अध्ययन।

(५) उनका विदेशी विश्वविद्यालयों से सांस्कृतिक सम्बन्ध स्थापित करने के लिये अध्यापकों तथा विद्यार्थियों के आदान प्रदान का प्रबन्ध करना।

टेक्निकल कामर्स तथा आर्ट (कला) की शिक्षा—इस दिशा में परिवर्तित दशाओं और इंगलैण्ड की स्पेन्स समिति की रिपोर्ट (Report of the Consultative Committee on Secondary Education with Special reference to Grammer Schools and Technical High Schools) के आधार पर श्री वुड तथा एबट की सिफारिशों में परिवर्तन करना ही समिति आवश्यक समझती थी मुख्य सिफारिशें निम्नलिखित हैं।

(१) उद्योगों के विकास का विचार रखकर टेक्निकल शिक्षा का शीघ्र विकास आवश्यक है।

(२) टेक्निकल शिक्षा के दो उद्देश्य हैं, व्यवसायों के सभी स्तरों के पदाधिकारी प्रस्तुत करना और उन बालक बालिकाओं की शिक्षा, जिनका अधिकतम विकास इसी शिक्षा, द्वारा संभव है।

(३) टेक्निकल शिक्षा, शिक्षा का आवश्यक अंग है और वह किसी प्रकार उदार शिक्षा से निम्न कोटि की नहीं है। कामर्स तथा व्यवसाय संबंधी कला (Art in Relation to Industry) और

कृषि भी इसी के अंग हैं। हाई स्कूलों तथा सीनियर बेसिक स्कूलों में कृषि का विशेष महत्व होना चाहिये।

(४) तीन प्रकार के टेक्निकल स्कूल हों (अ) जूनियर टेक्निकल अथवा औद्योगिक स्कूल (ब) टेक्निकल हाई स्कूल (स) सीनियर टेक्निकल विद्यालय। तीसरी कोटि के विद्यालयों में अवश्य ही अर्धसामयिक विद्यार्थियों की शिक्षा का भी प्रबंध रहे।

(५) पालीटेक्निक (Polytechnic) स्कूल मनोटेक्निक (Monoteechnic) स्कूलों से अधिक उपयोगी होंगे।

(६) पाठ्यक्रम (अ) औद्योगिक स्कूलों में सीनियर बेसिक परीक्षा के बाद छः वर्ष का पाठ्यक्रम टेक्निकल हाई स्कूलों में हो। इनमें सीनियर बेसिक परीक्षा के बाद भी विद्यार्थी आसकेंगे। (इ) इन हाई स्कूलों की परीक्षा के बाद त्रैवार्षिक डिप्लोमा कोर्स और उसके बाद दो वर्ष का उच्चतर डिप्लोमा कोर्स (Advanced Diploma Course) हो। (ई) टेक्निकल हाई स्कूलों में भी अर्धसामयिक विद्यार्थियों के लिये तीन वर्ष के सार्टीफिकेट कोर्स और उसके बाद दो वर्ष के उच्चतर सार्टीफिकेट कोर्स (Advanced Certificate Course) का प्रबंध होना चाहिये।

(७) अध्यापकों को व्यवसायों का अनुभव अवश्य होना चाहिये और बाद में भी उन्हें व्यवसायों से संपर्क बनाये रखना चाहिये। उनका वेतन इस प्रकार हो।

(अ) वर्कशाप अथवा प्रयोग शाला के सहायक-५०-१-७५ रु०

(आ) अध्यापक तृतीय श्रेणी ७५-५-१५० रु० प्रति मास।

(इ) ,, द्वितीय श्रेणी १७५-१०-३२५ रू० प्रति मास

(ई) ,, प्रथमश्रेणी तथा विभागीय अध्यक्ष ४०० २५-१००० प्रतिमास।

(उ) प्रिंसिपल-शिक्षालयों के आकार के अनुसार।

(८) छात्र वृत्तियों का इतना अधिक प्रबंध हो कि सभी योग्य विद्यार्थियों को टेक्निकल शिक्षा मिल सके।

(६) टेक्निकल शिक्षा भी शिक्षा विभाग के अंतर्गत हो । टेक्निकल हाईस्कूलों के स्तर की शिक्षा प्रान्तीय दायित्व हो, और विश्वविद्यालयों की टेक्निकल शिक्षा को छोड़कर शेष उच्चतर टेक्निकल शिक्षा का प्रबन्ध केन्द्रीय सरकार को करना चाहिये ।

प्रौढ़ शिक्षा—प्रौढ़ शिक्षा का उद्देश्य सभी को योग्य तथा सफल नागरिक बनाकर प्रजातन्त्रात्मक शासन को यथार्थ बनाना है । इस देश में अभी तक प्रौढ़ शिक्षा का उद्देश्य निरक्षरता दूर करना रहा है किन्तु इसका असली उद्देश्य सभी को, शिक्षा से लाभ उठाने की योग्यता के अनुसार, आजीवन, अनवरत, पूर्ण शिक्षा देना है । अतः इसका उद्देश्य प्रौढ़ों की आर्थिक दशा सुधारने के साथ ही उन्हें समाज का उपयोगी अंग बनाना है । पर इसका संगठन कठिन है । केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार समिति की प्रौढ शिक्षा समिति के मुख्य निष्कर्ष निम्नलिखित हैं, जिन्हें सलाहकार समिति ने अधिकार स्वीकार कर लिया है । इस पर वार्षिक व्यय ३०० लाख रु० होगा ।

(१) भारतीय शिक्षा की समस्या को सुलझाने के लिये प्रौढ़-शिक्षा तथा अनिवार्य प्रारम्भिक शिक्षा को एक दूसरे की पूरक समझना चाहिए ।

(२) साक्षरता आन्दोलन पर विशेष ध्यान देना चाहिए, यद्यपि वह प्रौढ़ शिक्षा का एक अंग मात्र है । इसके लिये प्रौढ़ों को बाध्य भी किया जा सकता है पर उन्हें साक्षर बनाये रखने का भी प्रबन्ध होना आवश्यक है । पुस्तकालयों तथा वाचनालयों का समुचित प्रबन्ध होना चाहिए ।

(३) प्रौढ़ शिक्षा के पाठ्यक्रम और पाठन विधियों का विद्यार्थियों की रुचि, वातावरण और व्यवसाय से निकटतम सम्बन्ध होना चाहिये । प्रौढ़ का अर्थ बारह वर्ष से अधिक आयु वाले किसी शिक्षालय में शिक्षा न पाने वाले लोगों से है । (४) विश्वविद्यालयों को अपने सामाजिक

(Extra-Mural) विभागों को बढ़ाकर प्रौढ़ों को डिग्री प्राप्त करने की सुविधायें देना चाहिए।

(५) शिक्षितों तथा सरकारी नौकरों को निम्नतम सामाजिक सेवा के रूप में इसमें हाथ बँटाने को बाध्य करना चाहिए। रेडियो, सिनेमा ग्रामोफ़ोन मैजिक लालटेन आदि का प्रयोग होना चाहिए। इसके लिए अलग से उपयुक्त शिक्षा विषयों पढ़ने की भी व्यवस्था होना चाहिये।

(६) इस शिक्षा का प्रबन्ध भी शिक्षा विभाग पर हो और केन्द्र प्रान्तों को सहायता दे।

(७) सभी विभाग शिक्षितों को ही नौकर रक्खें।

अध्यापकों की दीक्षा शिक्षा विकास और राष्ट्र के नवनिर्माण के लिये इस विषय के महत्व का वर्णन करना अनावश्यक है। समिति के मत में वर्तमान दीक्षान्त विद्यालयों का विस्तार अत्यावश्यक था। इसके लिये दीक्षान्त विद्यालय (Training Schools) और दीक्षान्त महाविद्यालय (Training Colleges) दोनों ही के आकार और संख्या में विस्तार आवश्यक है। इनमें प्रयोगिक शिक्षा का प्रबन्ध होना चाहिये। सम्पूर्ण विस्तार में १५६६४ लाख रुपया और अन्त में ४५७ लाख रुपया वार्षिक व्यय होगा।

विद्यार्थियों का स्वास्थ्य—विद्यार्थियों का स्वास्थ्य सुधारने और ठीक रखने के लिये स्कूल मेडिकल सर्विस और बच्चों के नाश्ते का प्रबन्ध आवश्यक है। साथ ही निम्नलिखित बातों की भी आवश्यकता है।

(१) डाक्टरों और नर्सों की कमी रहते हुये भी नगरों में विद्यार्थियों की चिकित्सा का प्रबन्ध संभव है। ५०% बालकों की चिकित्सा आवश्यक होती है। छः, ग्यारह, चौदह तथा सत्रह वर्ष की आयु में विद्यार्थियों की डाक्टरी जाँच आवश्यक है। साथ ही उँचाई और

वज़न की माप वर्ष में दो बार अवश्य होना चाहिए। मेडिकल निरीक्षण स्कूल में हो और उसके साथ ही चिकित्सा का भी प्रबन्ध हो।

(२) विद्यार्थियों के लिये भोजन, सफ़ाई आदि पर पाठ्यपुस्तकें हों। अध्यापकों को विद्यार्थियों से व्यक्तिगत सफ़ाई और स्वास्थ्य के नियमों का पालन कराना चाहिए। बैठने के ढंग, डेस्क और सीटों पर भी ध्यान देना उचित है। ट्रेनिंग कालेजों और स्कूलों में इनकी शिक्षा मिलनी चाहिए।

(३) स्वास्थ्य शिक्षा—शिक्षा विभागों के केन्द्रों में एक विशेष अफसर स्वास्थ्य शिक्षा के संगठन के लिये हो। स्वास्थ्य-शिक्षकों को व्यायामों के अतिरिक्त शरीर-विज्ञान, भोजन और रहन-सहन का भी ज्ञान हो। माध्यमिक शिक्षालयों में ऐसे शिक्षकों का होना अनिवार्य हो। प्रतिदिन व्यायाम और खेलों का अनिवार्य प्रबन्ध हो।

असुविधा ग्रस्तों की शिक्षा—(Education of the handicapped) ये विद्यार्थी दो वर्गों में विभक्त किये जा सकते हैं। शारीरिक तथा मानसिक हीनता रखने वाले विद्यार्थी। इनमें अंधे, बहरे, गूँगे और मूढ़ आ जाते हैं। इनकी शिक्षा का संगठित प्रयास नहीं हुआ है। इसका प्रबन्ध भी शिक्षा विभागों को करना चाहिए। सरकार ने इस ओर अभी तक कोई ध्यान नहीं दिया है। इनके लिये अध्यापकों की दीक्षा और विशेष शिक्षालयों का प्रबन्ध होना चाहिये।

विनोदात्मक तथा सामाजिक क्रियायें—शिक्षा संगठन के लिये इनका महत्व सर्व मान्य हो चुका है। साथ ही १४-२० वर्ष वाले सभी लोगों के लिये इसका प्रबन्ध आवश्यक है। अतः युवक आन्दोलन और विभिन्न प्रकार के क्लबों के संगठन की आवश्यकता है। गांवों में स्कूल ही इसका केन्द्र बन सकते हैं।

शासन—टेक्निकल तथा विश्वविद्यालयों की शिक्षा को छोड़कर

प्रान्तीय शिक्षा विभागों के अधीन सम्पूर्ण शिक्षा-संगठन होना चाहिए, उन दो अंगों का अखिल भारतीय संगठन आवश्यक है।

केन्द्रीय शिक्षा विभाग के अधिकार बढ़ जाना चाहिए। शिक्षा-विभागीय अफ़सरों का चयन अधिक सतर्कता से हो ताकि वे योजनाओं को कार्यान्वित करने में सफल हों। शिक्षा संचालकों पर ही नीति और संगठन का दायित्व होना चाहिए।

आलोचना—सार्जेंट रिपोर्ट प्रशंसनीय प्रयास है किन्तु उसमें दोष भी हैं। चालीस वर्षीय योजना में इतनी कठिनाइयाँ पड़ सकती हैं कि उसके कार्यान्वित होने में ही संदेह हो सकता है। दूसरे प्रजातंत्र की सफलता के लिये इतने दिन तक बाट भी नहीं देखी जा सकती। अतः यह समय कम होना चाहिये।

उच्चतर शिक्षा के लिये विद्यार्थियों के चयन के ढंग में पिछड़े हुए वर्गों की हानि होगी। सभी इच्छुक विद्यार्थियों की शिक्षा का प्रबन्ध होना चाहिये क्योंकि बहुतेरे विद्यार्थियों का मानसिक विकास देर से होता है।

शिक्षा को अनिवार्य बनाने के लिये दृढ़ सरकारी संगठन का भी प्रबन्ध होना चाहिये जिससे अभिभावक बच्चों को रोकने की धृष्टता न करें।

इस योजना में शिक्षा में लगने वाले समय को कम करने का कोई प्रयास नहीं हुआ है और यह समय सचमुच अधिक है।

केन्द्रीय सरकार पर विकास योजनाओं का भार डालना आवश्यक था।

वर्धा योजना के स्वावलंबी होने वाले भाग पर बिना पर्याप्त अनुभव के मत स्थिर किया गया है।

योजना पर कार्य—केंद्रीय सरकार ने इस रिपोर्ट को स्वीकार कर लिया और शिक्षा विभाग को १६४५ में अलग कर दिया। १६४४ में प्रांतीय सरकारों को पंचवर्षीय योजनायें बनाने को कहा और तदनुसार वे १६४७-५२ काल के लिये बनी। इन पर १६४६ से ही कार्य भी

आरंभ हो गया। १९४७-४८ ई० में केंद्रीय सरकार ने पंचवर्षीय योजनाओं की स्वीकृति भी दे दी। केंद्र ने प्रांतों द्वारा शिक्षा विकास पर होने वाले १९४६-४७ के व्यय को दे दिया और १९४७-४८ में चालीस करोड़ देना स्वीकार किया। प्रांतों को समी विषयों में विकास के लिये केंद्रीय सहायता मिलती है और प्रांत इसमें से शिक्षा विकास पर जो व्यय करते हैं वह केंद्र का भाग मान लिया जावेगा। केंद्रीय पंच वर्षीय शिक्षा-विकास योजना पर भी २३७१ लाख व्यय किया जावेगा। अखिल भारतीय टेकनिकल शिक्षा समिति भी बन चुकी है और दिल्ली में पालीटेक्निक भी खुल गया है। विश्वविद्यालय अनुदान समिति भी १९४६ में बन गई। शिक्षा ब्यूरो भी १९४५ से पुनः संगठित हो गया है। विदेशों में शिक्षा तथा हरिजनों की उच्चशिक्षा का व्यय भी केंद्रीय सरकार ने अपने ऊपर ले लिया है।

अन्य सिफारिशें—इन विकास योजनाओं के पहिले सलाहकार समिति के १९४६-४८ तक की सिफारिशों पर भी विचार कर लेना चाहिये क्योंकि वे युद्धोत्तर विकास योजना की पूरक हैं। इस काल में समिति में राष्ट्रीय नेताओं का पुनरागमन भी हो चुका है।

केंद्रीय सलाहकार समिति की बैठक १९४६ ई० में मैसूर में हुई। इसमें समिति ने निम्नलिखित मुख्य बातें तै कीं:—

धार्मिक शिक्षा—कुछ लोग आधारभूत नैतिक नियमों को ही धार्मिक शिक्षा मानते थे और कुछ सांप्रदायिक शिक्षा के पक्ष में थे। समिति ने नैतिक तथा आत्मिक शिक्षा के महत्व को स्वीकार करते हुये स्थिर किया कि शिक्षालयों में इसकी उतनी ही शिक्षा दी जावे जो असांप्रदायिक शिक्षालयों में संभव हो, शेष का कुटुम्ब तथा समाज प्रबन्ध करे।

अध्यापक—अध्यापकों की नियुक्ति के लिये चुनाव समितियाँ हों और एक वर्ष के परीक्षण काल के बाद उन्हें प्रांतीय वेतन दरों

पर स्थायी किया जावे तथा लिखित इकरारनामा हो। अध्यापकों को पूरे वेतन पर छः महीने में पन्द्रह दिन की छुट्टी मिलना चाहिये जो एक वर्ष तक एकत्र की जा सके। स्त्रियों को प्रसव की तीन महीने की छुट्टी मिले। अध्यापकों को शिक्षा सम्बन्धी छुट्टी पूरे वेतन पर मिले अध्यापकों की अवकाश ग्रहण करने की आयु ५५ हो।

कक्षा में ४० से अधिक विद्यार्थी न हों। स्कूल कम से कम दो सौ दिन खुलें।

विद्यार्थी—विद्यार्थियों का हाई स्कूलों के लिये चयन ग्यारह और चौदह वर्ष की उम्र में हो। विद्यार्थियों की प्रगति का लेखा रहे जिसमें उनके बुद्धि माप (Intelligence Quotient) विभिन्न विषयों में योग्यता और व्यक्तिगत गुणों का उल्लेख हो।

जब तक समाज के सभी भागों के लिये शिक्षा की समान सुविधायें न प्रस्तुत हों, तब तक पिछड़े अल्पसंख्यक वर्गों के लिये कुछ स्थान सुरक्षित रहना चाहिये।

वर्तमान भाषायें—रूसी चीनी तथा अन्य भाषाओं की शिक्षा हाई स्कूलों में नहीं वरन् विश्वविद्यालयों में हो।

अंतर्राष्ट्रीय संगठन की सदस्यता—बोर्ड ने भारत सरकार को संयुक्त राष्ट्रीय सांस्कृतिक वैज्ञानिक और शिक्षा संबंधी संगठन (U. N. E. S. C. O) का सदस्य बन जाने का परामर्श दिया।

परीक्षा—बोर्ड ने परीक्षाओं को एक स्तर पर लाने के लिये माध्यमिक परीक्षा समिति नियत की।

स्वास्थ्य शिक्षा—इसके संबंध में बोर्ड का यह मत था कि इस का प्रबंध तो रहे किन्तु शारीरिक कुशलता को परीक्षा का विषय बनाना ठीक न होगा।

राष्ट्रीय योजना समिति (National Planning Committee) इसी वर्ष राष्ट्रीय योजना समिति ने वर्धा योजना को एक

और ठोकर लगा दी। उसके मत में बेसिक शिक्षा काल में विद्यार्थी को व्यावसायिक योग्यता के लिये क्राफ्ट पढ़ाना हानिकर होगा। अन्य बातों में उसने युद्धोत्तर विकास योजना को ठीक मान लिया।

१९४७ की बैठक—१९४७ के जनवरी मास में केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार समिति की बैठक बम्बई में हुई। समिति ने बेसिक इंगलिश को भारतीयों के लिये बेकार करार दिया। किन्तु उसने छः वर्ष तक उस पर बेसिक स्कूलों में अनुभव करने का समय दिया। बोर्ड ने माध्यमिक परीक्षा समिति की सिफारिशों के आधार पर माध्यमिक परीक्षा कौंसिल संगठित करने का निश्चय किया जो अपनी सलाह द्वारा माध्यमिक परीक्षाओं को एक स्तर पर लाने का प्रयास करेगी।

राष्ट्रीय संस्कृति केन्द्र (National Cultural Trust) समिति के विचार में देश की सांस्कृतिक उन्नति के लिये राष्ट्रीय संस्कृति केन्द्र बड़ा सहायक सिद्ध होगा। यह स्वतन्त्र संस्था क़ानून द्वारा संगठित हो और इसके लिये अचल संपत्ति का प्रबन्ध केन्द्रीय सरकार करे। सांस्कृतिक शिक्षा, रिसर्च, और साहित्य की उन्नति में सहायता देने के लिये केन्द्र तीन विभाग स्थापित करेगा।

(१) भारतीय भाषाओं, साहित्य दर्शन तथा ,इतिहास के लिये साहित्यिक एकेडेमी

(२) स्थापत्य और कला की एकेडेमी

(३) संगीत नृत्य तथा नाट्य की एकेडेमी।

पंच वर्षिय योजना में यह केन्द्र भी आ गया है।

विश्वविद्यालय कमीशन—समिति ने निश्चय किया है कि विश्वविद्यालयों के कार्य की पड़ताल के लिये विश्वविद्यालय कमीशन नियत हो। १९४८ में सर सर्व पल्ली राधाकृष्णन् के सभापतित्व में कमीशन नियत हुआ है और आज कल देश का दौरा कर रहा है। इसमें कुछ विदेशी शिक्षा विशारद भी हैं।

अन्तर्विश्वविद्यालय समिति १९४७—इस संस्था ने १९४७ की बैठक में प्रांतीय सरकारों से विद्यालयों के अनुदान बढ़ाने की सिफारिश की ताकि वे कूटनीति Diplomacy और विदेशी व्यापार के विषयों की शिक्षा का प्रबन्ध कर लें। इसने केन्द्रीय विश्वविद्यालय अनुदान समिति से भी प्रार्थना की कि वह विश्वविद्यालयों की स्वतंत्रता कम किये बिना ही सभी विश्वविद्यालयों को सहायता दे, ताकि उच्च शिक्षा और खोज का समुचित प्रबन्ध हो सके। पाठ्यपुस्तकों में लेखकों को ऐतिहासिक तथा निर्लिप्त दृष्टिकोण रखना चाहिये, उनमें वर्णित बातें यथार्थ तथा तर्कसंगत हों।

केन्द्रीय सलाहकार समिति १९४८—१९४८ में केन्द्रीय सलाहकार समिति की बैठक दिल्ली में हुई थी। मौलाना आज़ाद ने चालीस वर्षीय योजना कम से कम समय में लागू करने पर ज़ोर दिया। प्रौढ़ शिक्षा द्वारा साक्षरता को कम से कम ५०% बढ़ाने का निर्णय हुआ। यह भी तै हुआ कि माध्यमिक शिक्षा के सम्बन्ध में कमीशन पड़ताल करे। विश्वविद्यालयों की शिक्षा का वर्तमान माध्यम पांच वर्ष तक चलता रहे। धार्मिक शिक्षा के बारे में मौलाना आज़ाद के मत का समर्थन हुआ कि हमारे देश का अकल्याण भौतिकतावादियों (Materialists) ने नहीं वरन् धर्मान्धों ने किया है, । अतः इसे दूर करने के लिये सरकार के निरीक्षण में धार्मिक शिक्षा दी जावे। किन्तु इसके संगठन पर परामर्श के लिये एक समिति नियुक्त हो।

विकास

अब हम इस काल के विकास का वर्णन करेंगे। आंकड़े १९४९ तक ही प्राप्त हैं अतः उन्हीं का उपयोग होगा। विभाजन के बाद शिक्षा की क्या परिस्थिति है, इसका पता विकास योजनाओं से लगेगा जिसका वर्णन इसके बाद होगा।

उच्च शिक्षा—इस शिक्षा में इस काल में बड़ी प्रगति हुई। नये

प्रान्तों में विश्वविद्यालय स्थापित करने की चर्चा होने लगी, और पुराने प्रान्तों में भाषा क्षेत्रों के लिये नये विश्वविद्यालय स्थापित हुए। पन्द्रह अगस्त १९४७ ई० के विभाजन के बाद तीन विश्वविद्यालय पाकिस्तान क्षेत्र में चले गये फिर भी अब बीस विश्वविद्यालय हैं, पन्द्रह पुराने और पांच नये खुले हैं। ये निम्नलिखित हैं। आगरा, अलीगढ़, प्रयाग, आँध्र, अन्नामलाई, बनारस, बम्बई, कलकत्ता, दिल्ली, लखनऊ, मद्रास, मैसूर, नागपुर, उस्मानिया (हैदराबाद), पटना, त्रावणकोर, उत्कल, सागर, राजपूताना और पूर्वी पंजाब विश्वविद्यालय। मलयलम भाषी क्षेत्र के लिये त्रावणकोर, उड़िया क्षेत्र के लिये उत्कल और मध्य प्रान्तीय हिन्दी क्षेत्र के लिये सागर विश्वविद्यालय खुले हैं। राजपूताना विश्वविद्यालय भी उक्त क्षेत्र के लिये है। पूर्वी पंजाब विश्वविद्यालय विभाजन का फल है। इन विश्वविद्यालयों में आगरा तथा पूर्वी पंजाब को छोड़कर शेष सभी में पढ़ाई का प्रबन्ध है। इनमें कला, विज्ञान, चिकित्सा, इंजीनियरिंग, टेक्नालाजी, कृषि, कामर्स, कानून, शिक्षा और प्राच्य विभाग हैं। ये सभी विभाग किसी एक ही विश्वविद्यालय में नहीं हैं, किन्तु कलकत्ता, मद्रास, बम्बई, पंजाब, बनारस और आगरा में अधिकतर विभाग हैं। मद्रास में ललित कला विभाग भी है। १९३७ ई० में सत्रह विश्वविद्यालयों के १११ विभाग, ५५ कालेज और २८१ सम्बन्धित कालेज थे, इनमें क्रमशः ६५६१, १८९६० और ६८४४६ विद्यार्थी थे। १९४६ ई० में उन्तीस विश्वविद्यालय थे। सम्बन्धित कालेजों की संख्या भी तीन सौ से अधिक थी। विद्यार्थियों की संख्या भी प्रायः डेढ़ लाख हो गयी थी। माध्यमिक और प्रारम्भिक शिक्षा में भी इसी प्रकार विकास हुआ था।

शिक्षा ब्यूरो १९४९—भारतीय शिक्षा ब्यूरो के नवीनतम आंकड़े इस प्रगति को प्रमाणित करने और शिक्षा संगठन के स्वरूप को स्पष्ट करने में सहायक होंगे।

स्वीकृत शिक्षालय	पुरुषों के लिये		स्त्रियों के लिये	
	संख्या	विद्यार्थी	संख्या	विद्यार्थी
विश्वविद्यालय	१६	-	....	
डिग्री कालेज (कला विज्ञान)	२२५	४९३६०	३७	६३५७
इंटरमीजियट कालेज	१६२	१०६७६२	२७	१२०९१
व्यावसायिक कालेज:—				
(१) दीक्षांत	२२	१७३५	१६	८८०
(२) इंजीनियरिंग तथा टेकनालाजी	१२	४७८५	....	७
(३) कृषि	११	२७२३	....	७
(४) वन्य	२	१६७	....	....
(५) चिकित्सा	१६	६०६४	३	११६५
(६) पशु चिकित्सा	५	७०२	....	....
(७) कानून	१६	८४९६	....	५७
(८) कामर्स	२०	११९२०	....	६५
प्राच्य कालेज	३	१२६१	....	६
हाई स्कूल	४२५०	२२९७०१२	६७९	३५९७६१
मिडिल स्कूल	१०५६०		१५४२	
प्रारम्भिक	१४६८९९	९५७१७१७	२०८०१	३४५५५९९
विशेष*	९४०९	३७९१६५	७८७	५०६७०
अस्वीकृत शिक्षालय	१०३१८	३३३३०५	३२४१	१३३७९२
योग	१८२२४६	१२७७४१८१	२७१३८	४०२०४४८

* इसके अन्तर्गत ट्रेनिंग, प्रौढ़, इंजीनियरिंग तथा अन्य स्कूल हैं।

ब्रिटिश भारत का क्षेत्रफल उस समय ८६२३२४ वर्ग मील और अनुमानित जनसंख्या ३२ करोड़ थी, जिसमें १६½ करोड़ पुरुष थे। शिक्षकों में कुल ४६४६१७ पुरुष और ७३५६० स्त्रियाँ थीं इनमें अधिकांश में दीक्षित थे। शिक्षा पर कुल व्यय ४५८७ लाख था जिसमें सरकारी भाग १८४७ लाख था अर्थात् १६३७ से भी अनुपात कम हो गया था। गैरसरकारी व्यय बढ़ रहा था।

इन आंकड़ों पर ध्यान देने से स्त्री शिक्षा और टेक्निकल शिक्षा में शीघ्र प्रगति की आवश्यकता स्पष्ट है। देश की जनसंख्या और क्षेत्रफल की तुलना में अभी शिक्षा अपर्याप्त है।

पंचवार्षिक योजनायें

इसी अभाव को दूर करने के लिये १६४६-४७ से नई पंचवार्षिक योजनायें बनीं और कार्यान्वित होने लगीं। संक्षेप में वे इस प्रकार हैं।

आसाम—पांच वर्षों में बेसिक शिक्षा लागू करना। यहां प्रारंभिक शिक्षा निःशुल्क है ही। १२५० नये जूनियर बेसिक स्कूल खोलना निश्चित हुआ है। इस गति से ६-१४ वर्ष वालों की अनिवार्य बेसिक शिक्षा में पैंतीस वर्ष लगेंगे। प्रति वर्ष छः नर्सरी स्कूल भी खुलेंगे। तीन नये हाई स्कूल और पचीस मिडिल स्कूल खोलने की भी योजना है। टेक्निकल हाई स्कूल तीन हैं, पांच वर्षों में दो और टेक्निकल स्कूल खुलेंगे तथा चार हाई स्कूलों में कामर्स तथा कला की कक्षायें जोड़ दी जावेंगी। प्रौढ़ शिक्षा के ४०० केन्द्र हैं, पांच वर्ष के भीतर ४०० नये केन्द्र स्थापित होंगे। इस प्रकार पूर्ण साक्षरता में ३५-४० वर्ष लगेंगे। बेसिक शिक्षकों की दीक्षा के लिये प्रत्येक घाटी में दो दीक्षांत विद्यालय (एक स्त्रियों और दूसरा पुरुषों के लिये) खुल जायंगे। बच्चों के स्वास्थ्य सुधार के लिये स्वास्थ्य शिक्षकों को बढ़ाने और स्कूल मेडिकल सर्विस स्थापित करने की योजना है। सरकार एक स्कूल अंधों के लिये और एक बहरे गूंगों

के लिये भी स्थापित करेगी। इंस्पेक्टरों की संख्या में भी वृद्धि की जावेगी। स्पष्टतया आसाम के बहुत पिछड़े होने के कारण ही प्रगति इतनी धीमी होगी।

बिहार—पांच वर्षों में प्रांत के चौथे भाग में ६-१४ वर्ष वालों की शिक्षा अनिवार्य कर दी जावेगी। प्रति वर्ष ३२ सरकारी मिडिल स्कूल खुलेंगे। गैर सरकारी मिडिल स्कूलों की सहायता भी बढ़ा दी जावेगी। लड़कियों के लिये चालीस सरकारी मिडिल स्कूल खुलेंगे। पन्द्रह सरकारी लड़कियों के हाई स्कूल खुलेंगे और सभी गैर सरकारी हाई स्कूलों को सहायता बढ़ा दी जावेगी जिससे वे वेतनों में वृद्धि कर सकें और विज्ञान की शिक्षा का प्रबंध कर सकें। उच्च शिक्षा के लिये सरकार वर्तमान कालेजों का विकास करेगी और लड़कियों के लिये कालेज खोलेगी जिसमें डिग्री स्तर की शिक्षा के प्रबंध के साथ ही ग्रैजुएट अध्यापिकाओं की दीक्षा का भी प्रबंध होगा। टेक्निकल शिक्षा के लिये पैंतीस टेक्निकल स्कूल और दो टेक्निकल कालेज हैं। पांच वर्षों में एक नया टेक्नालाजी कालेज दो जूनियर टेक्निकल इंस्टीट्यूट तथा पन्द्रह अर्ध सामयिक व्यावसायिक स्कूल खोलने की योजना है। प्रौढ़ शिक्षा सार्वदेशिक बनाने की पचीस वर्षीय योजना है। प्रारंभिक अध्यापकों की दीक्षा के लिये पचपन स्कूल हैं और अध्यापिकाओं के लिये दो ट्रेनिंग कक्षायें हैं। पांच वर्ष में पन्द्रह ट्रेनिंग स्कूल पुरुषों और चार स्त्रियों के लिये खुलेंगे। दो ग्रैजुएटों और एक स्त्री अग्रैजुएटों के लिये तीन ट्रेनिंग कालेज (दीक्षांत महाविद्यालय) खुलेंगे। बच्चों की चिकित्सा के प्रबंध के लिये स्कूलों को सरकारी सहायता मिलेगी।

इससे यह स्पष्ट है कि बिहार टेक्निकल तथा स्त्री शिक्षा पर अधिक बल देना चाहता है।

बम्बई—इस प्रांत में ६-११ वर्ष वाले बच्चों के लिये चार वर्षीय

प्रारंभिक शिक्षा को दस बारह वर्ष में निःशुल्क अनिवार्य तथा सर्वदेशिक बनाने की योजना है। इस विकास का सम्पूर्ण व्यय प्रांतीय सरकार देगी यद्यपि विकास बोर्डों द्वारा ही होगा। धीरे-धीरे सभी प्रारंभिक स्कूलों में बेसिक पाठ्यक्रम आ जावेगा।

माध्यमिक शिक्षा क्षेत्र में अधिक सहायता द्वारा गैर सरकारी हाई स्कूल बढ़ाए जायेंगे कृषि हाई स्कूल द्विगुणित करके आठ हो जायेंगे तथा टेक्निकल हाई स्कूलों को छः गुना करके बारह किया जावेगा। उन्तालीस टेक्निकल स्कूलों और छै टेक्निकल कालेजों को विकसित किया जावेगा और चार नये औद्योगिक स्कूल खुलेंगे।

उच्च शिक्षा के लिये सरकार तीन भाषा क्षेत्रीय विश्वविद्यालय महाराष्ट्र (१९४९) गुजरात (१९५०) और कर्नाटक (१९५१) खोलेगी।

ट्रेनिंग कालेजों की संख्या तीन से सोलह कर दी जावेगी, इनमें छः महिलाओं के लिये होंगे। छत्तीस लोकशालायें (प्रारंभिक अध्यापकों के दीक्षांत विद्यालय) खुलेंगी।

मद्रास—बीस वर्षों में ६-१४ आयु वालों को अनिवार्य शिक्षा देने का प्रबन्ध हो जावेगा। अगले पांच वर्ष में प्रारंभिक स्कूलों में ३३% वृद्धि होगी।

टेक्निकल कामर्स तथा आर्ट की शिक्षा के लिये चौरासी स्कूल तथा छः कालेज हैं। पांच वर्षों में छः पालीटेक्निक, पन्द्रह जूनियर टेक्निकल स्कूल, दो इंजीनियरिंग कालेज और एक रिसर्च इंस्टीट्यूट खुलेगा। इस प्रकार मद्रास टेक्निकल शिक्षा पर अधिकतम बल देना चाहता है, क्योंकि वहां माध्यमिक तथा उच्चशिक्षा का यथेष्ट प्रबंध है।

उड़ीसा—यह पिछड़ा हुआ प्रदेश है अतः यहां ४० वर्षों में ६–११ वर्ष वालों को अनिवार्य शिक्षा देने की योजना है। पांच वर्ष में सभी म्युनिसिपिलटियों और कुछ ग्रामीण क्षेत्रों में अनिवार्य योजना

लागू होगी। पिछड़े हुये भागों में भी ५०० प्रारंभिक स्कूल खुलेंगे। बालकों के लिये पचीस तथा बालिकाओं के लिये बीस मिडिल स्कूल खुलेंगे। बालकों के मिडिल स्कूलों में व्यावसायिक शिक्षा का विशेष प्रबन्ध होगा।

हाई स्कूलों में सुधार और तीस ग़ैर सरकारी हाई स्कूल तथा दस सरकारी बालिका हाई स्कूल खोलने की योजना है। इनमें व्यवसाय चुनने में सहायता देने वाले अध्यापक (career master) को २५) प्रतिमास भत्ता भी मिलेगा।

पुराने डिग्री कालेजों का सुधार तथा उत्कल विश्वविद्यालय में एक महिला कालेज खोलने का विचार है। प्रारंभिक दीक्षांत विद्यालय तेरह से इक्कीस हो जावेंगे जिनमें दो लड़कियों के लिये होंगे। कटक ट्रेनिंग कालेज और दोनों सी. टी. ट्रेनिंग स्कूलों को विकसित किया जावेगा।

व्यावसायिक शिक्षा के लिये एक कामर्स कालेज, एक ला कालेज एक महिला सेवा सदन और एक आर्ट क्राफ्ट स्कूल खुलेंगे।

इस प्रकार उड़ीसा अपने संगठन को प्रांतीय आवश्यकताओं के अनुसार बनाने में व्यस्त है।

संयुक्त प्रांत—पांच वर्षों में प्रारम्भिक शिक्षा बारह ज़िलों में अनिवार्य करने और दस वर्ष के भीतर उसे सार्वदेशिक बनाने तथा ११–१४ आयु वालों पर भी लागू करने का विचार था। इसके सिवा फौजियों के गांवों में २०० स्कूल खुलने वाले थे। अब युक्तप्रांतीय सरकार ने पांच वर्ष के भीतर ही जूनियर बेसिक शिक्षा अनिवार्य और सार्वदेशिक बनाने की योजना बनाई है। प्रायः ८५०० स्थानीय संस्थाओं के स्कूलों में बेसिक पाठ्यक्रम लाने की योजना थी। किन्तु इसमें भी शीघ्रतर प्रगति हुई है और अब सभी प्रारम्भिक स्कूल बेसिक पाठ्यक्रम वाले हैं।

सत्तर नये बालिका हाई स्कूल खोलने और सभी हाई स्कूलों में प्रायोगिक तथा व्यावसायिक विषयों पर विशेष ज़ोर देने तथा ग़ैर सरकारी स्कूलों को अधिक सहायता द्वारा सुधारने की योजना है।

डिग्री कालेजों तथा लखनऊ और प्रयाग विश्वविद्यालयों व अधिक सहायता द्वारा विकसित करके सुधारा जावेगा।

सात ज़िलों में सार्वदेशिक प्रौढ़ शिक्षा का प्रबन्ध होगा। दस न नार्मल स्कूल खुलेंगे, बेसिक केन्द्र और प्रारम्भिक ट्रेनिंग स्कूल भं नार्मल स्कूल बना दिये जावेंगे।

इसी प्रकार की योजनायें अन्य प्रांतों में भी बनी हैं। संयुक्त प्रान्त अपने महत्व के अनुसार शिक्षा संगठन में संलग्न है। यथार्थ में यह प्रगति इस योजना से भी द्रुततर हो रही है।

केन्द्रीय योजनायें—केन्द्र उन बातों का प्रबन्ध करेगा जो प्रांतीय योजनाओं में नहीं हैं और, एक सीमा तक, प्रांतय योजनाओं का पूरक होगा।

उच्च टेक्निकल शिक्षा—इसके लिये दो केन्द्र (पूर्वीय तथा पश्चिमीय) भारत में स्थापित होंगे जो प्रति वर्ष एक हज़ार इंजीनियर टेकनालाजी विशारद (besigners, Research workers. Productionexperts) आदि तैयार करेंगे।

बंगलोर साइंस इंस्टीट्यूट में एक हाई वाल्टेज इंजीनियरिंग प्रयोग शाला (High Voltage Engineering Laborat-ory) और बिजली का इंजिनिरिंग कालेज (Power Engineerine college) स्थापित होंगे।

दिल्ली पालीटेक्निक इंस्टीट्यूट को बढ़ाकर दिल्ली विश्वविद्यालय के टेक्नालाजी विभाग का रूप दिया जावेगा।

टेक्निकल शिक्षा समिति भी पांच कमेटियों द्वारा देश की आवश्यकताओं का अध्ययन और उन्हें उपलब्ध कराने के तरीकों पर विचार करेगी।

उच्च शिक्षा—विश्वविद्यालय अनुदानसमिति ने भारतवर्ष में भी

अनु-संधान की सुविधायें उपलब्ध करके बाहर जानेवाले विद्यार्थियों पर होने वाले व्यय को घटाने की योजना बनाई है। इसके लिये केन्द्रीय तथा अन्य विश्वविद्यालयों के विकास के लिये सहायता बढ़ाई जा रही है। इसके लिये केन्द्रीय सरकार ने एक राष्ट्रीय संग्रहालय, केन्द्रीय पुस्तकालय और सस्कृति केन्द्र (Cultural Trust) स्थापित करने की योजना बनी है।

एक शिक्षा केन्द्र Institute of Education की स्थापना हो चुकी है (दिसम्बर १९४७) इसमें पोस्ट ग्रेजुएट अध्यापकों की दीक्षा और शिक्षा सम्बन्धी अनुसंधान का प्रबन्ध होगा। अंधों की शिक्षा के लिये उपयुक्त साहित्य तैयार कराया जा रहा है।

सांस्कृतिक प्रसार के लिये संगीत विद्यापीठ लखनऊ और कला क्षेत्र, अदयार को विकसित किया जा रहा है। मद्रास में कर्नाटक संगीत कालेज की स्थापना विचाराधीन है।

दिल्ली में एक और ऐसे केन्द्र की स्थापना पर विचार हो रहा है जिसमें स्वास्थ्य शिक्षा, गृहविज्ञान (Domestic Science) अर्थशास्त्र संगीत, आर्ट, क्राफ्ट आदि की उच्चतम शिक्षा तथा दीक्षा का प्रबन्ध हो।

१९४९—इस वर्ष केन्द्रीय सलाहकार समिति की बैठक में केन्द्रीय शिक्षा मंत्री ने बेसिक और प्रौढ़ अथवा सामाजिक शिक्षा के लिये एक कार्यक्रम प्रस्तुत किया जिसमें बारह बातें थीं। यह कार्यक्रम बेसिक तथा प्रौढ़ शिक्षा को गति देने के लिये है और यह ग्राम्य स्कूलों को सामाजिक जीवन का केन्द्र बना देगा।

(१) ग्राम्य स्कूल सामाजिक शिक्षा, विनोद तथा खेलकूद का केन्द्र होगा।

(२) बच्चों, कुमारों तथा वयस्कों के लिये अलग अलग समय निर्धारित होगा।

(३) कुछ दिन केवल स्त्रियों और बालिकाओं के लिये सुरक्षित रहेंगे ।

(४) गाँवों की जनता के समक्ष लाउड स्पीकरों समेत मोटर, फिल्म, रेडियो मैजिक लालटेन इत्यादि द्वारा नई नई बातें आकर्षक ढंग से प्रस्तुत की जावेंगी ।

(५) प्रत्येक स्कूल में रेडियो लगेंगे और बच्चों, कुमारों तथा वयस्कों के लिये रेडियो स्टेशन विशेष प्रोग्राम की व्यवस्था करेंगे ।

(६) राष्ट्रीय तथा सामाजिक गीतों के सिखाने का प्रबंध होगा ।

(७) लोकप्रिय नाटकों का भी प्रबन्ध होगा ।

(८) स्थानीय आवश्यकताओं के अनुकूल कोई व्यवसाय अथवा क्राफ्ट सिखाने का प्रबन्ध होगा ।

(९) कृषि, घरेलू उद्योग धंधों और सफ़ाई पर भाषण होंगे ।

(१०) रचनात्मक कार्यक्रम और उद्योग विभाग की फिल्मों के सहारे सामाजिक शिक्षा का प्रबन्ध होगा ।

(११) सामूहिक खेलों और प्रतियोगिताओं का प्रबंध किया जावेगा ।

(१२) समय समय पर प्रदर्शनियों एवं मेलों का प्रबन्ध किया जायगा तथा लोगों को यात्रायें करने के लिये उत्साहित किया जावेगा । इन मेलों द्वारा सामाजिक शिक्षा और संगठन में सहायता मिलेगी ।

मौलाना आज़ाद ने टेक्निकल और उच्च शिक्षा के लिये अधिकाधिक छात्रवृत्तियों द्वारा विद्यार्थियों को विदेशों में भेजने की योजना पर भी बल दिया । उन्होंने कहा कि विश्वविद्यालय कमीशन की सिफारिशें प्रकाशित होने पर उच्चशिक्षा के संगठन पर ध्यान दिया जावेगा ।

इस (जनवरी १९४९) बैठक में समिति ने निम्नलिखित मुख्य प्रस्ताव पास किये:—

बेसिक शिक्षा—जूनियर बेसिक स्कूलों में प्रांतीय मातृभाषा ही शिक्षा का माध्यम होगी किन्तु यदि विभिन्न मातृभाषा वाले विद्यार्थियों की संख्या पर्याप्त (कम से कम चालीस) हो तो उसे भी माध्यम बनाया जा सकता है। इन विद्यार्थियों को प्रांतीय भाषा तीसरी से लेकर पांचवीं कक्षा तक पढ़ाना आरंभ कर देना चाहिये। जहां पर हिन्दुस्तानी भाषा नहीं है वहां उसे पढ़ाने का प्रबन्ध सीनियर बेसिक तथा अन्य माध्यमिक स्कूलों में होगा। इस के लिये लिपि के संबन्ध में मद्रास वालों के सुझाव। पहिले रोमन लिपि और बाद में नागरी लिपि का व्यवहार। पर प्रयोग करने का अवसर दिया गया। सरकार से यह भी सिफारिश की गई कि वह समस्त भारतवर्ष में दस वर्षों के भीतर प्रारंभिक शिक्षा (६ से ११ वर्ष की आयु वालों के लिये) को अनिवार्य कर दे और इस शिक्षा में ऐसे विषयों को महत्व दिया जावे जिनसे कृषि तथा उद्योगों की उन्नति में सहायता मिले।

विश्वविद्यालय—विश्वविद्यालयों में माध्यम के प्रश्न को कमीशन की रिपोर्ट निकलने तक स्थगित कर दिया गया। विश्वविद्यालयों को शिक्षा का स्तर कम किये बिना प्रांतीय भाषाओं को माध्यम बनाने की स्वतंत्रता भी दे दी गई।

माध्यमिक शिक्षा—इस पर भी एक कमीशन नियत करने की सिफारिश के साथ ही गतवर्ष की समिति के कुछ सुझावों को मान लिया गया। राष्ट्रभाषा सीनियर बेसिक कक्षाओं में अनिवार्य हो और उच्चतर माध्यमिक कक्षाओं में वैकल्पिक। किन्तु विश्वविद्यालयों का अंग्रेजी माध्यम हटने पर उन कक्षाओं में भी राष्ट्रभाषा अनिवार्य विषय बन जावेगी।

बहुमुखी माध्यमिक महाविद्यालय (Multilateral High Secondary School) ही आदर्श हैं किन्तु स्थानीय परिस्थितियों के अनुकूल न होने पर एकमुखी (Unilateral) स्कूल भी खोले जा सकते हैं।

माध्यमिक शिक्षा के बाद एक परीक्षा होगी और विश्वविद्यालय अपने प्रवेश के नियम अलग बना सकते हैं। इस स्कूलों में अनिवार्य शिक्षा के स्तर के बाद फीस बढ़ाई जा सकती है किन्तु निर्धन मेधावी छात्रों की निःशुल्क शिक्षा की अधिक व्यवस्था आवश्यक है। हर स्कूल में युवक संस्थाओं और बालचर संघटनों का प्रोत्साहन मिलना चाहिये।

अध्यापकों की दीक्षा कम से कम एक वर्ष की हो और प्रति पांचवें वर्ष नया कार्स (Refresher course) होना चाहिये। अध्यापकों का वेतन और नौकरी की शर्तें युद्धोत्तर विकास योजना के अनुसार हों, किन्तु उस पर वर्तमान परिस्थितियों में पुनः विचार आवश्यक है।

माध्यमिक शिक्षा पर प्रान्तीय अधिकारियों को परामर्श देने के लिये एक प्रान्तीय बोर्ड होना चाहिये।

टेक्निकल शिक्षा—गैर सरकारी टेक्निकल शिक्षालयों को न रहना चाहिये वरन् सरकार को उन्हें पूरा व्यय देकर सुधारना चाहिये। इनके विद्यार्थियों का प्रायोगिक शिक्षा के लिये संबंधित व्यवसायों से संपर्क भी होना चाहिये, प्रयोगशालायें तो होंगी ही।

अखिल भारतीय टेक्निकल शिक्षा समिति की पांचो क्षेत्रीय समितियां तथा उनसे संबंधित विशेष अफसर स्थायी रूप से रहें। शिक्षा विभागों के अंतर्गत ही संपूर्ण टेक्निकल और व्यावसायिक शिक्षा आ जाना चाहिये। कृषि उद्योग आदि संबंधित विभागों पर उनका प्रबंध न रहना चाहिये।

स्वास्थ्य शिक्षा—अंतर्विश्वविद्यालय समिति से प्रयाग विश्वविद्यालय की शारीरिक शिक्षा योजना पर विचार करके अन्य विश्वविद्यालयों के समक्ष रखने को कहा गया।

बालसाहित्य प्रस्तुत करने के लिये भी एक समिति बनाई गई।

संपूर्ण स्वास्थ्य शिक्षा पर केन्द्रीय व्यय ५०% होना चाहिये। केन्द्रीय रक्षा विभाग से प्रांतीय स्वास्थ्य शिक्षा अफसरों का संपर्क होना

चाहिये जिससे वे पूना तथा अन्य रक्षा विभागीय स्कूलों की कार्य-प्रणाली से लाभ उठा सकें।

अन्य सिफारिशें—मूढ़ (Mentally Deficient) विद्यार्थियों के लिये प्रत्येक प्रांत में एक स्कूल होना चाहिये।

अध्यापकों का न्यूनतम वेतन ४०) प्रति मास होना चाहिये।

एक अध्यापक को अधिक से अधिक तीस विद्यार्थियों की कक्षा मिलना चाहिये किन्तु पांच वर्ष तक यह संख्या चालीस तक हो सकती है।

अनेक प्रांतों ने डबल शिफ्ट की व्यवस्था की । इसे शीघ्रातिशीघ्र मिटा देना चाहिये।

सरकार को कानून द्वारा चिकित्सा संबंधी ट्रस्टों को छोड़कर अन्य दातव्य ट्रस्टों को एक निश्चित भाग शिक्षा पर व्यय करने के लिये बाध्य करना चाहिये।

प्रवेशिका तथा उसकी समकक्ष परीक्षाओं में सफल विद्यार्थियों को कुछ समय तक सामाजिक शिक्षा देने के लिये बाध्य किया जा सकता है।

उदार सरकारी सहायता द्वारा लोगों तथा संस्थाओं को न स्कूल खोलने की प्रेरणा मिलना चाहिये। इसके लिये सरकार ऋण भी दे सकती है।

शिक्षा सम्बन्धी दानों पर आयकर न लगना चाहिये। औद्योगिक तथा व्यावसायिक संस्थाओं का शिक्षा संबंधी व्यय भी आयकर से मुक्त हो।

केंद्र और प्रांत अपनी आय का कम से कम क्रमशः दस और बीस प्रतिशत शिक्षा पर व्यय करें। केन्द्र प्रांतीय शिक्षा व्यय का तीस प्रतिशत दे और शेष सत्तर प्रतिशत प्रांतीय सरकार और स्थानीय संस्थायें जुटावें।

शिक्षा विकास योजनाओं को शीघ्रातिशीघ्र कार्यान्वित किया जावे।

उपसंहार—इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतीय शिक्षा का विकास अब राष्ट्रीय आवश्यकताओं के अनुसार हो रहा है। उसे व्यक्ति की आजीवन शिक्षा और जीवन के सभी अंगों के लिये उपयोगी बनाने का प्रयास हो रहा है। इस प्रकार ब्रिटिश शासन पर यह आरोप कि सरकार शिक्षा-विकास पर यथेष्ट ध्यान नहीं देती वर्ना विकास अधिक हो सकता है, सही सिद्ध हो गया है। राष्ट्रीय कर्णधार देश की रचनात्मक उन्नति के इस महत्वपूर्ण विषय पर उचित ध्यान दे रहे हैं।

सारांश

१९३७ ई० में प्रान्तीय स्वायत्त शासन की स्थापना के बाद शिक्षा को विशेष महत्व मिला क्योंकि शिक्षा प्रान्तीय दायित्व होने के नाते राष्ट्रीय नेताओं के हाथ में आई। महात्माजी के नेतृत्व में बेसिक शिक्षा योजना बनी जो शिक्षा को सस्ती, उपयोगी तथा देश की बेकारी को नाश करने में सहायक बनाना चाहती थी। महात्मा जी के शिक्षा सम्बन्धी विचार मौलिक और क्रान्तिकारी थे। क्राफ्ट को शिक्षा का माध्यम बनाना आधुनिकतम मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों के अनुरूप है और उससे व्यक्तित्व का चरम विकास सम्भव है। आरम्भ में इस पर बड़ी आपत्तियां की गईं किन्तु कुछ हेर फेर के बाद यह योजना भारतीय शिक्षा का अंग बन गई है।

शिक्षा विकास में दूसरी महत्वपूर्ण घटना केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार समिति की युद्धोत्तर विकास योजना है। जिसपर वर्धा योजना में प्रारम्भिक तथा मिडिल बेसिक शिक्षा पर राष्ट्रीय दृष्टिकोण से विचार हुआ था उसी प्रकार इस योजना में राष्ट्र की समूची शिक्षा को आवश्यकताओं और परिस्थितियों के अनुकूल बनाने की योजना थी। अनुमानित व्यय और समय आदि देकर योजना को व्यावहारिक बनाने में कोई कसर नहीं रखी गई थी। भावी संगठन पर इसकी अमिट छाप है।

इस काल से केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार समिति शिक्षा संगठन को बराबर प्रभावित कर रही है।

उसी की सिफारिशों के अनुसार केन्द्रीय शिक्षा विभाग, शिक्षा ब्यूरो और विश्वविद्यालय समिति, अखिल भारतीय टेक्निकल शिक्षा समिति, शिक्षा केन्द्र आदि का संगठन हुआ है।

इस काल में शिक्षा के सभी अंगों को विकसित करके उसे राष्ट्रीय आवश्यकताओं और सामाजिक वातावरण के अनुकूल बनाया जा रहा है। प्रान्तों तथा केन्द्रों ने पंचवार्षिक योजना (१९४७-५२) बना कर शिक्षा को और भी प्रगति दी है।

इस वर्ष जनवरी में केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार समिति की बैठक में केन्द्रीय शिक्षा मन्त्री ने बेसिक और प्रौढ़ शिक्षा संस्थाओं को ग्राम्य तथा राष्ट्रीय जीवन से सम्बन्धित सामाजिक शिक्षा का केन्द्र बनाने की योजना पेश की है, जिसके द्वारा लोगों में कुशल नागरिकता का विकास होगा। केन्द्र ने प्रान्तीय शिक्षा व्यय का एक भाग जुटाने का दायित्व भी स्वीकार कर किया है। उसने तीन वर्षों में निरक्षरता को ५०% घटाने का भी निश्चय किया है।

प्रश्न

१. वर्धा योजना का वर्णन करते हुये उसकी व्यावहारिकता पर टीका कीजिये।

२. युद्धोत्तर विकास योजना का संक्षिप्त वर्णन करते हुये उसकी आलोचना कीजिये।

३. केन्द्रीय पंचवर्षीय योजना के महत्व का वर्णन कीजिये।

अध्याय ९

संयुक्त प्रांतीय शिक्षा संगठन

साधारण तौर से इस प्रांत की शिक्षा का वर्णन भी पिछले अध्यायों में सम्मिलित है। १९२१ ई० के पहिले तक केन्द्रीय सरकार ही शिक्षा नीति निर्धारित करती थी और इस लिये संयुक्त प्रांतीय शिक्षा संगठन भी अन्य प्रांतों की भांति था। सौभाग्यवश कुछ उच्च टेक्निकल शिक्षालय यहां स्थापित हो चुके थे। किंतु इस प्रांत की शिक्षा का विकास यहां की जन संख्या, सभ्यता और साधनों की दृष्टि से प्रेसीडेंसियों की तुलना में कम था। यहां पर चार विश्वविद्यालय थे और माध्यमिक शिक्षालयों के मुख्य दो प्रकार थे। इनमें से हिन्दुस्तानी मिडिल स्कूल अधिकांशतया देहातों में और ऐंग्लो हिन्दुस्तानी मिडिल स्कूल तथा हाई स्कूल शहरों में थे। यहां पर सेडलर कमीशन की सिफारिशों के अनुसार बोर्ड आफ़ हाई स्कूल ऐंड इंटर मीजियट एजुकेशन बना कर माध्यमिक शिक्षा विश्वविद्यालयों से हटा लेने का निश्चय हो चुका था, यद्यपि अलीगढ़ तथा बनारस विश्वविद्यालयों पर यह नियम लागू न था। टेक्निकल शिक्षा तथा स्त्री शिक्षा विशेषतया पिछड़ी हुई थी।

प्रारंभिक शिक्षा—इस शिक्षा को सुधारने और अधिक लोक-प्रिय बनाने का प्रयास लार्ड कर्ज़न के समय में आरंभ हुआ। १९०४ ई० के प्रस्ताव में इस पर अधिक ध्यान देने और व्यय करने का आदेश था। पाठ्यक्रम को स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप बनाने का भी आदेश दिया गया था। किन्तु इन से कोई ठोस प्रगति न

हुई। संयुक्त प्रांतीय सरकार ने सुधार निर्दिष्ट करने के लिये १९१३ ई० में एक समिति नियुक्त की जिसके अध्यक्ष जस्टिस पिगट थे। इसे पिगट कमेटी भी कहते हैं।

पिगट कमेटी—(Piggott Committee) इस समिति ने प्रारंभिक शिक्षा पर पड़ताल के बाद स्थिर किया कि शिक्षा न बढ़ने के दो मुख्य कारण हैं। एक तो बहुतेरे अभिभावक इस शिक्षा से लाभ उठाने का प्रयास ही नहीं करते दूसरे जो विद्यार्थी भरती होते हैं, वह शीघ्र ही पढ़ना छोड़ देते हैं, जिससे वे स्थायी रूप से साक्षर नहीं हो पाते। जल्दी छोड़ने का मुख्य कारण अपर प्राइमरी पाठ्यशालाओं की कमी और अभिभावकों की उदासीनता है। इस दशा को सुधारने के लिये कमेटी ने संगठन और पाठ्यक्रम दोनों में ही सुधार पेश किये।

समिति ने जिलों को पचीस वर्ग मील तक के वृत्तों में बांटकर उनमें कम से कम एक पूर्ण प्रारंभिक पाठशाला और कई लोअर प्राइमरी पाठ्यशालायें स्थापित करने की राय दी। इस प्रकार छोटे विद्यार्थियों को दूर न जाना पड़ेगा और उच्चतर कक्षाओं के विद्यार्थियों को कुछ ही अधिक दूर चलना होगा। लड़कियों की शिक्षा बढ़ाने के लिये पिगट कमेटी ने पाठ्यक्रम को सरल बनाने तथा विधवाओं को अध्यापिकाओं की दीक्षा देने की राय दी। यह योजना १९१६-१७ में लागू हुई और इसके फलस्वरूप ३०००० विद्यार्थी बढ़े।

पाठ्यक्रम को अधिक आकर्षक बनाने के लिये समिति ने प्रकृति-निरीक्षण, बाग़बानी, पटवारी तथा गांव संबन्धी अन्य काग़ज़, बहीखाता, सफाई हाईजीन आदि को भी गणित, भूगोल और भाषा के साथ पाठ्यक्रम में शामिल कर दिया। भाषा-पुस्तकों के पाठों में कृषि, पशुपालन, सिंचाई, सहकारिता, नशे से हानि आदि विषयों पर कुछ ज़ोर दिया गया। अब पाठ्यक्रम वातावरण के तो बहुत कुछ समीप आ गया किन्तु साधारण विद्यार्थी के लिये अधिक हो गया।

शिक्षा-कानून १९१९ तथा १९२६—परन्तु इन सब से भी प्रगति अधिक न हुई, अतः १९१८ में वृत्त प्रथा को तोड़कर ६०% नये स्कूल खुले। साथ ही १९१९ में शिक्षा क़ानून द्वारा म्युनिसिपिलटियों को अनिवार्य शिक्षा लागू करने के लिये प्रोत्साहन दिया गया। सरकार ने विकास का संपूर्ण नया उस समय तक देना स्वीकार किया जब तक वह संपूर्ण व्यय का ६६% न हो जावे। इस समय सरकारी अनुदान लगभग ५०% था म्युनिसिपल बोर्डों को अनिवार्य शिक्षा लागू करने में इससे विशेष प्रोत्साहन मिला। किन्तु इस क़ानून के अंतर्गत बनाई गई स्कूल समितियों ने उत्साहपूर्वक काम न किया। बच्चों को न भेजने वाले अभिभावकों को दंड देने की विधि इतनी पेचीदा और खर्चीली थी कि अनिवार्य क्षेत्र में भी बहुतेरे विद्यार्थी स्कूलों में न जाते थे। बोर्डों की इच्छा पर इस प्रश्न को छोड़ना भी अनुचित था। अतः विद्यार्थियों की संख्या थोड़ी ही बढ़ी।

अब गाँवों में भी इस योजना को लागू करने के प्रश्न पर सरकार ने अपने दो अफ़सरों को खोज करने के लिये नियत किया। श्री किचलू (१९२४) और श्री हैरप (१९२६) ने अनिवार्यता के नियम को लागू करने के पक्ष में ही परामर्श दिया। अतः १९२६ ई० में प्रांतीय सरकार ने ज़िला बोर्डों के लिये भी १९१९ के समान ही नियम बनाया। शिक्षा को और अधिक प्रगति देने के लिये ज़िला बोर्डों में क़ानूनी तौर से शिक्षा समितियों का निर्माण हुआ।* इस काल में प्रांतीय सरकार ने अपना सहायता व्यय भी चौगुना कर दिया। इसी समय साक्षरता आंदोलन आरंभ हुआ और १९२७ ई० से इस प्रांत में प्रौढ़ों के लिये रात्रि-पाठशालायें खुलने लगीं। इन सभी बातों से प्रारंभिक शिक्षा और साक्षरता को गति मिली, किन्तु यथेष्ट नहीं क्योंकि बहुत ही थोड़े बोर्डों ने अनिवार्यता के क़ानून से लाभ उठाया।

---

* १९२८ के डिस्ट्रिक्ट बोर्ड अमेंडमेंट एक्ट के अनुसार।

वियर रिपोर्ट—(Weir Report 1933) इसके बाद अर्थ-संकट का काल आया तो बोर्डों से भी शिक्षा व्यय कम करने को कहा गया। उन्होंने स्कूलों और अध्यापकों की संख्या कम करने के स्थान पर वेतन में कटौती का प्रस्ताव रखा। वह स्वीकृत हो गया। अब शिक्षा विभाग ने व्यय को बढ़ाये बिना ही विकास करने के लिये स्कूलों और अध्यापकों के पुनः वितरण द्वारा विद्यार्थियों की संख्या और कुशलता को बढ़ाने की समस्या की छान बीन के लिये श्री वियर को नियत किया। उन्हें इमारतों की मरम्मत तथा स्कूलों के उपकरणों की दशा पर भी अपना मत देना था।

सिफारिशें—श्री वियर के पहिले ही हर्टाग समिति और श्री किचलू तथा श्री हैरप ने ऐसे स्कूलों पर लक्ष्य किया था जिनमें विद्यार्थियों की संख्या कम थी तथा इनके वितरण में भी दोष था, यथा कहीं-कहीं एक हज़ार जनसंख्या वाले गांवों में तो कोई स्कूल न था किन्तु छोटे गांवों में एक से अधिक स्कूल भी थे। श्री वियर की मुख्य सिफारिशें निम्नलिखित हैं।

(१) अतिरिक्त* (Superflwous) और अपव्ययी* (Uneconomic) स्कूलों को बन्द कर दिया जावे, ऐसे स्कूल कम से कम २५१५ थे।

---

* अतिरिक्त स्कूल से तात्पर्य उन स्कूलों से है जिनको बन्द करने से किसी क्षेत्र के शिक्षा सम्बन्धी साधनों और विद्यार्थियों में कमी न हो। यदि संयुक्त प्रान्त के मैदानी भाग के ऐसे वृत्त बनाये जावें कि किसी विद्यार्थी को डेढ़ मील से अधिक न चलना पड़े तो कमायूँ के ८०० स्कूलों समेत कुल १४००० स्कूल होना चाहिये। परन्तु कुल स्कूलों की संख्या १७८३६ है। अतः ३८३६ स्कूल अतिरिक्त हैं।

अपव्ययी स्कूल—स्कूल का कार्य साक्षरता प्रदान करना है। जो स्कूल साक्षर बनाने में असफल हैं, अथवा प्रति विद्यार्थी बहुत

(२) हर स्कूल में कम से कम दो अध्यापक और पचास विद्यार्थी हों। भरती साल के आरम्भ में हो। उपस्थिति सुधारने का प्रयास हो।

(३) प्रत्येक इंस्पेक्टर के सर्किल में प्राइमरी अध्यापकों की दीक्षा के लिये एक सरकारी सेन्ट्रल ट्रेनिंग स्कूल होना चाहिये।

(४) पक्की इमारतों और छात्रावासों के लिये बोर्डों को सहायता मिले।

(५) अनिवार्यता को अधिक कड़ाई से लागू करना चाहिये।

(६) अनिवार्य क्षेत्रों के अतिरिक्त विद्यार्थियों से फीस लेना चाहिये।

(७) बालिकाओं के स्कूल अधिक स्वच्छ तथा विस्तृत बनाये जावें।

(८) अध्यापकों की स्त्रियों को अध्यापिकायें बनने के लिये प्रोत्साहित किया जावे। अध्यापिकाओं की दीक्षा में सिलाई, कटाई आदि गृह-विज्ञान भी सम्मिलित कर लिये जावें।

शिक्षा विभाग ने इन सिफारिशों को लागू किया, किन्तु ज़िला बोर्डों ने स्कूल बन्द करने वाली योजना उचितरूप से लागू न होने दी। प्रारम्भिक शिक्षा-संगठन की यह दशा थी जब १९३७ ई० में कांग्रेस मंत्रिमण्डल बना।

१९३७-४९—इस काल में वर्धा योजना बनी और उस पर हमारे प्रान्त में भी प्रयोग आरम्भ हुआ। बेसिक ट्रेनिंग केन्द्रों में अध्यापकों की नव दीक्षा (Refresher course)का प्रबन्ध हुआ। साथ ही नरेंद्र देव समिति ने प्रारम्भिक तथा माध्यमिक शिक्षा पर सिफारिशें प्रस्तुत कीं। युद्ध के कारण इस योजना पर १९४६ में कार्य आरम्भ हो

अधिक व्यय पर साक्षरता प्रदान करता है वह अपव्ययी स्कूल है। हर्टाग समिति के मत में साक्षरता चार वर्ष से कम की शिक्षा द्वारा संभव नहीं अतः है, सभी लोअर प्राइमरी अपव्ययी स्कूल हुये।

सका है। इसी काल में सार्जेंट रिपोर्ट भी प्रकाशित हुई और प्रान्तीय सरकार ने दस वर्षीय योजना द्वारा सार्वदेशिक प्रारंभिक शिक्षा का प्रबंध किया। इसे अब पांच ही वर्ष में लागू किया जावेगा। प्रारंभिक पाठशालाओं का पाठ्यक्रम छ: से घटाकर पांच वर्ष का कर दिया गया है।

युद्धोत्तर काल में प्रांतीय सरकार ने ज़िला बोर्डों की सहायता व्यय ६६% से ७५% बढ़ा दिया तथा विकास योजना सरकारी तौर से आरंभ की। १६४७ ई० में २३४० सरकारी प्रारंभिक स्कूल खुले, तथा इस वर्ष ४४०० स्कूल खोलने की योजना थी, किन्तु ४५७१ नये स्कूल खुले। चार ज़िलों पीलीभीत, आज़मगढ़, गाज़ीपुर, और जौनपुर में सार्व देशिक अनिवार्य शिक्षा का प्रबंध हो गया है। जुलाई १६४७ ई० से हमारे प्रांत के सभी पाठशालाओं का पाठ्यक्रम भी बेसिक हो गया है। सरकार नर्सरी शिक्षा पर भी ध्यान दे रही है, बेसिक तथा माध्यमिक पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकों की व्यवस्था के लिये श्री रामेश्वरसहाय सिंह एम० एल० ए० विशेष अफसर नियत हुये हैं। यह कार्य भी बड़ी तेज़ी से हो रहा है। पाठ्यक्रम को नरेन्द्रदेव समिति तथा आज की परिस्थितियों के अनुकूल बनाया जा रहा है।

इस नव विकास में दीक्षित अध्यापकों की कमी पड़ी। अतः हमारे प्रांत में चल शिक्षण दल (Mobile Training squad) योजना बनी। इस योजना के द्वारा अध्यापकों को गांव की सांस्कृतिक उन्नति, विनोद और शिक्षा प्रचार के लिये भी योग्य तथा उत्तरदायी बनाया जा रहा है। केन्द्रीय सरकार के आदेशानुसार ग्राम्य स्कूलों को जन संपर्क, संस्कृति और सामाजिक जीवन का केन्द्र बनाया जा रहा है।

आवश्यकता—इस नवीन योजना को सफल बनाने के लिये कुछ अपेक्षायें स्पष्ट हैं. सर्व प्रथम नये पाठ्यक्रम को अध्यापकों की क्षमता के अनुकूल बनाने के लिये उसमें कुछ हेर फेर हो। साथ ही अध्यापकों के प्रयोग के लि भी पुस्तकें तैयार कराई जावें। पाठशालाओं को

जीवन, क्रियाशीलता और रोचकता का केन्द्र बनाने के लिये शिक्षकों की आर्थिक कठिनाइयों को सुलझाकर उनकी सामाजिक स्थिति में सुधार होना चाहिये, जिससे उनका प्रभाव गांव के नैतिक तथा सामाजिक जीवन पर पड़ सके। शिक्षा प्रसार के लिये अनिवार्यता के नियम का दृढ़ता से पालन किया जावे। बच्चों को रोकने वाले अभिभावकों को दण्ड देने का अधिकार शिक्षा विभागीय अफसरों को दिया जाना चाहिये।

प्रौढ़ शिक्षा—शिक्षा प्रसार और गांवों में सांस्कृतिक तथा सामाजिक उन्नति का दूसरा पहलू प्रौढ़ शिक्षा है। इसका आरंभ १९२७ में हुआ था। अभी तक इसके दो मुख्य उद्देश्य हैं। साक्षरता बढ़ाना और साक्षरता बनाये रखना। इसके लिये १९३७ में एक शिक्षा प्रसार अफसर नियत है। आजकल हमारे प्रांत में १३४२ सरकारी ४०० गैर सरकारी स्कूल पुरुष प्रौढ़ों के लिये और ६२ स्त्रियों के लिये हैं। इनके सिवा कई संस्थायें और व्यक्ति निजी तौर से भी वयस्कों में साक्षरता प्रसार कर रहे हैं।

साक्षरता बनाये रखने के लिये प्रयाग में एक केन्द्रीय पुस्तकालय है जिसके अंतर्गत प्रांत में १०४० सरकारी और २७९ गैर सरकारी पुस्तकालय हैं। चालीस पुस्तकालय केवल महिलाओं के लिये हैं।

आवश्यकता—इस दिशा में उन्नति के लिये शिक्षकों की विशेष दीक्षा का प्रबंध होना चाहिये। प्रौढ़ शिक्षा का उद्देश्य साक्षरता से आगे बढ़ कर व्यक्ति की आजीवन और समाजोपयोगी सांस्कृतिक आर्थिक तथा राजनैतिक शिक्षा हो जाना चाहिये। गांवों में यह सब विनोदों द्वारा ही संभव है। अतः ग्राम्य स्कूलों में रेडियो, ग्रामोफोन प्रोजेक्टर (चित्र प्रसारक यंत्र) आदि की व्यवस्था हो और नाटक खेलकूद आदि का भी प्रयोग किया जाये। विश्वविद्यालयों तथा माध्यमिक और व्यावसायिक विद्यालयों को भी इसमें सहयोग देना चाहिये।

माध्यमिक शिक्षा—इस शिक्षा का संगठन भी अन्य प्रांतों से भिन्न रहा। सैडलर कमीशन की सिफारिशों के अनुसार इंटरमीजियट कालेज अलग करने की योजना इसी प्रांत में पूर्णतया सफल हुई। माध्यमिक शिक्षा के पुनः संगठन के लिये नरेंद्र देव समिति बनी। उसकी सिफारिशों और केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार समिति की युद्धोत्तर विकास योजना पर परिवर्तित परिस्थितियों में पुनः विचार (१६४६ में) हुआ जिसके फलस्वरूप एक नई योजना लागू हुई है।

जूनियर हाई स्कूल—इस योजना के अंतर्गत सभी बालक बालिकाओं के हिन्दुस्तानी तथा एँग्लोहिन्दुस्तानी मिडिल स्कूल जूनियर हाई स्कूल कहलावेंगे। इनका पाठ्यक्रम तीन वर्ष का होगा और जूनियर बेसिक स्कूलों के विद्यार्थी प्रवेश पावेंगे। इन स्कूलों के साथ या तो प्रारंभिक कक्षायें होंगी अथवा उच्च माध्यमिक (Higher Secondary) दोनों नहीं। इस पाठ्यक्रम के बाद एक परीक्षा होगी जो वैकल्पिक होगी। इन कक्षाओं में अंग्रेज़ी वैकल्पिक विषय होगा।

उच्च माध्यमिक—इसके बाद उच्च माध्यमिक पाठ्यक्रम चार वर्ष का होगा (नवीं कक्षा से बारहवीं तक) इस पाठ्यक्रम में चार प्रकार होंगे। साहित्यिक, रचनात्मक, वैज्ञानिक तथा कलात्मक। अधिकांश माध्यमिक महाविद्यालय (Higher Secondary Schools) बहु-मुखी (Multilateral) होंगे किन्तु एक मुखी तथा द्विमुखी शिक्षालयों में भी रहेंगे। इनमें अंग्रेज़ी विषय साहित्यिक तथा वैज्ञानिक पाठ्यक्रम ही के साथ अनिवार्य होगा। इन स्कूलों में अनिवार्य सैनिक शिक्षा का भी प्रबन्ध होगा। अर्धसामयिक विद्यार्थियों के लिये भी प्रबन्ध होगा। रचानात्मक समूह में लड़कियों के लिये गृहकला का विशेष स्थान होगा। रचनात्मक विषयों में दीक्षा के लिये प्रयाग में दो महाविद्यालय रचनात्मक महाविद्यालय और गृहविज्ञान महाविद्यालय खुले हैं।

इस पुनः संगठन का प्रभाव यह पड़ा है कि सभी हाईस्कूल तथा

कुछ मिडिल स्कूल माध्यमिक महाविद्यालय बन गये हैं। इंटरमीजिएट कालेजों का भी रूप परिवर्तित हो गया है। इनमें दसवीं कक्षा के बाद की परीक्षा कुछ समय तक वैकल्पिक रहेगी। बारहवीं कक्षा के बाद की उच्च माध्यमिक परीक्षा (Higher Secondary Examination) सभी के लिये अनिवार्य होगी।

१९४६ में शिक्षा की इस दिशा में प्रगति का अंदाजा नये विद्यालयों की स्वकृति और दीक्षांत विद्यालयों की वृद्धि से लग सकता है। १९४६-४७ ई० में पचास राजकीय बालिका मिडिल स्कूल खुले तथा बालकों के १०६ हाई स्कूलों और ७२ कालेजों को स्वीकृति मिली। १९४७-४८ ई० में १०२ हाई स्कूलों और ७३ कालेजों को स्वीकृति मिली। इन्हीं दो वर्षों में सरकारी कालेजों की संख्या भी आठ से बारह हो गई। चारों नये कालेज पहाड़ी प्रदेशों में खुले।

१९४८-४९ ई० में सभी ४१२ गैरसरकारी बालकों के हाईस्कूल और कालेज तथा १४७ बालकों के मिडिल स्कूल माध्यमिक महाविद्यालय बन गये इनमें से ५५४ में साहित्यिक, २६८ में रचनात्मक, ११८ में वैज्ञानिक तथा ६१ में कलात्मक विषयों के पढ़ाने का प्रबंध है। बालिकाओं के लिये भी ७५ गैरसरकारी उच्च माध्यमिक महाविद्यालय हो गये इनमें सभी में साहित्यिक तथा छः में वैज्ञानिक और १८ में रचनात्मक तथा कलात्मक विषयों के पढ़ाने का प्रबन्ध है।

सरकारी बालकों के बारह कालेज, अड़तालीस हाई स्कूल और दो मिडिल स्कूल माध्यमिक महाविद्यालय बन गये। उनमें ४४ में वैज्ञानिक, २८ में रचनात्मक, १० में कलात्मक तथा सभी में साहित्यिक पाठ्यक्रम का प्रबन्ध है।

लड़कियों के पचीस हाई स्कूल तथा बरेली का एक कालेज भी माध्यमिक महाविद्यालय हो गये। उनमें सभी में साहित्यिक एक में वैज्ञानिक और आठ में कलात्मक पाठ्यक्रम है। इस प्रकार अब कुली

७२२ माध्यमिक महाविद्यालय हैं। परीक्षार्थियों की संख्या में भी बड़ी वृद्धि हुई है। १९४५ ई० में २४६६२ परीक्षार्थी हाई स्कूल तथा १०३०५ परीक्षार्थी इंटरमीजिएट परीक्षा में बैठे थे किन्तु १९४८ में उनकी संख्या क्रमशः ४०४३६ और १६६०३ थी, अर्थात् क्रमशः ६४% और ६१% की वृद्धि हुई।

अध्यापकों की दीक्षा और स्थिति में सुधार—शिक्षा का प्रसार और उसके उद्देश्य की प्राप्ति कुशल तथा सन्तुष्ट अध्यापकों पर निर्भर है। इसके लिये समुचित दीक्षा के प्रबन्ध के साथ ही उनकी आर्थिक स्थिति में भी सुधार आवश्यक है। १९४६-४९ काल में अध्यापकों का वेतन बढ़ाने और उसे वेतन समिति और केन्द्रीय सलाहकार समिति की सिफारिशों के अनुसार लाने का प्रयास हो रहा है। माध्यमिक शिक्षालयों में यह सुधार लागू हो गये किन्तु गांवों के अध्यापकों का बुनियादी वेतन अभी २५) ही हुआ है। अध्यापकों की दीक्षा के लिये १९४५ तक नौ नार्मल स्कूल (बालकों के लिये) और चार लड़कियों के लिये थे। प्राइमरी अध्यापकों की दीक्षा के हेतु सेंट्रल ट्रेनिंग स्कूल भी थे।

ग्रेजुएटों की दीक्षा के लिये दो सरकारी कालेज थे। बनारस तथा अलीगढ़ में भी ट्रेनिंग कालेज थे। लखनऊ विश्वविद्यालय में स्त्री ग्रैजुएटों की दीक्षा का प्रबन्ध था। अग्रेजुएट अध्यापकों की दीक्षा के लिये केवल तीन कालेज थे दो सरकारी और एक ग़ैरसरकारी - लखनऊ क्रिश्चियन ट्रेनिंग कालेज जिससे संबंधित स्वास्थ्य शिक्षा का कालेज (College of Physical Education) भी था, स्त्रियों की दीक्षा के लिये कई कक्षायें भी थीं।

१९४६-४७ से इस दिशा में भी विकास आरंभ हुआ। उस वर्ष दो नये सी० टी० ट्रेनिंग कालेज लड़कों के लिये और दो महिलाओं के लिये खुले। १९४७-४८ ई० में ग़ैर सरकारी संस्थाओं को ट्रेनिंग

कक्षायें खोलने का प्रोत्साहन मिला और फलस्वरूप कानपुर, लखनऊ प्रयाग, फतेहपुर, आगरा (स्त्रियों के लिये) और गोरखपुर में ग़ैर सरकारी सी० टी० ट्रेनिंग कालेज खुले और इस प्रकार इनकी कुल संख्या पन्द्रह हो गई। आगरा बलवन्त राजपूत कालेज, दयालबाग़ (महिलाओं के लिये) और लखनऊ विश्वविद्यालय में ग्रेजुएटों की दीक्षा का प्रबन्ध हुआ। प्रयाग में मनोविज्ञानशाला (Psychological Bureau) भी स्थापित हुई। १६४८ में तीन नये ग़ैर सरकारी सी० टी० कालेज और चार एल० टी० कालेज स्वीकृत हुये तथा चार सरकारी सी० टी० कालेज एल० टी० कालेज हो गये। प्रयाग का राजकीय ट्रेनिंग कालेज पेडागाजिकल इंस्टीट्यूट बना दिया गया। प्रयाग में दो और ट्रेनिंग कालेज खुले। एक रचनात्मक महाविद्यालय जो रचनात्मक विषयों भाषा और सामाजिक विज्ञान पढ़ाने वाले ग्रेजुएट अध्यापकों को दीक्षित करता है और दूसरा गृह विज्ञान कालेज जो ग्रेजुएट स्त्रियों को दीक्षित करता है। रचनात्मक विषयों में कताई-बुनाई कुम्भकारकला (Ceramics) पुस्तककला, कृषिकार्य, काष्ठकला और औद्योगिक रसायन हैं। गृह विज्ञान में संगीत, कला, का, पाठविज्ञान, धुलाई, सिलाई, मातृकौशल, बाग़बानी, फलों का रक्षा, गृहचिकित्सा आदि विषय हैं।

प्रयाग में स्वास्थ्य शिक्षा की दीक्षा के लिये शारीरिक शिक्षा महाविद्यालय (College of Physical Education) १६४५ से चल रहा है। इस वर्ष जूनियर हाई स्कूलों के लिये आठ नार्मल स्कूल जूनियर ट्रेनिंग कालेज के रूप में परिवर्तित हो कर हाई स्कूल पास विद्यार्थियों को एक वर्षीय जे० टी० सी० परीक्षा के लिये तैयार कर रहे हैं।

लखनऊ और प्रयाग विश्वविद्यालयों के पोस्ट ग्रेजुएट शिक्षा विभागों के अतिरिक्त माध्यमिक शिक्षकों के लिये ग्रेजुएटों को दीक्षा का प्रबन्ध चौदह अन्य कालेजों में भी है, जिनमें दो केवल महिलाओं

के लिये हैं। इनके सिवा तीन अन्य कालेज प्रयाग के रचनात्मक, गृहविज्ञान और शारीरिक शिक्षा के लिये हैं, जिनमें एक स्त्रियों के लिये है।

सी० टी० कालेजों की संख्या तेरह है। और आठ जे० टी० सी० स्कूल हैं।

हिन्दुस्तानी प्रारम्भिक दीक्षा के लिये नार्मल स्कूलों में भी वृद्धि हुई है। बालकों के नार्मल स्कूल को ६ से बढ़ कर उन्तालीस कर दिये गए, लड़कियों के लिए भी ११ सरकारी तथा गैरसरकारी नार्मल स्कूल हैं। आठ बालकों के नार्मल स्कूल जे० टी० सी० हो गए हैं, अब धीरे-धीरे सभी ज़िलों में एक-एक नार्मल स्कूल खोल दिया जावेगा। सभी सेन्ट्रल ट्रेनिंग स्कूल और बेसिक शिक्षा केन्द्र नार्मल स्कूल बन चुके हैं।

चल शिक्षण दल—इस संधि काल में अध्यापकों की कमी और दीक्षा को पूरा करने के लिए शिक्षा मंत्री ने एक नया प्रयोग किया है जिसका प्रभाव अत्यन्त अधिक होगा। इन छब्बीस चल शिक्षण दलों की नियुक्ति सरकारी आरम्भिक पाठशालाओं के साथ हुई। प्रत्येक शिक्षण दल में एक ग्रेजुएट अध्यापक और तीन मिडिल पास अध्यापक रहते हैं। ये भी नार्मल स्कूलों के समान हैं, क्योंकि इनकी भी दो वर्षीय दीक्षा द्वारा अध्यापकों को नार्मल पास अध्यापकों की कोटि का स्वीकार कर लिया जावेगा।

चल शिक्षण दल शिक्षासिद्धांत, शिक्षा पद्धति पाठन विधि आदि के साथ ही अध्यापकों को नये दायित्व के योग्य बनाता है क्योंकि अब स्कूल सामूहिक जीवन, मनोविनोद, जन संपर्क और सांस्कृतिक पुनरुत्थान का केन्द्र बनेगा। अतः इन अध्यापकों की दीक्षा के साथ ही इन सभी बातों का भी आयोजन होता है। भाषण, रेडियो, ग्रामोफोन, नाटक, नृत्य, उत्सव, त्योहार आदि सभी से लाभ उठाकर

ग्रामीणों को नवीन शिक्षा की ओर आकृष्ट किया जाता है। प्रत्येक चल शिक्षण दल को जनसंपर्क का कार्य करने के लिये शीघ्र ही प्रोजेक्टर (चित्र प्रसारक यंत्र) लाउड स्पीकर, रेडियो आदि से सुसज्जित मोटर (Publicity Van) भी दिया जावेगा। इससे प्रौढ़ शिक्षा के यथार्थ उद्देश्य को पूरा करने में भी सहायता मिलेगी।

उच्च-शिक्षा—१९२६ में आगरा विश्वविद्यालय की स्थापना होने से प्रयाग विश्वविद्यालय भी केवल शिक्षण का केन्द्र रह गया। प्रांत में पांच विश्वविद्यालयों के सिवा कई विश्वविद्यालय कोटि की भी संस्थायें हैं इनमें प्रमुख संस्कृत कालेज बनारस, काशी विद्यापीठ, प्रयाग महिला विद्यापीठ लखनऊ, संगीत विद्यापीठ प्रयाग हिन्दी विश्वविद्यालय, देवबन्द और आजमगढ़ के दारुल उलूम तथा कांगड़ी और वृन्दावन के गुरुकुल हैं। कुछ व्यावसायिक शिक्षा के केन्द्र भी इसी कोटि के हैं, यथा रुड़की इंजीनियरिंग कालेज, वन्य शिक्षा केंन्द्र देहरादून (Forest Institute and College) हार्कोर्ट बटलर टेक्नालाजिकल इंस्टीट्यूट, कानपुर, मनोविज्ञानशाला प्रयाग तथा पेडागाजिकल रिसर्च इंस्टीट्यूट प्रयाग। ग्रेजुएट अध्यापकों की दीक्षा के विभागीय कालेज भी इसी के अंतर्गत आ जाते हैं।

आगरा विश्वविद्यालय के अंतर्गत हमारे प्रांत में नौ विज्ञान, कला क़ानून, कामर्स आदि विभागों वाले कालेज हैं। इनके सिवा तीन कृषि कालेज कानपुर, प्रयाग तथा लखावटी में हैं। आगरे के बलवन्त राजपूत कालेज में भी कृषि विभाग है। आगरा मेडिकल कालेज और दयाल बाग़ बी. टी. कालेज भी इसी के अंतर्गत हैं।

विश्वविद्यालय अनुदान समिति संयुक्तप्रान्त—आजकल इन सभी संस्थाओं को सफल और देशोपयोगी शिक्षा देने के लिये प्रोत्साहित किया जा रहा है। उनके कार्य क्षेत्र का विकास भी हो रहा है। विभिन्न पदों के लिये उपयुक्त व्यक्ति तैयार करना इन्हीं विद्यालयों

का कार्य है इसके साथ ही उन्हें व्यक्तियों के विकास और सांस्कृतिक उन्नति तथा एकता का भी प्रयास करना है। उन्हें खोज और ज्ञान के क्षेत्र को भी विकसित करना है। इन सब बातों के लिये रुपया चाहिये। आर्थिक सहायता या तो सरकार से मिले अथवा व्यक्तियों और संस्थाओं से। सरकार का भाग ही अधिक रहता है, अतः सरकार ने इस विषय पर परामर्श के लिये डाक्टर हृदयनाथ कुंजरू के नेतृत्व में विश्वविद्यालय अनुदान समिति नियत की है, वैज्ञानिक अनुसंधान के लिये अनुदानों के सम्बन्ध में परामर्श देने के लिये राष्ट्रीय वैज्ञानिक प्रयोगशाला (National physical Laboratory of India) डाक्टर डी० एस० कृष्णन् की अध्यक्षता में नियत हुई है। इन्हीं के परामर्श से सभी उच्चकोटि की संस्थाओं का विकास हो रहा है। विश्वविद्यालयों और डिग्री कालेजों को पुस्तकालय, प्रयोगशाला तथा अन्य उपकरणों के लिये उदार सहायता दी जा रही है, उन्हें इमारतें बनवाने को १३% ब्याज पर ऋण भी दिया जावेगा जो चालीस किस्तों में अदा होगा। विश्वविद्यालयों की शिक्षा निर्धनों की पहुँच लाने के लिये अब १०% निःशुल्क और १५% अर्ध शुल्क विद्यार्थी रहेंगे। विश्वविद्यालय कमीशन के समक्ष लखनऊ के विद्यार्थियों का यह सुझाव भी बड़ा हितकर होगा कि निर्धन विद्यार्थियों को विश्वविद्यालय अथवा सरकार से ऋण मिलने की व्यवस्था हो जावे। फलस्वरूप पिछले दस वर्षों में उच्चशिक्षा के विद्यार्थियों की संख्या द्विगुणित होकर २५०० हो गई है।

सरकार ने संस्कृत की शिक्षा को गति देने के लिये बनारस संस्कृत कालेज को विश्वविद्यालय बनाने की इच्छा प्रकट की है। आगरे में भी ऐसे ही विश्वविद्यालय की योजना बन रही है। सरकार ने रुड़की कालेज को भी विश्वविद्यालय बना दिया है, क्योंकि प्रांत में इंजीनियरों की आवश्यकता निरंतर बढ़ रही है।

इन उच्चशिक्षा केंद्रों को राष्ट्र की आवश्यकताओं और परंपराओं के अनुकूल बनाने में अथक परिश्रम की आवश्यकता है। अनुसंधानकर्ताओं की यहां विशेष कमी है। विश्वविद्यालयों में यू० टी० सी० को नेशनल केडेट कोर में परिवर्तित करने और उसे बढ़ाने में सरकार ने सही कदम उठाया है। विश्वविद्यालयों में भी सैनिक विज्ञान (Militeren Sciene) विषय खोल दिया है। इसी प्रकार कई परिस्थितियों के अनुकूल स्वायत शासन और विदेशी कूटनीति (Foreign Diplomaey) आदि जैसे महत्त्वपूर्ण विषयों की शिक्षा का भी प्रबंध हो गया है।

टेक्निकल और व्यावसायिक शिक्षा—प्रत्येक देश में व्यावसायिक शिक्षा का बड़ा महत्व है। इस दिशा में हमें पहिले ही जान लेना चाहिये कि बेसिक और माध्यमिक शिक्षा का पुनः संगठन इसके अनुकूल ही हुआ है। माध्यमिक विद्यालयों में दो प्रकार का पाठ्यक्रम विशुद्ध व्यावसायिक है।

हमारे प्रांत में कांच, टेक्सटाइल, सीमेंट, कुंभकारकला (Ceramies) कागज़, शकर, चपरा, चमड़ा, बिजली, रसायन स्पिरिट, शराब और कृषि आदि के मुख्य व्यवसाय हैं। इनमें कुशल व्यक्तियों को तैयार करना तथा कुशल वकील, डाक्टर, क्लर्क, इंजीनियर आदि प्रस्तुत करना ही व्यावसायिक शिक्षालयों का कार्य है।

इंजीनियरिंग—इंजीनियरिंग शिक्षा का प्रबंध रुड़की और बनारस विश्वविद्यालयों में है। हमारे प्रांत की सिंचाई और घरेलू उद्योग धन्धों के लिये हाइड्रो-इलेक्ट्रिक व्यवस्था महत्वपूर्ण है। सड़कों, भवनों और रेलों के लिये भी इंजीनियरों की आवश्यकता है। अस्तु रुड़की में विश्वविद्यालय की स्थापना और वहां की शिक्षा में विकास सही कदम है। इस दिशा में छोटे कामों के लिये ओवरसियर तैयार करने के लिये केवल दो ग़ैरसरकारी स्कूल लखनऊ में हैं।

सरकार को इन्हें अपने हाथ में ले लेना चाहिये और इनका विकास करना तथा अन्य केंद्रों में भी सिविल और मेकैनिकल इंजीनियरिंग के स्कूल खोलना चाहिये।

चिकित्सा—कुशल डाक्टर तैयार करने के लिये दो मेडिकल कालेज लखनऊ और आगरा में हैं। ये आवश्यकता से बहुत कम डाक्टर तैयार करते हैं, अतः लखनऊ मेडिकल कालेज को बढ़ाकर बलराम पुर अस्पताल में भी शिक्षण का कार्य हो रहा है। एक मेडिकल कालेज कानपुर में स्थापित होना चाहिये। बनारस विश्वविद्यालय में एक आयुर्वेदिक कालेज है, जिसमें शल्य की शिक्षा भी दी जाती है, इस प्रकार के कालेजों का विकास शायद हमारे देश के लिये अधिक उपयोगी होगा क्योंकि आयुर्वेदिक दवा पर लोगों का विश्वास अधिक है, और वह सस्ती भी होती है। अलीगढ़ विश्वविद्यालय में यूनानी चिकित्सा का कालेज है। यू. पी. बोर्ड आफ मेडिसिन भी परीक्षायें लेता है और उसमें संबंधित तीन यूनानी कालेज और छः आयुर्वेदिक कालेज हैं। इन कालेजों में भी शल्य सिखाने का उचित प्रबन्ध होना चाहिये। होम्योपैथिक तथा बायोकेमिक चिकित्सा को भी स्वीकृति मिल जाना चाहिये।

कामर्स—कामर्स की उच्च शिक्षा का प्रबन्ध पांच डिग्री कालेजों और प्रयाग, काशी तथा लखनऊ विश्वविद्यालयों में है। यह देश की आवश्यकताओं के लिये पर्याप्त है। निम्नकोटि की कामर्स शिक्षा का प्रबन्ध माध्यमिक विद्यालयों तथा कुछ स्वतंत्र संस्थाओं में भी है। इन स्वतंत्र संस्थाओं के उचित संगठन और निरीक्षण की आवश्यकता है।

क़ानून—यह विभाग सभी विश्वविद्यालयों में है, अतः चार विश्वविद्यालयों और पांच डिग्री कालेजों में इसकी शिक्षा का प्रबन्ध है। यह शिक्षा प्रांत की आवश्यकताओं से अधिक हैं।

कृषि—इस देश के लिये कृषि का महत्व बताने की कोई आवश्यकता

नहीं है। आज हमारा कृषि प्रधान प्रांत भी बाहरी अनाज पर आश्रित है! यह लज्जा की बात है। कृषि संबन्धी अनुसंधानों को किसानों तक पहुँचाना बड़ा ही आवश्यक है। इसके लिये चार डिग्री कालेजों और कई माध्यमिक महाविद्यालयों में प्रबन्ध है। कृषि विषय अब ठीक ही प्रारंभिक तथा माध्यमिक शिक्षालयों में पढ़ाया जाता है। इसे अधिकाधिक माध्यमिक शिक्षालयों में पढ़ाने का प्रबन्ध होना चाहिये। डिग्री कालेजों मं अनुसंधान पर अधिक ध्यान देना चाहिये। और उनकी संख्या भी बढ़ाना चाहिये।

टेक्निकल शिक्षा—उच्च टेक्निकल शिक्षा का प्रबन्ध दो स्थानों पर है। हार्कोर्ट बटलर टेक्नालाजिकल इंस्टीट्यूट और बनारस का खनिज तथा टेक्नालाजी (Mining & Metallurgy) विभाग। अब माध्यमिक तथा बेसिक स्कूलों में भी कुछ टेक्निकल शिक्षा का प्रबन्ध हो रहा है। इनके सिवा कई एक निम्नकोटि की संस्थायें उपयुक्त स्थानों में हैं। कानपुर में एक टेक्सटाइल इंस्टीट्यूट है और ६ बुनाई के स्कूल (Weaving) बनारस, मऊ खैराबाद, अमरोहा, मुजफ्फरनगर तथा बुलंद शहर मं हैं। कलात्मक विषयों और क्राफ्टों के लिये श्रीनगर में पालीटेक्निक तथा लखनऊ में आर्ट क्राफ्ट स्कूल हैं। चमड़े के लिये चार इंस्टीट्यूट कानपुर में और दो फतेहपुर तथा मेरठ में हैं। दयालबाग़ में टेक्निकल कालेज तथा लेदर वर्किंग स्कूल है। बनारस तथा अलीगढ़ में पीतल तथा धातुओं की शिक्षा के स्कूल हैं। लखनऊ, बनारस तथा गोरखपुर में टेक्निकल स्कूल हैं। काष्ठकला के लिये पाँच स्कूल बरेली, प्रयाग, फैजाबाद, नैनीताल तथा देहरादून में हैं। औद्योगिक रसायन की उच्च कोटि की शिक्षा का थोड़ा प्रबन्ध बनारस में छोड़कर अन्यत्र नहीं है। टेक्सटाइल इंजीनियरिंग की भी उच्चतम शिक्षा का कोई प्रबन्ध नहीं है। यही हाल चमड़े के बारे में भी है। अतः कानपुर में एक टेक्नालाजी का विश्वविद्यालय स्थापित होना

चाहिये जिसमें प्रान्तीय व्यवसायों से सम्बन्धित उच्च कोटि की टेक्नालाजी की शिक्षा का प्रबन्ध हो।

अन्य बातें—हमारे प्रान्त में स्वास्थ्य शिक्षा और समाज सेवा का उचित ही विकास हो रहा है। समाज सेवा की प्रायोगिक शिक्षा समाज सेवा केडेटकोर (Social Service Cadet Corps) द्वारा हो रही है। प्रान्त में एक स्वास्थ्य-शिक्षा-संचालक भी है। स्वास्थ्य उत्कर्ष समिति (Council of Physical Culture) भी स्वास्थ्य केन्द्रों द्वारा नागरिकों और विद्यार्थियों के स्वास्थ्य को ठीक करने का प्रयास कर रही है। लखनऊ में सैनिक शिक्षा संचालक का भी कार्यालय है।

मनोविज्ञानशाला मनोवृत्ति, रुझान, मस्तिष्क तथा अर्जित ज्ञान के माप दण्ड स्थिर करके नवीन मनोवैज्ञानिक परीक्षाओं की योजना कर रही है। इनके द्वारा विद्यार्थियों को पाठ्य विषय चुनने तथा व्यवसायों में जाने की सुविधा होगी। नरेन्द्रदेव समिति ने इसकी स्थापना की सिफारिश की थी।

पेडागाजिकल इंस्टीट्यूट में विभिन्न विषयों के पाठ्यक्रम और पाठन विधियों पर प्रयोग हो रहे हैं। यह दोनों संस्थायें हमारे प्रान्त की शिक्षा को मनोवैज्ञानिक आधारों पर स्थापित करने में सहायक होंगी।

निरीक्षण और संगठन में भी कुछ परिवर्तन हुये हैं। अब प्रत्येक ज़िले में एक इंस्पेक्टर रहेगा। प्रान्तों को पांच क्षेत्रों में बांटकर एक एक उप संचालक (Deputy Director) के अधीन कर दिया गया है।

सारांश

स्वायत्त शासन की स्थापना काल से विशेषकर हमारे प्रान्त की शिक्षा की गति बढ़ गयी है और वह अब प्रान्तीय आवश्यकताओं के अनुरूप होती जा रही है।

प्रारम्भिक शिक्षा को अधिक लोकप्रिय बनाने के प्रयास असफल होने के बाद अनिवार्य शिक्षा सम्बन्धी क़ानून बने। उसके बाद विभागीय जाँचें हुयीं और संपूर्ण शिक्षा को पुनः संगठित करने का प्रयास करते हुये प्रान्तीय सरकार ने नरेन्द्रदेव समिति नियत की। इसके और युद्धोत्तर विकास योजना के अनुसार हमारे प्रान्त में पांच वर्ष के भीतर अनिवार्य प्रारम्भिक शिक्षा योजना लागू हो जावेगी।

माध्यमिक शिक्षा में बहुमुखी माध्यमिक महाविद्यालयों से शिक्षा को नई गति और उपयोगिता मिली है।

अध्यापकों की दीक्षा का भी अब समुचित प्रबन्ध है।

उच्च शिक्षा तथा टेक्निकल शिक्षा का समान रूप से विकास हो रहा है। हमारे प्रान्त मे स्वास्थ्य शिक्षा, सैनिक शिक्षा, समाज सेवा, और गांवों की सामाजिक शिक्षा की ओर बड़े ठोस क़दम उठाये हैं।

प्रश्न

१. बालशिक्षण दल योजना और उसके लाभों का वर्णन कीजिए।

२. प्रान्तीय प्रारम्भिक शिक्षा विकास की मुख्य घटनाओं का वर्णन कीजिए। वर्तमान संगठन की आलोचना कीजिए।

३. प्रान्तीय व्यावसायिक शिक्षा का संक्षिप्त वर्णन करते हुये उसकी आवश्यकताओं का वर्णन कीजिये।

परिशिष्ट (क)

स्त्री शिक्षा

प्रस्तावना—प्राचीन आर्य अथवा हिन्दू संस्कृति में स्त्रियों का बड़ा महत्व था। वे हर दिशा में पुरुषों की समकक्ष थीं। सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, आध्यात्मिक किसी भी दृष्टिकोण से उनको पुरुषों से कम सुविधायें प्राप्त न थीं। उनके तथा पुरुषों के संस्कार समान थे। कालान्तर में क्रमशः उनके समान मंच की ईंटें खिसकने लगीं। स्मृतियों ने उनके लिये विवाह उपनयन के समान, पतिसेवा आश्रमों की शिक्षा के समान और गृहकार्य अग्निहोत्र तथा सन्ध्यावादन के समान उपयोगी बताये *। शास्त्रकर्ताओं ने पति के धार्मिक कृत्यों का अर्धभाग उनके लिये सुरक्षित कर दिया। इस प्रकार फुसला कर फिर उनकी स्वतन्त्रता समाप्त कर दी गई और उन्हें पिता, पति तथा पुत्रों के सरक्षण में क्रमशः बचपन, युवावस्था तथा बुढ़ापा काटने को बाध्य किया गया। पति के सुख के लिये उससे व्यक्तित्व, शिक्षा, ज्ञान सभी का त्याग कराया और पति को ही उसकी गति माना, पति के मरने पर पुरुष की ईर्ष्यामूलक शिक्षाओं ने उसे जल भरने को उकसाया। धीरे-धीरे स्त्री पुरुष की अर्द्धांगिनी उसकी परछाई, चलसम्पत्ति तथा सुख का साधन मात्र रह गई। यज्ञों में भाग लेने वाली पत्नी दासी हो गई। मध्यकाल में उसे साधु सत्संग करने पर विषपान का दण्ड दिया गया। तथा उसे शूद्र, मूर्ख और ढोल की उपमा से लांछित किया गया। वैदिक मंत्रों की द्रष्टाओं की संतति का यह हाल उन्नीसवीं शताब्दी तक रहा। बीसवीं शताब्दी की स्वतन्त्रता की लहर में लोगों की

---

* Manuquated by Vakil. Education in India.

आँखें खुलीं कि तेरहवीं शताब्दी से अनवरत दुर्गति का कारण उनका निजी स्वार्थ था, जिसके वशीभूत होकर उन्होंने समाज के अधिकांश भाग स्त्री तथा शूद्रों को सामाजिक हितों के साधन के लिये निरर्थक कर दिया। हरिजनों तथा स्त्रियों का उत्थान आरम्भ हुआ और थोड़े ही दिनों में भारतीय नारियों में कुछ ने स्पृहणीय उन्नति की। शिक्षा समाज सुधार, राजनीति, साहित्य सभी दिशाओं में उनकी प्रतिभा चमकने लगी। इस चक्राकार उन्नति तथा अवनति के आवर्तन की समीक्षा प्रस्तुत विषय है।

वैदिक युग—ऋग्वेद तथा अन्य वेदों में प्रायः २५ ऋषिकाओं के नाम आये हैं। इनमें से कुछ वैदिक मन्त्रों की दृष्टा भी थीं। जिनके कुछ नाम हैं अपाला, घोषा, विश्ववारा, रोमशा, लोपमुद्रा, श्रद्धा-कामायनी आदि। इन्हें ब्रह्मवादिनी भी कहते थे। ब्रह्मचर्य पालन तथा शिक्षा समाप्ति के बाद वे विवाह करती थीं (ब्रह्मचर्येण विन्दते पतिम्)। उपनिषत्काल में भी यही दशा रही। ऐतरेय उपनिषद में उन्हें वेदान्त के शास्त्रार्थों में जाने का अधिकार मिला, जिसमें केवल उच्चतम ज्ञान वाले जा सकते थे। इस समय वे वैदिक शाखाओं का भी अध्ययन करती थीं क्योंकि पाणिनि ने 'कठी' का अर्थ कठ शाखा को अध्ययन करने वाली ब्रह्म चारिणी बताया है। कौषीत की उपनिषद् में एक बालिका घर से दूर उत्तर जा कर ज्ञानार्जन द्वारा वाक् (सरस्वती) की उपाधि से विभूषित हुई। पाणिनि के समय तक उपाध्यायी होती थीं जो स्वयं अध्यापन में रत स्त्रियाँ थीं *। अतः उपनिषत्काल तक स्त्रियां शिक्षा तथा धर्म-कृत्यों में पुरुषों की समकक्षी थीं, उनका उपनयन होता था तथा वे सावित्री मन्त्र अग्निहोत्र की अधिकारिणी थीं।

या तु स्वयमेव अध्यापिका—भट्टो जी दीक्षित, quoted by.

*Dr. R. K. Mookerji "Aucient Indian Education.

इस युग में शिक्षण विषयों की संख्या बढ़ गई। सूत्र ग्रन्थों का आविर्भाव हुआ तथा सूत्रकाल (८००–२०० ई० पूर्व) में विशेषज्ञता का युग आया। इस युग में उपनयन सार्वदेशिक बन गया, दूसरे शब्दों में वैदिक शिक्षा सार्वदेशिक हो गई, क्योंकि वैदिक ज्ञान की रक्षा के लिये यह आवश्यक था। इसके कारण शिल्पों की शिक्षा में बाधा पड़ने लगी। क्योंकि मनु, वशिष्ठ, विष्णु आदि सूत्रकारों ने संगीत तथा अन्य औद्योगिक शिल्पों की शिक्षा वैदिक शिक्षा की समाप्ति पर ही आरंभ करने की अनुमति दी। औद्योगिक शिल्पों को 'अर्थशास्त्र' भी कहते थे। इस विचित्र स्थिति से बाहर निकलने के लिये 'अर्थशास्त्र' को अथर्ववेद का उपवेद मान लिया गया तथा इसी प्रकार सभी शिल्पों का वेदों से संबंध स्थापित करके उनके ज्ञान को वैदिक ज्ञान के स्तर पर लाया गया तथा स्त्रियों और शूद्रों को प्रारंभिक वैदिक शिक्षा (साधारण यज्ञादि की शिक्षा) के बाद उसे बिना पूरा किये ही इन शिल्पों अथवा उपवेदों की शिक्षा का अधिकार दे दिया गया।* इस प्रकार पाठ्यक्रम की आवश्यकताओं तथा रुचियों की नियमों पर विजय हुई। स्त्रियों को अपनी रुचि तथा आवश्यकताओं के अनुसार वैदिक तथा शिल्पी शिक्षा में चयन का अधिकार प्राप्त हुआ। यहीं से स्त्रियों के समान पद का स्खलन आरंभ होता है, यद्यपि इस सुधार का उद्देश्य यह नहीं था।

स्मृतियों की रचना से पूर्व (२०० ई० पू० तक) स्त्रियों का वैदिक शिक्षा तथा यज्ञादि में समानाधिकार मान्य रहा। किन्तु धीरे धीरे अनार्य स्त्रियों ने आर्य गृहों में प्रवेश किया जिनकी वेदों में न रुचि थी, न योग्यता। आर्यायें भी शिल्पों की ओर ही अधिक आकृष्ट हुईं, तथा गृहकार्यों में दक्षता यज्ञों में दक्षता से कहीं अधिक मान्य हुई। नैष्ठिक ब्रह्मचर्य से बचाने के लिये विवाह की आयु कौटिल्य ने बालकों

---

* Dr. R. K. Mookerji Ancient Indian Education p. 170.

के लिये सोलह वर्ष कर दी, तथा विवाह के बाद भी शिक्षा की अनुमति दे दी। अतः स्त्रियों के विवाह की आयु और भी कम हो गई। उनका नाममात्र का उपनयन करके विवाह कर दिया जाने लगा और वे 'सद्यद्वाहा' कहलायीं, क्योंकि कुछ बालिकायें अब भी उपनयन के बाद अध्ययन के लिये जाती थीं, जो ब्रह्मवादिनी कहलाती थीं। पर इनकी संख्या घट रही थी महाकाव्यों में कुछ ही जटिला, तापसी, तपः सिद्धा ब्रह्मचारिणी तथा भिक्षुणियों का वर्णन मिलता है।

इस युग में स्त्रियों के लिये सैनिक शिक्षा, चिकित्सा तथा शिल्प अधिक आकर्षक हुये। मेगस्थनीज़ को थोड़े ही ब्राह्मण ऐसे दिखे जो अपनी स्त्रियों को अध्यात्म की शिक्षा देते थे। कौटिल्य ने वेद शिक्षकों के स्थान पर उन अध्यापकों का व्यय राजकोष पर डाला जो स्त्रियों को नृत्य, वाद्य, गायन, नाट्यकला, सुगन्धादि का निर्माण, पुरुषों को मोहना, उनके विचारों को समझना आदि सिखाते थे, क्योंकि ये स्त्रियाँ गुप्तचरों का कार्य करके राजदूषकों तथा विदेशी भेदियों की सूचना सिग्नलों से देती थीं, तथा उन्हें समाप्त भी कर देती थीं *। पतञ्जलि ने शाक्तिकियों का भी वर्णन किया है जो शस्त्र चलाने में कुशल होती थीं। * स्पष्टतया वे भी राजदरबारों में सेविका होती थीं, जिनका वर्णन मेगस्थनीज़ ने किया है।

वैदिक शिक्षा की कमी होने पर यज्ञों में पत्नी का कार्य पुरोहितों पर पड़ा और उसका भाग नाममात्र का रह गया। फिर भी कुछ स्त्रियाँ अध्यात्म में अब भी बहुत आगे थीं। इन्हीं में से कुछ बौद्ध धर्म की थेरियाँ बनीं जिन्होंने सेवा तथा व्रतों का ही पालन नहीं किया वरन् उपदेश भी दिये और उनके विचार थेरी गाथा की कविताओं में प्रकट हुये। भगवान् बुद्ध ने भी स्त्रियों तथा पुरुषों की शिक्षा पर समान ज़ोर दिया था।

*Dr. R. K. Mookerji Ancient Indian Education.

स्त्रियों का शिक्षाधिकार संकुचित—इस युग के अंत तक पूर्व मीमांसा (ईसा से प्रायः तीन सौ वर्ष पूर्व) में स्त्रियों के धार्मिक तथा शिक्षा संबन्धी अधिकारों की समाप्ति की चर्चा हुई। इसका कारण उनकी संपत्तिहीनता तथा विवाहों में उनके विक्रय बताये गये। जैमिनि ने उत्तरमीमांसा में इसका विवाद किया "स्त्रियों में पुरुषों के समान ही यज्ञों की इच्छा तथा योग्यता है। संपत्ति उनकी न होने पर भी उस पर उनका नियन्त्रण रहता है क्योंकि पुरुष द्वारा दान में उनकी सहमति आवश्यक है। दहेज़ स्त्री का मूल्य नहीं है, अन्यथा वह बालिका के सौन्दर्य तथा गुणों के अनुपात में घटता बढ़ता।" * पर जैमिनि की विचार धारा को बल न मिला और मनु ने स्त्री के उपनयन में वेदमंत्र निषिद्ध कर दिये। याज्ञवल्क्य ने स्त्रियों के लिये उपनयन रक्खा ही नहीं। इस प्रकार वैदिक तथा आध्यात्मिक शिक्षा से स्त्रियां गुप्त काल तक निकाल दी गई।

फिर भी कुछ विदुषी स्त्रियां बनी ही रहीं यथा मंडन मिश्र की स्त्री जो उनके तथा शंकर के शास्त्रार्थ में निर्णायिका थीं। आध्यात्मिक शिक्षा के अतिरिक्त अन्य शिल्पों तथा साहित्य की शिक्षा स्त्रियों में निरंतर बढ़ती रही और दसवीं शताब्दी तक उसमें कोई कमी न आई थी। इस युग में प्रभावती गुप्ता जैसी कुशल शासिका, वैदर्भी विजया की जैसी कवियित्री और रूसा जैसी वैद्या बनी रहीं। हल ने कई प्राकृत कवियत्रियों के नाम दिये हैं। ×

मध्यकाल—राजपूत काल की अशांति से स्त्री शिक्षा पर ध्यान कम होने लगा और मुस्लिम काल में इधर और भी कम ध्यान दिया जाने लगा, किन्तु ब्राह्मण तथा क्षत्रियों की कन्यायें साधारणतया शिक्षित होती थीं, यद्यपि शिल्प और संगीतों को हेय मानने के

---

*Mookerji–Aucient Indian Education.

ncient India.

कारण, अब उनकी शिक्षा नीति, गृहकार्य तथा साहित्य तक ही सीमिति थी। धीरे-धीरे यह शिक्षा प्राम्भिक ही रह गई।

मुसलमानों ने स्त्री शिक्षा को कभी अच्छा नहीं माना। मध्यकालीन मुल्ला स्त्री शिक्षा अनावश्यक तथा हानिप्रद मानते थे और कुछ तो इसे पाप समझते थे। अस्तु स्त्रियों को लिखने की शिक्षा देने के तो अब भी बहुतेरे मुसलमान विरोधी हैं, उनका विचार है कि इससे स्त्री की उच्छृंखलता को गति मिलती है। अस्तु उन्नीसवीं शताब्दी तक साधारण मुसलमान स्त्रियों की शिक्षा का प्रबन्ध नहीं के बराबर था। यत्र तत्र कोई अपनी बेटी को भले ही पढ़ा देता था। उन्हें केवल नमाज़ तथा प्रार्थनायें सिखा दी जाती थीं। इसके विपरीत मुस्लिम शासक तथा अमीर अपनी कन्याओं को अच्छी शिक्षा देते थे। रज़िया, चांदबीबी, जहानआरा, जेबुन्निसा आदि शिक्षित राजकुमारियां थीं जो शासन में कुशल थीं तथा साहित्य प्रेमी भी थीं। ज़ेबुन्निसा तो कुशल कवियित्री भी था। हरमों में राजकुमारियों की शिक्षा का प्रबन्ध था। लखनऊ तथा दिल्ली के अमीरों की स्त्रियांही प्रारंभिक उर्दू अथवा रेखते की ज्ञाता मानी जाती थीं।

मुसलमानों की इस प्रवृत्ति तथा पर्दाप्रथा का प्रभाव हिन्दुओं पर भी पड़ा तथा उनकी स्त्रियों को शिक्षा भी कम हो गई। दूसरे सात आठ वर्ष की कन्याओं का विवाह धार्मिक माना जाता था, तथा मुसलमान अमीरों की कामुक दृष्टि से युवतियों को बचाना भी आवश्यक था। इससे भी स्त्री शिक्षा संकुचित होती गई और उन्नीसवीं शताब्दी में अंग्रेज़ों को जहां पुरुषों में बीस, पचीस प्रतिशत शिक्षित मिले स्त्रियों की साक्षरता एक प्रतिशत ही जान पड़ी।*

ब्रिटिश शासन काल में लार्ड डलहौज़ी के समय सर्वप्रथम डाइरेक्टरों ने स्त्री शिक्षा पर भी ध्यान देने को कहा। उन्होंने १८५४

*Altekar, Education in Ancient India.

के सरकारी पत्र में गवनर जनरल की दशा स्त्री शिक्षा को सरकार का हार्दिक संरक्षण देने की नीति को न्यायोचित ठहराया। इस क्षेत्र में कार्य करने के लिये सरकारी प्रोत्साहन और उपाधियां देना भी स्वीकार हुआ।

इसी प्रकार १८८२ के शिक्षा कमीशन ने भी बालिकाओं की शिक्षा को विशेषरूप से प्रोत्साहित करने के लिये बोर्डों और प्रांतीय सरकारों को परामर्श दिया। उसके मत में सभी बालिका विद्यालयों को सहायता और अधिक उदार सहायता मिलना चाहिये। लड़कियों का पाठ्यक्रम सरल होना चाहिये। अध्यापिकायें नियुक्त करने का प्रयास होना चाहिये। लड़कियों को अधिकाधिक छात्र वृत्तियां मिलनी चाहिये और हाई स्कूल परीक्षा में एक लड़कियों के उपयुक्त विषय रखा जावे।

१९०४ के प्रस्ताव में भी लड़कियों की शिक्षा को विशेष प्रोत्साहन देने की बात थी क्योंकि अभी तक शिक्षा योग्य लड़कियों की २-५% ही शिक्षा पा रही थीं। हर्टाग समिति (१९२८) के समय तक भी लड़कियों की शिक्षा में बड़ी कम प्रगति हुई थी। उनमें साक्षरता प्रायः २% थी। सम्पूर्ण भारत में लड़कियों के लिये १९ कालेज २४३ हाई-स्कूल, ७२९ मिडिल स्कूल और २९६८२ प्रारंभिक स्कूल थे इनमें क्रमशः १९३३, ४९७५७, ८८६४९ और ९६६२१४ बालिकायें थीं। हमारे प्रांत में इसी वर्ष पांच कालेज, सत्ताइस हाई स्कूल, १९२ मिडिल स्कूल और १५८० प्रारंभिक स्कूल खुले, जिनमें क्रमशः १३३, ४२६०, २१६६३, और ५४५१३ बालिकायें थीं। समिति ने इस कम विकास के मुख्य कारण लोगों का अशिक्षा जनित पुरातन प्रेम, पर्दा तथा बाल विवाह के साथ निरीक्षिकाओं, अध्यापिकाओं और बोर्डों में स्त्री सदस्याओं की कमी बताया था। किन्तु उन्होंने स्त्रियों की जाग्रति और योग्यता के कारण इसकी शीघ्र प्रगति पर विश्वास प्रकट किया

उन्होंने पाठ्यक्रम में गृहविज्ञान, ललितकलायें, हस्तकलायें, उद्योग और स्वास्थ्य शिक्षा सम्मिलित करने का परामर्श दिया। उन्होंने स्कूलों के डाक्टरी निरीक्षण पर भी बल दिया। अध्यापिकाओं की दीक्षा और गर्लगाइड मूवमेंट को गति देने का भी उन्होंने परामर्श दिया। धर्महीन शिक्षा भी अभिभावकों को न रुचती थी, दूसरे वे सोचते थे कि स्त्रियों को नौकरी नहीं करना है। कुछ मुसलमान कट्टर विरोधी थे। अध्यापिकाओं की कथित उच्छृङ्खलताओं के कारण भी लोग कन्याओं को स्कूल भेजना पसन्द न करते थे। इसके बाद स्त्री शिक्षा को गति मिली। हमारे प्रान्त में प्रत्येक ज़िले में कम से कम एक मिडिल स्कूल खोलने और अध्यापिकायें तैयार करने पर ज़ोर दिया गया। प्रयाग महिला विद्यापीठ और महिला विश्वविद्यालय बम्बई जैसी संस्थाओं ने भी स्त्री शिक्षा को गति दी। समाज सेवा और विधवाओं की दशा सुधारने में भी स्त्री शिक्षा को सहायता मिली।

१९३७ के बाद से स्त्री शिक्षा को भी बालकों की शिक्षा के समान ही सार्वदेशिक बनाने का प्रयास हो रहा है। हमारे प्रान्त में उनके लिये प्रायः एक दर्जन नार्मल स्कूल और पाँच ट्रेनिंग कालेज खुल गये हैं। प्रयाग तथा लखनऊ विश्वविद्यालयों में महिलाओं के अलग कालेज भी हैं। इसी प्रकार अन्य प्रान्तों में भी प्रबन्ध हुआ है। अब स्त्री शिक्षा की इतनी उन्नति हुई है कि हमारे ही प्रान्त में इस समय लड़कियों के लिये १०१ माध्यमिक महाविद्यालय प्रायः पौने पाँच सौ मिडिल स्कूल और सत्रह सौ प्रायमरी स्कूल हैं। उच्च माध्यमिक तथा मिडिल स्कूलों में पाँच-पाँच हज़ार बालिकायें हैं। अट्ठाइस हज़ार बालिकायें प्रारम्भिक पाठशालाओं में हैं।

सम्पूर्ण ब्रिटिश भारत की स्त्री शिक्षा का पता १९४५-४६ की संख्याओं से लगता है, यद्यपि अब उनमें बहुत वृद्धि हो चुकी है। क्योंकि पंचवर्षीय शिक्षा योजना लागू हो गई है।

विद्यालय	संख्या	बालिकायें
विश्वविद्यालय	१	६३५७
डिग्री कालेज	३७	
इंटर कालेज	२७	१२०९१
ट्रेनिंग कालेज	१६	८८०
चिकित्सा	३	११६५
हाई स्कूल	६७९	३५९७६१
अंग्रेज़ी मिडिल	७७६	
हिन्दुस्तानी मिडिल	७६६	
प्रारम्भिक	२०८०१	३४५५५९९
अन्य विशेष	७८९	५०७१३
योग	२३८९३	३८८६६५६

नवीनतम शिक्षा योजनाओं के लागू हो जाने पर स्त्री तथा पुरुषों की शिक्षा सम्बन्धी सुविधाओं में कोई अंतर न रह जावेगा और दोनों को अपने अनुकूल वातावरण में उन्नति करने का अवसर मिलेगा। इसके बाद ही सभी स्त्रियाँ अपना उचित स्थान ग्रहण कर सकेंगी और समाज को उन्नत बना देंगी।

परिशिष्ट (ख)

संयुक्त प्रांतीय ज़िला बोर्ड प्रारंभिक शिक्षा कानून १९२६

(The United Provinces District Boards Primary Education Act 1926).

ज़िला बोर्डों के अंतगत ग्रामीण क्षेत्रों में प्रारंभिक शिक्षा के विकास के लिये कानून।

चूंकि संयुक्त प्रांतीय सरकार की यह घोषित नीति है कि बालक बालिकाओं की सार्वदेशिक, निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा उत्तरोत्तर विकास के एक निश्चित कार्यक्रम द्वारा संपादित हो और चूंकि प्रारंभिक शिक्षा की उत्तरोत्तर प्रगति और विकास का प्रबन्ध करना आवश्यक है, अतः निम्नलिखित कानून बनाया जाता है :—

१. **नाम, व्यापकता और अर्थ**—(१) इसका नाम "संयुक्त प्रांतीय प्रारंभिक शिक्षा कानून १९२६" होगा।

(२) संयुक्त प्रांत के ज़िला बोर्डों के अंतर्गत सभी क्षेत्रों पर यह लागू होता है।

(३) इसे संयुक्त प्रांतीय ज़िला बोर्ड कानून (District Boards Act 1922) का, जिसका निर्देश आगे "मुख्य कानून" के नाम से होगा, पूरक समझा जाय।

२. (इस धारा के अंतर्गत "स्कूल समिति" "बच्चा" इत्यादि शब्दों की परिभाषायें दी है)।

३. प्रारंभिक शिक्षा को अनिवार्य बनाने की घोषणा करना—(१) बोर्ड के प्रार्थना करने पर प्रांतीय सरकार घोषणा कर सकती है कि बालकों की प्रारंभिक शिक्षा, ज़िले के पूरे क्षेत्र में अथवा उसके किसी भाग में (जैसे किसी तहसील में, थाने में, गाँव में अथवा स्कूल के क्षेत्र में) अनिवार्य होगी।

(२) जहां उपधारा (१) के अंतर्गत घोषणा लागू है, वहां पर ज़िला बोर्ड के प्रार्थना करने पर प्रांतीय सरकार उस क्षेत्र के पूरे अथवा किसी भाग में बालिकाओं की शिक्षा अनिवार्य करने की घोषणा कर सकती है।

(३) इस धारा के अंतर्गत निकाली गई घोषणा में प्रारंभिक शिक्षा के अनिवार्य होने की तिथि तथा उसका क्षेत्र स्पष्टतया निर्दिष्ट होंगे और उस क्षेत्र की जनता को इस घोषणा की सार्वजनिक सूचना दे दी जावेगी।

(४) यदि प्रांतीय सरकार किसी बोर्ड को किसी क्षेत्र में बालकों, बालिकाओं अथवा दोनों की अनिवार्य प्रारंभिक शिक्षा की योजना प्रस्तुत करने का आदेश दे तो वह बोर्ड सरकार के द्वारा निश्चित अवधि के भीतर ही उक्त योजना पेश करेगा।

(५) यदि कोई बोर्ड ऐसी योजना प्रस्तुत करने में देर करता है, अथवा योजना के स्वीकृत हो जाने पर उसके अनुसार अनिवार्य प्रारंभिक शिक्षा का प्रबन्ध नहीं करता, अथवा निर्मित योजना को कार्यान्वित नहीं करता या चलती योजना को जारी नहीं रखता, तो प्रांतीय सरकार आवश्यक पड़ताल के बाद किसी व्यक्ति को योजना प्रस्तुत करने, चालू करने अथवा चालू रखने के लिये नियुक्त कर सकती है, और इसका व्यय बोर्ड प्रांतीय सरकार को अदा करेगा।

४. बोर्ड द्वारा प्रारंभिक शिक्षा का प्रबन्ध—(४) धारा (३) के अंतर्गत घोषणा तब तक न की जावेगी जब तक (अ) बोर्ड प्रारंभिक

शिक्षा को अनिवार्य बनाने का विशेष प्रस्ताव अपने सदस्यों के आधे से अधिक सदस्यों के मत से पास न करे, और (ब) प्रांतीय सरकार संतुष्ट न हो कि बोर्ड स्वीकृत प्रारंभिक स्कूलों में इस अनिवार्य निःशुल्क शिक्षा का यथेष्ट प्रबन्ध करेगा और उसकी स्थिति भी इस योग्य है।

घोषणा जारी करने का प्रार्थना पत्र—५. धारा ३ के अंतर्गत बोर्ड एक प्रार्थना पत्र प्रांतीय सरकार द्वारा निर्धारित विधि से देगा और उसके सबन्ध में प्रांतीय सरकार द्वारा मांगी हुई सभी सूचना प्रस्तुत करेगा।

स्कूल समिति (School Committee) की नियुक्ति—(६·१)जहां धारा ३ के अंतर्गत घोषणा हो चुकी है वहां बोर्ड इस क़ानून के अंतर्गत स्कूल समिति के कर्तव्यों का पालन करने के लिये एक या अधिक समितियां नियत करेगा। (२) यह स्कूल समिति, इस कानून की धाराओं के अनुसार, बच्चों की उपस्थिति और उनको काम में लगाने से सम्बन्धित धाराओं को लागू करेगी।

बच्चों को स्कूल भेजना, अभिभावकों का कर्तव्य—७–जहां धारा ३ के अंतर्गत घोषणा जारी है वहां उन सभी बच्चों के अभिभावक जिन पर यह घोषणा लागू होती है, और जो सामान्यतः उस क्षेत्र में रहते हैं, अधोलिखित प्रकार की न्याय संगत आपत्ति के न रहने पर, बच्चों को किसी स्वीकृत प्रारंभिक पाठशाला में पढ़ने को भेजने के लिये वाध्य होंगे।

न्याय संगत आपत्ति का अर्थ—८. धारा ७ के अंतर्गत निम्न-लिखित में से कोई भी परिस्थिति न्याय संगत आपत्ति मानी जावेगी।

(१) स्कूल समिति द्वारा निश्चित दूरी के भीतर किसी प्रारंभिक स्कूल में स्थान नहीं है।

(२) बच्चे को धार्मिक कारणों से, स्कूल समिति द्वारा छूट दे दी गई है।

(३) बच्चा स्वीकृत प्रारंभिक स्कूल में न रहने पर भी संतोष जनक रीति से प्रारंभिक शिक्षा पा रहा है।

(४) बच्चे को प्रारंभिक पाठ्यक्रम पूरा करने का प्रमाण पत्र मिल चुका हो।

(५) बच्चे को इस कानून के अन्तर्गत बोर्ड द्वारा निर्मित नियमों के अनुसार स्कूल से अस्थायी छुट्टी दी गई हो।

(६) बच्चे को किसी स्वीकृत चिकित्सक द्वारा किसी शारीरिक कमी अथवा दोष के कारण स्कूल में पढ़ने के लिये अयोग्य होने का प्रमाण पत्र मिल चुका हो।

(७) बच्चे को विशेष कारणों के लिये समिति छूट दे दे, जिन्हें लेखबद्ध किया जावे।

स्कूल समिति द्वारा उपस्थिति की आज्ञा जारी होना—९. यदि स्कूल समिति को संतोष हो जावे कि जिस अभिभावक को धारा ७ के अंतर्गत बच्चे को स्कूल भेजना था, उसने ऐसा नहीं किया, तो समिति उस अभिभावक को जवाबदेही का अवसर देकर और आवश्यक पड़ताल करके बच्चे को एक निश्चित तिथि से स्कूल भेजने की आज्ञा दे सकती है, तथा वह निश्चित तिथि आज्ञा में दी रहनी चाहिये।

उपस्थिति की आज्ञा न मानने का दंड—१० धारा ९ के अनुसार आज्ञा पाने वाले व्यक्ति पर मजिस्ट्रेट के सामने पांच रुपये तक जुर्माना होगा यदि उसने धारा ८ के अनुसार न्याय संगत आपत्ति न होने पर भी आज्ञा पालन नहीं किया।

(२) कोई भी व्यक्ति जिसे उपधारा (१) के अंतर्गत दंड मिल चुका है, धारा ९ के अंतर्गत जारी आज्ञा का उल्लंघन करता रहे तो मजिस्ट्रेट के सामने अभियोग सिद्ध होने पर पहिले दंडित होने की तिथि से अधिक से अधिक १) प्रति दिन का दंड उतने दिन के लिये दिया जावेगा, जितने दिन वह आज्ञा का उल्लंघन करता रहा।

प्रारंभिक स्कूल जाने योग्य विद्यार्थी को नौकर रखने के लिये दंड—११. अभिभावक से भिन्न जो व्यक्ति स्कूल के समय किसी स्कूल जाने योग्य बच्चे के श्रम को अपने, अथवा किसी अन्य व्यक्ति के लिये उपयोग में लाता है....उसे मजिस्ट्रेट के समक्ष अभियोग सिद्ध होने पर २५) तक जुर्माना होगा।

अभियोग चलाने और स्थगित करने का अधिकार—१२. कोई न्यायालय धारा १०-११ के अंतर्गत किसी अभियोग की सुनाई स्कूल समिति अथवा उसके द्वारा अधिकृत व्यक्ति की शिकायत के बिना न करेगा:—

किन्तु स्कूल समिति अथवा उसके अधिकृत व्यक्ति को किसी व्यक्ति के विरुद्ध अभियोग चलाने के पहिले उसे लिखित सूचना देनी होगी।

(२) स्कूल समिति अथवा उसके अधिकृत व्यक्ति को अपराध के लिये अभियोग लगाने अथवा चलाते रहने के बजाय इस अपराध के लिये निश्चित अधिक से अधिक दंड के बराबर अथवा उससे कम आर्थिक दंड लेकर समझौता करने का अधिकार होगा।

विशेष वर्गों अथवा सम्प्रदायों को छूट—१३ प्रांतीय सरकार इस विषय पर व्यक्त किये गये बोर्ड के विचारों पर ध्यान देकर किसी भी वर्ग अथवा सम्प्रदाय को इस कानून से वरी कर सकती है।

फ़ीस माफ़—१४. जिस क्षेत्र में धारा ३ के अंतर्गत घोषणा लागू है वहां स्वीकृत प्रारंभिक स्कूलों में आने वाले विद्यार्थियों से अनिवार्य प्रारंभिक शिक्षा के लिये कोई फ़ीस न ली जावेगी।

जुर्माना बोर्ड कोष में—१५. अभियोग स्थगित करने अथवा दंड देने से जो धन आवेगा वह बोर्ड के कोष में जमा होगा।

घोषणा की वापसी—१६. यदि प्रांतीय सरकार समझती है कि इस कानून के अंतर्गत कर्तव्यों का कोई बोर्ड पालन नहीं करता, तो

बोर्ड को अपनी सफ़ाई का अवसर देकर सरकार धारा ३ के अंतर्गत घोषणा वापस ले सकती है।

प्रांतीय सरकार को नियम बनाने का अधिकार—१७ (१) प्रांतीय सरकार इस कानून के उद्देश्यों को पूरा कराने के लिये नियम बना सकती है परन्तु नियम बनाने से पहिले उन्हें प्रकाशित करना आवश्यक होगा........ ।

बोर्ड को नियम बनाने का अधिकार—१८. प्रांतीय सरकार की पूर्व अनुमति से जहां धारा ३ के अंतर्गत घोषणा लागू है, वहां बोर्ड निम्न बातों पर नियम बना सकता है :—

(अ) निर्धन अभिभावकों के बच्चों के लिये निःशुल्क पुस्तकें और शिक्षा संबंधी सामान की व्यवस्था।

(ब) स्कूल समिति संगठित करने की विधि, उसका अधिकार क्षेत्र, सदस्यों की संख्या, उनके अधिकार और कर्तव्य।

(स) बच्चों की उपस्थिति स्कूल में रहे इस उद्देश्य से स्कूल समिति के द्वारा की जाने वाली व्यवस्था का क्रम तथा वे नियम जिनके अनुसार बालकों को स्कूल से छुट्टी दी जा सकती है।

(द) यदि एक से अधिक स्कूल समितियाँ हों तो प्रत्येक स्कूल समिति का अधिकार क्षेत्र।

(य) स्कूल समिति मुख्य कानून के अंतर्गत बनी शिक्षा समिति का पारस्परिक संबंध।

अधिकारों का हस्तांतरण—१९ प्रांतीय सरकार इस कानून के अंतर्गत अपने अधिकार हस्तांतरित न कर सकेगी।

परिशिष्ट (ग)

वैदिक विद्यार्थियों को दीक्षांत भाषण

तैत्तिरीयोपनिषद् वल्ली १ अनुवाक् ११.

वेदमनूच्याचार्योऽन्तेवासिनमनुशास्ति। सत्यं वद। धर्मं चर। स्वाध्यायान्मा प्रमदः। आचार्याय प्रियं धनमाहृत्य प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः। सत्यान्न प्रमदितव्यम्। धर्मान्न प्रमदितव्यम्। कुशलान्न प्रमदितव्यम्। भूत्यै न प्रमदितव्यम्। स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम् ॥१॥

देवपितृकार्याभ्यां न प्रमदितव्यम्। मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। अतिथि देवो भव। यान्यनवद्यानि कर्माणि। तानि सेवितव्यानि। नो इतराणि। यान्यस्माकँ सुचरितानि। तानि त्वयोपास्यानि ॥ २ ॥

नो इतराणि। ये के चास्मच्छ्रेयाँसो ब्राह्मणाः। तेषां त्वयासनेन प्रश्वसितव्यम्। श्रद्धया देयम्। अश्रद्धया ऽदेयम्। श्रिया देयम्। ह्रिया देयम्। भिया देयम्। संविदा देयम्। अथ यदि ते कर्मविचिकित्सा वा वृत्तविचिकित्सा वा स्यात् ॥ ३ ॥

ये तत्र ब्राह्मणाः संमर्शिनः। युक्ता आयुक्ताः। अलूक्षा धर्मकामाः स्युः। यथा ते तत्र वर्तेरन्। तथा तत्र वर्तेथाः। अथाभ्याख्यातेषु। ये तत्र ब्राह्मणाः संमर्शिनः। युक्ता आयुक्ताः। अलूक्षा धर्मकामाः स्युः। यथा ते तेषु वर्तेरन्। तथा तेषु वर्तेथाः। एष आदेशः। एष उपदेशः। एषा वेदोपनिषत्। एतदनुशासनम्। एवमुपासितव्यम्। एवम् चैतदुपास्यम् ॥ ४ ॥

हिन्दी अनुवाद

वेदाध्ययन कराने के अनन्तर आचार्य शिष्य को उपदेश देता है—सत्य बोल। धर्म का आचरण कर। स्वाध्याय से प्रमाद न कर। आचार्य के लिये अभीष्ट धन लाकर [उसकी आज्ञा से स्त्री-परिग्रह कर और] सन्तान परम्परा का छेदन न कर। सत्य से प्रमाद नहीं करना

चाहिये। धर्म से प्रमाद नहीं करना चाहिये। कुशल (आत्म रक्षा में उपयोगी) कर्म से प्रमाद नहीं करना चाहिये। ऐश्वर्य देने वाले माङ्गलिक कर्मों से प्रमाद नहीं करना चाहिये। स्वाध्याय और प्रवंचन से प्रमाद नहीं करना चाहिये ॥ १ ॥

देवकार्य और पितृकार्यों से प्रमाद नहीं करना चाहिये। तू मातृदेव (माता ही जिसका देव है ऐसा) हो, पितृदेव हो, आचार्य देव हो और अतिथि देव हो। जो अनिन्द्य कर्म हैं उन्हीं का सेवन करना चाहिये, दूसरों का नहीं। हमारे (हम गुरुजनों के) जो शुभ आचरण हैं तुझे उन्हीं की उपासना करनी चाहिये ॥ २ ॥

दूसरे प्रकार के कर्मों की नहीं। जो कोई [आचार्यादि धर्मों से युक्त होने के कारण] हमारी अपेक्षा भी श्रेष्ठ ब्राह्मण हैं उनका आसनादि के द्वारा तुझे आश्वासन (श्रमापहरण) करना चाहिये। श्रद्धापूर्वक देना चाहिये। अश्रद्धा पूर्वक नहीं देना चाहिये। अपने ऐश्वर्य के अनुसार देना चाहिये। लज्जापूर्वक देना चाहिये। भय मानते हुये देना चाहिये। संवित्—मैत्री आदि कार्य के निमित्त से देना चाहिये। यदि तुझे कर्म अथवा आचार के विषय में कोई सन्देह उपस्थित हो ॥ ३ ॥

तो वहाँ जो विचारशील, कर्म में नियुक्त, आयुक्त (स्वेच्छा से कर्मपरायण,) अरूक्ष (सरल मति) एवं धर्माभिलाषी ब्राह्मण हों, उस प्रसंग में वे जैसा व्यवहार करें वैसा ही तू भी कर। इसी प्रकार जिन पर संशय युक्त दोष आरोपित किये गये हों उनके विषय में, वहाँ जो विचारशील, कर्म में नियुक्त अथवा आयुक्त (दूसरों से प्रेरित न होकर स्वतः कर्म में परायण) सरल हृदय और धर्माभिलाषी ब्राह्मण हों, वे जैसा व्यवहार करें तू भी वैसा ही कर। यह आदेश—विधि है, यह उपदेश है, यह वेद का रहस्य है और (ईश्वर की) आज्ञा है। इसी प्रकार तुझे उपासना करनी चाहिये—ऐसा ही आचरण करना चाहिये ॥ ४ ॥

परिशिष्ट (घ)

आयुर्वेद उपनयन के समय दीक्षा—

चरक संहिता ८।११

अथैनमग्निसकाशे ब्राह्मणसकाशे भिषक्सकाशे चानुशिष्यात्—ब्रह्मचारिणा श्मश्रुधारिणा सत्यवादिनाऽमांसादेन मेध्यसेविना निर्मत्सरेणाशस्त्रधारिणा च भवितव्यं, न च ते मद्वचनात्किंचिदकार्यम् स्यादन्यत्र राजद्विष्टात्प्राणहराद्विपुलादधर्म्यादनर्थसंप्रयुक्ताद्वाऽप्यर्थात्, मदर्पणेन मत्प्रधानेन मदधीनेन मत्प्रियहितानुवर्तिना च शश्वद्भवितव्यं पुत्रवद्दासवदर्थिवच्चोपचरताऽनुवस्तव्योऽहमनुत्सुकेनावहितेनानन्यमनसा विनीतेनावेक्ष्यकारिणाऽनसूयकेन, न चानभ्यनुज्ञातेन प्रविचरितव्यं, अनुज्ञातेन प्रविचरता पूर्वंगुर्वर्थोपान्वाहरणे यथाशक्ति प्रयतितव्यम्, कर्मसिद्धिमर्थसिद्धिं यशोलाभं प्रेत्य च स्वर्गमिच्छता त्वया गोब्राह्मणमादौ कृत्वा सर्वप्राणभृतां शर्माशासितव्यमहरहः उत्तिष्ठता चोपविशता च सर्वात्मना चातुराणामारोग्ये प्रयतितव्यं जीवितहेतोरपि चातुरेभ्यो नाभिद्रोग्धव्यं, मनसोऽपि च परस्त्रियो नाभिगमनीयास्तथा सर्वमेव परस्वं, निभृतवेशपरिच्छदेन भवितव्यमशौण्डेनापापेनापापसहायेन च श्लक्ष्णशुक्लधर्म्यधन्यसत्यशर्म्यहितमितवचसा देशकालविचारिणा स्मृतिमता ज्ञानोत्थानोपकरणसम्पत्सु नित्यंयत्नवता, न च कदाचिद्राजद्विष्टानां राजद्वेषिणां वा महाजनदुष्टानां महाजनद्वेषिणां वाऽप्यौषधमनुविधातव्यं तथा सर्वेषामत्यर्थं विकृत दुष्ट दुःखशीलाचारोपचाराणामनपवाद प्रतीकाराणां मुमूर्षताञ्च तथैवासन्निहितेश्वराणां स्त्रीणाम-

नध्यक्षाणां वो, न च कदाचित् स्त्रीदत्तमामिषमादातव्यमनुज्ञातं भर्त्राऽथवाऽध्यक्षेण, आतुरकुलं चानुप्रविशता त्वया विदितेनानुमतप्रवेशिना सार्धं पुरुषेण सुसंवीतेनावाक्शिरसा स्मृतिमता स्तिमितेनावेक्ष्यावेक्ष्य मनसा सर्वमाचरता बुद्ध्या सम्यगनुप्रवेष्टव्यं, अनुप्रविश्य च वाङ्मनोबुद्धीन्द्रियाणि न क्वचित्प्रणिधातव्यान्य त्रातुरादातुरोपकारार्थाद्वाऽऽतुरगतेष्वन्येषु वा भावेषु, न चातुरकुल प्रवृत्तयो वहिर्निश्चारयितव्याः, ह्रसितं चायुषः प्रमाणमातुरस्य न वर्णयितव्यं जानताऽपि तत्रयत्रोच्यमानमातुरस्यान्यस्य वाऽप्युपघाताय सम्पद्यते. ज्ञानवतापि च नात्यर्थमात्मनो ज्ञाने विकत्थितव्यं, आप्तादपि हि विकत्थमानादत्यर्थमुद्विजन्त्यनेके ॥ ११ ॥

न चैव ह्यस्ति सुतरामायुर्वेदस्य पारं, तस्मादप्रमत्तः शश्वदभियोगमस्मिन गच्छेत, एतच्च कार्यं, एवं भूयश्च वृत्तसौष्ठवमनसूयता परेभ्योऽप्यागमयितव्यं, कृत्स्नो हि लोको बुद्धिमतामाचार्यः शत्रुश्चाबुद्धिमतां, अतश्चाभिसमीक्ष्य बुद्धिमताऽमित्रस्यापि धन्यं यशस्यमायुष्यं पौष्टिकं लौक्यमभ्युपदिशतो वचः श्रोतव्यमनुविधातव्यं चेति ॥१२॥

अतः परमिदं ब्रूयात्—देवताग्निद्विजातिगुरुवृद्धसिद्धाचार्येषु ते नित्यं सम्यग्वर्तितव्यम्, तेषु ते सम्यग्वर्तमानस्यायग्निः सर्वगन्धरसरत्न बीजानि यथेरिताश्च देवताः शिवायस्युः, अतोऽन्यथा वर्तमानस्याशिवायेति, एवं ब्रुवति चाचार्ये शिष्यस्तथेति ब्रूयात्, तद्यथोपदेशं च कुर्वन्नध्याप्यो ज्ञेयः, अतोऽन्यथा त्वनध्याप्यः। अध्याप्यमध्यापयन् ह्याचार्यो श्रेयस्करैर्गुणैः शिष्यमात्मानं च युनक्ति। इत्युक्तावध्ययनाध्यापनविधी यथावत् ॥ १३ ॥

हिन्दी अनुवाद

अब (यज्ञ के बाद) शिष्य को अग्नि, वैद्य तथा ब्राह्मण को साक्षी करके यह उपदेश करे। तुझे ब्रह्मचारी दाढ़ी, मूछ रखने वाला, सत्य-वादी, मांसाहार न करने वाला, शुद्ध भोजन करने वाला, शस्त्र छोड़ कर मत्सर हीन रहना चाहिये। राजद्रोह, प्राण घातक, धर्म विरुद्ध और अकल्याणकारी आज्ञाओं को छोड़ कर मेरी शेष आज्ञाओं का पालन करना चाहिये। मुझ पर अपने को छोड़ कर, मुझे स्वामी स्वीकार करके तुझे दासवत् मेरे प्रिय कर्मों का सम्पादन करना चाहिये। उत्सुकता और ईर्ष्या को छोड़ कर एकाग्रता और विनय के साथ तुझे मेरे पुत्र (आज्ञापालक) दास (हितकारक) अथवा भिखारी (मुखापेक्षी) के समान रहना चाहिये। मेरी आज्ञा के बिना तुम्हें चले न जाना चाहिये (बिना मेरे कहे तुम्हें अपनी शिक्षा पूर्ण समझने अथवा चिकित्सा व्यवसाय आरंभ करने का अधिकार नहीं है)।

अनुमति मिलने पर जाने के पूर्व सामर्थ्य के अनुसार गुरु को अभीष्ट भेंट देने का प्रयास करना चाहिये। यदि तुम अपनी चिकित्सा में सफल होकर धन और यश के इच्छुक हो तो तुम्हें सभी प्राणियों, विशेष कर गौ और ब्राह्मण, के सुख तथा स्वास्थ्य लाभ की कामना करना चाहिये। उठते बैठते-नित्यप्रति तुम्हें रोगियों को चंगा करने में संलग्न रहना चाहिये। अपने प्राणों के लिये भी बीमारों से द्वेष न करना चाहिये (किसी के द्वारा मृत्यु की धमकी देने पर भी रोगी का घात न करना चाहिये।) परस्त्रीगमन मन में भी न लान चाहिये, न दूसरे की संपत्ति हथियाने का विचार करना चाहिये।

विनय सूचक स्वच्छ वस्त्र धारण करना चाहिये, मद्यपान, पाप और पापियों के संपर्क से बचना चाहिये। मधुर, विनीत, सत्य, सुस्पष्ट, कल्याणकारी और थोड़ी बात करनी चाहिये। स्थान, समय आदि पर विचार करके तुम्हें ज्ञान बढ़ाने और आरोग्य करने में प्रयत्न करना चाहिये। राजा अथवा सज्जनों के शत्रुओं की चिकित्सा न करना चाहिये। जो आचार (रोगी के कर्तव्य) और उपचार में उचित व्यवहार न करके चिकित्सा को बदनाम करने में सहायक हों, अथवा मरणासन्न हों उनकी चिकित्सा भी न करना चाहिये। संरक्षक अथवा पति की अनुपस्थिति में न तो स्त्रियों का इलाज करना चाहिये और न उनसे धन लेना चाहिये।

रोगी के घर तुम्हें सूचना द्वारा अनुमति लेकर किसी पुरुष के साथ वस्त्र पहिने शिर झुकाये स्थिर मन हो (आयुर्वेद) सोच तथा याद करके मस्तिष्क को सब बातों पर रखते हुये प्रवेश करना चाहिये। भीतर जाकर वाणी, मन, बुद्धि तथा इंद्रियों को रोगी तथा उसके उपचार को छोड़ कर अन्य विषयों में लगाना अनुचित है। रोगी के घर की बातें किसी पर प्रकट न करना चाहिये। रोगी की मरणासन्न अवस्था को जान कर भी ऐसे स्थान पर न कहना चाहिये जिसे सुन कर रोगी वा किसी अन्य व्यक्ति की मृत्यु हो जावे।

ज्ञानी होने पर भी डींग न हाँकना चाहिये क्योंकि शेखी मारने वाले ज्ञानी लोगों से भी लोग ऊब जाते हैं, और पास नहीं आते।११। और आयुर्वेद का अंत भी नहीं है। अस्तु निरंतर प्रमाद हीन हो कर उद्योग करते रहना चाहिये। ऐसा करना चाहिये। इससे भी अधिक

किसी से ईर्ष्या न करना और सदाचरण हैं। शत्रु से भी ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। ज्ञानी का गुरु संपूर्ण लोक है, और अज्ञानियों का शत्रु संपूर्ण लोक हैं। अस्तु बुद्धिमान् पुरुष को शत्रु के भी यश वर्द्धक, आयुष्कर आरोग्य कर तथा प्रशंसित वचनों को सुनना और कार्यान्वित करना चाहिये। १२।

इसके बाद यह कहना चाहिये, कि तुझे देवता, अग्नि, ब्राह्मण, गुरु, वयोवृद्ध, साधु आदि के प्रति उचित व्यवहार करना चाहिये। ऐसा करते रहने पर अग्नि, गन्ध, रस, रत्न बीज, तथा पूर्वोक्त देवता सभी तेरा कल्याण करें। विपरीत आचरण करने पर तेरे अशुभकारक हों।

आचार्य के ऐसा कहने पर शिष्य को 'ऐसा ही करूँगा' कहना चाहिये, और उपदेशों के अनुसार चलने वाला विद्यार्थी पढ़ाने योग्य है। इससे भिन्न न पढ़ाना चाहिये। पढ़ाने योग्य विद्यार्थियों को पढ़ाने से आचार्य शिष्य को तथा स्वयं को कल्याणकारी गुणों से विभूषित करता है। यही अध्ययन तथा अध्यापन की विधि है। १३।

शब्दानुक्रमणिका